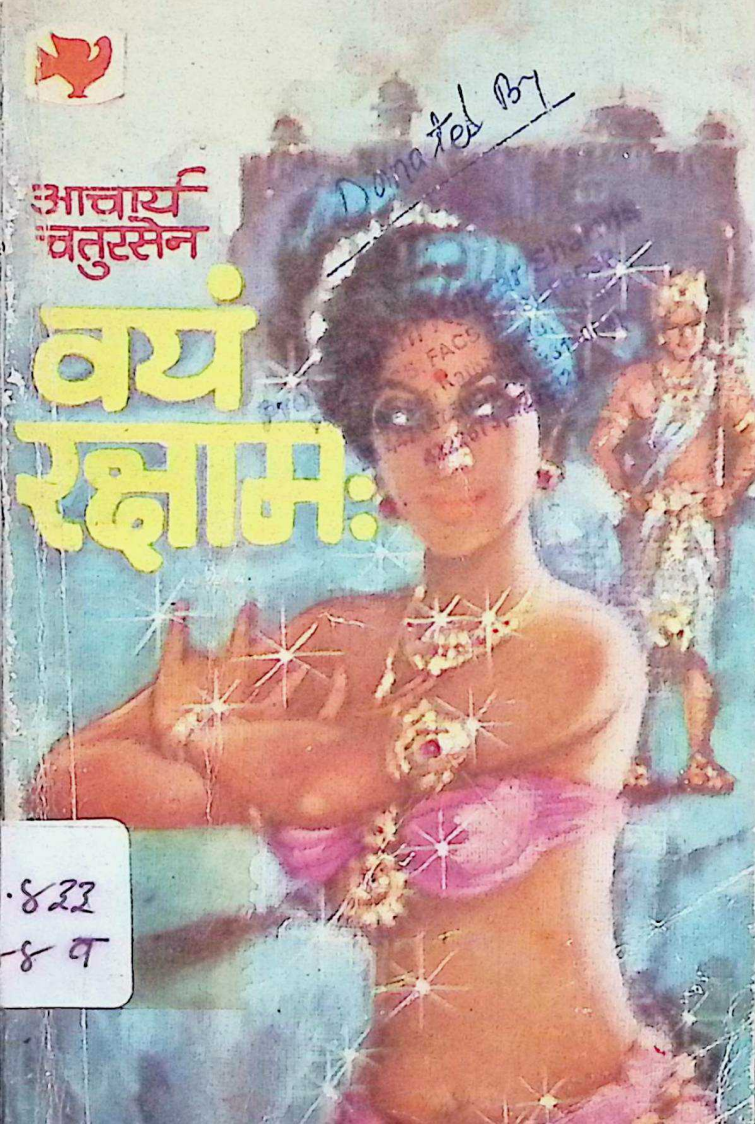

Donated By
.823
-8 व

वयं रक्षामः

उसने झपटकर मायावती को अपने अंकपाश में
दबोच लिया। उसका शृंगार अस्त-व्यस्त हो गया,
वस्त्र फट गए, केश बिखर गए।
कांपते स्वर में उसने कहा—"नहीं, नहीं, मत करो!
ऐसा मत करो···!"
मानवीय विकृतियां जो उभरीं, दब गईं, और
फिर उभरीं—नये युग के सन्दर्भ में
युग-युग से चली आने वाली तृष्णा और कामना का
सरस चित्रण। नये दृष्टिकोण पर आधारित
सजीव उपन्यास,
जिसके सम्बन्ध में स्वयं लेखक का कथन है
कि यह उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

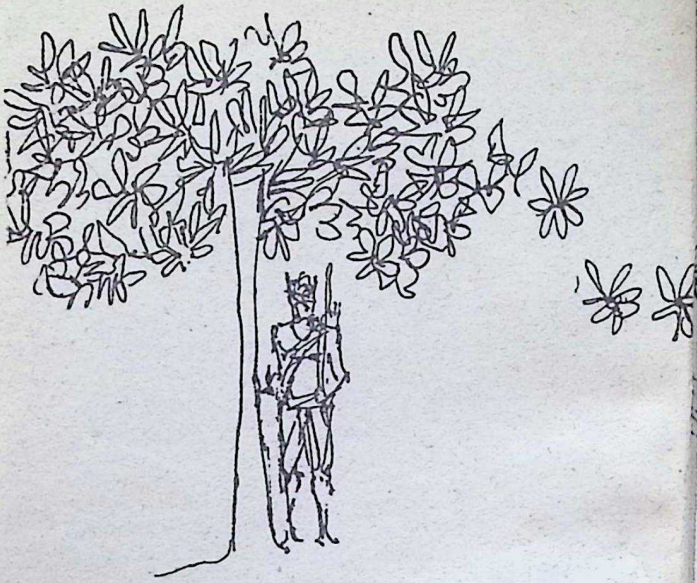

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षामः

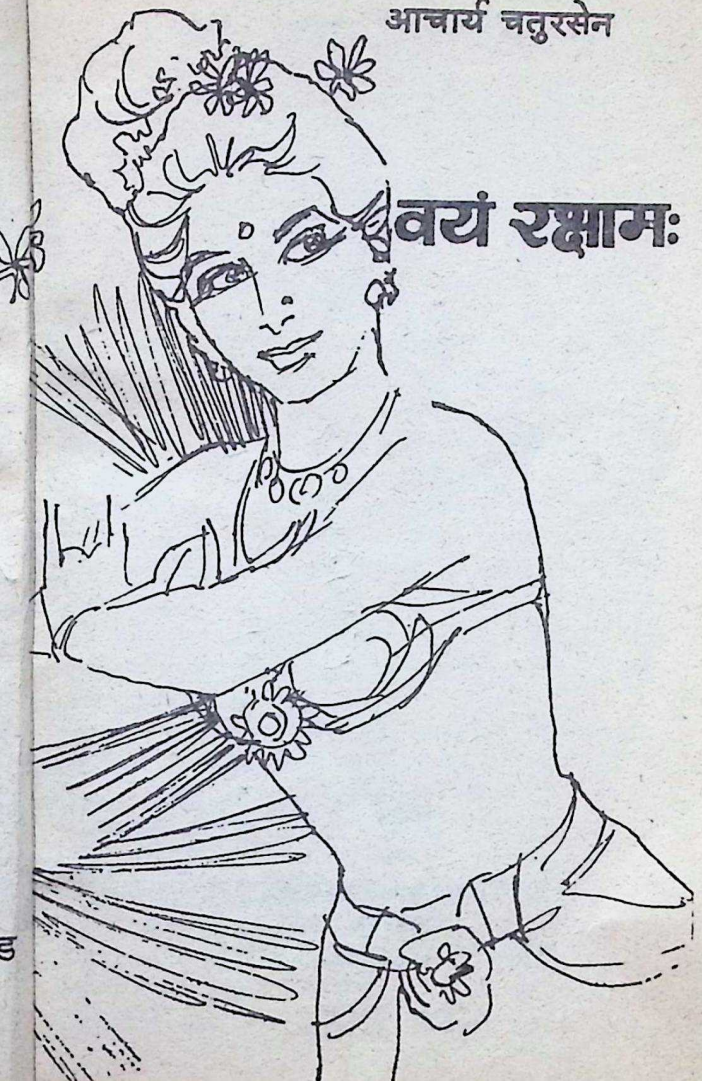

© कमलकिशोरी चतुरसेन, १९६९

VAYAM RAKSHAMAH
NOVEL
ACHARYA CHATURSEN

मूल्य छः रु०

वयं रक्षामः

सद्यः किशोरी। नृत्य कर रही थी चतुष्पथ पर। विषधर भुजंगिनी के समान दोनों अनावृत्त भुज-मृणालें हवा में लहरा रहे थे। उंगलियां चर्मटिका खंजरी पर मृदु आघात कर चरणाघात के सम पर ध्वनित कर रही थीं। चारों ओर आबाल-वृद्ध, नगर-नागर, नर-नाग, देव-दैत्य, गन्धर्व-किन्नर, असुर-मानुष, आर्य-व्रात्य।

बहुत देर तक वह नृत्य करती रही, गाती रही, हंसती रही, हंसाती रही, लुभाती, रिझाती रही। सभी नर-नाग, देव-दैत्य, असुर-मानुष, आर्य-व्रात्य विमोहित हो उस कज्जल-कूट गहन श्यामल अनावृत उन्मुख यौवन के विलास को देख हर्षोन्मत्त हो गए। नृत्य की समाप्ति पर बालिका पर स्वर्ण-खण्ड बरसाने लगे। किसीने आंखों से पिया वह रूप-ज्वाल, किसीने हंसकर आत्मसात् किया उसे, किसीने स्वर्णदान देते हुए स्पर्श किया उसका कमल-कोमल करतल। किसीपर उसने भ्रूपात किया, किसीपर कटाक्षपात। किसीपर बंकिम दृष्टि दी और किसीको देखकर हंस दी।

फिर वह चली मद्य की हाट पर। बहुत जन उस उन्मत्त अनावृत उन्मुख यौवन को आंखों से पीते आगे-पीछे इधर-उधर चले। मद्य की हाट पर जाकर उसने पीठपुरुष से कहा—"दे मद्य!"

"ला स्वर्ण।"

"कैसा स्वर्ण?"

"वह, जो अभी चर्मकोष में बांधा है।"

"वह तो मातृचरण के लिए है।"

"तो मद्य यहां कहां है?"

"इन भाण्डों में क्या गरल है?"

"स्वर्ण जो नहीं देते, उनके लिए गरल है।"

"तो गरल ही दे।"

"गरल देने की नगरपाल की आज्ञा नहीं। मद्य लेना हो तो ले पीठपुरुष ने दांत निकाल दिए।

"ला, फिर मद्य दे।"

"तो ला स्वर्ण।"

"अरे मूढ़, कैसा स्वर्ण ?"

"मद्य क्या यों ही बंटता है, शुल्क दे।"

"नृत्य क्या देखा नहीं तूने ?"

"क्यों नहीं, नेत्रों को अवश्य देखना पड़ा, पर इसमें मेरा दो नहीं। तू मेरी हाट के सामने आकर क्यों नाची ?"

इतने में एक तरुण भीड़ से आगे आया। उसका किशोर वय श उज्ज्वल श्याम वर्ण, काकपक्ष ग्रीवा पर लहरा रहे थे, कमर में कृष्ण जिन, कन्धे पर धनुष-तूणीर, हाथ में शूल, विशाल वक्ष, बड़ी-बड़ी आंखें, प्रशस्त ललाट, भीगती मसें, कुंचित भृकुटि केहरि-सी कटि कठोर पिंडलियां, अभय मुद्रा, सुहाससिक्त अभिनन्दित मुखश्री।

तरुण ने एक स्वर्ण पीठपुरुष के सामने फेंककर कहा—"स्वर्ण मैं देता हूं—उसे तू मद्य दे।"

पीठपुरुष ने हंसकर स्वर्ण को परखा और मंजूषा में रख मद्य भाण्ड उठाकर तरुणी को दे दिया। भाण्ड को मुंह में लगाकर तरुणी गटागट मद्य पीने लगी। आधा भाण्ड पीकर उसने तृप्त होकर सांस ली, जीभ से होंठों को चाटा—हंसी, फिर दो कदम आगे बढ़, अपना अनावृत्त, उन्मुख यौवन तरुण के वज्र वक्ष से बिल्कुल सटाकर घूर्णित मदरंजित कटाक्ष तरुण पर फेंक, दोनों भुजाओं में मद्यभाण्ड थाम, ऊंचा कर उसे तरुण के होंठों से लगाकर कहा—"अब तू पी।"

तरुण ने अपनी भुजाओं में तरुणी को समेट लिया। एक ही सांस में वह सारा मद्य पी गया। फिर उसने तरुणी के लाल-लाल होंठों पर अपने मद्यसिक्त अधर रखकर कहा—"अब चल।" तरुणी हंस दी। उज्ज्वल हीरकावलि के समान उसकी धवल दन्तपंक्ति बिजली-सी कौंध उठी। उसने मद्यभाण्ड फेंक तरुण के कंठ में अपनी भुजवल्लरी डालकर कहा—"चल।"

दोनों परस्पर आलिंगित होकर एक ओर को चल दिए। नर-नाग-देव-दैत्य-असुर-मानुष-आर्य-वृत्य-सब नगर-नागर पीछे रह गए।

तरुण ने पूछा—"तेरा ग्राम यहां कहां है ?"

"उस उपत्यका में, अर्जना के तट पर।"

"और गोत्र ?"

'गोत्र भी वहीं है।"

"वह कब आया है ?"

"इसी शरद् ऋतु में।"

"कहां से ?"

"काश्यप-सागर तट से।"

"काश्यप सागर-तट पर क्या तेरा पुर है ?"

"वहां मातृकुल रहता है।"

"किस पुर में।"

"हिरण्यपुर में।"

"तू क्या असुर-कुल से है ?"

"नहीं, दैत्य-कुमारी हूं, और तू ?"

"मैं ऋषिकुमार हूं। पर मातृकुल मेरा भी दत्यकुल से है।"

"और पितृकुल ?"

"आर्य-व्रात्य।"

'कहां का है तू ?"

"आंध्रालय का।"

"तो यहां बलिद्वीप में कैसे घूम रहा है ?"

"तेरे ही लिए"—तरुण ने हंसकर उसे और कसकर वक्ष से सटा लिया।

"तरुणी ने उसे ठेलते हुए कहा—"धिग्विपन्न, सत्य कह।"

"अब तो सत्य यही है, मैं तुझपर विमोहित हूं।"

"कब से ?"

"इसी क्षण से।"

"तो उधर चल।"

"क्या ग्राम में ?"

"नहीं, उपत्यका के उस अंचल में।"

"वहां क्या है ?"

"विजन वन है, सघन छाया है, एक सरोवर है, उसमें शतदल कमल खिले हैं। चक्रवाक, सारस का आखेट वहां बहुत है। हिरण भी हैं। आखेट अच्छा होगा। आखेट खाएंगे और रमण करेंगे, चल।"

"चल।"

दोनों उस गहन वन में घुस गए।

उपत्यका का वह प्रान्त विजन और सघन था। तरुणी एक विशाल शाल्मली वृक्ष के नीचे सूखे पत्तों पर लेट गई। हंसते हुए उसने कहा—'अब तू आखेट ला।"

तरुण ने धनुष पर हाथ डाला। गर्दन ऊंची कर इधर-उधर देखा। वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वन में घुस गया। एक हिरण और कुछ पक्षी मारकर वह लौटा। तरुणी ने फुर्ती से अरणी घिसी। सूखे इंधन में अग्न्याधान किया। तरुण ने आखेट के मांसखण्ड किए। दोनों ने मांस भून-भूनकर खाना आरम्भ किया। तरुणी बहुत भूखी थी, वह रुच-रुचकर मांस खाने लगी। कभी आधा मांसखण्ड खाकर वह तरुण के मुंह में ठूंस देती, कभी उसके हाथों से छीनकर स्वयं खा जाती। खा-पीकर तृप्त होकर वह तरुण की जांघ पर सिर रखकर लेट गई। दोनों भुजा ऊंची करके उसने तरुण की कटि लपेट ली। वह बोली—"बड़ा हस्तलाघव है तुझमें।"

"मुझे प्रयास करना ही न पड़ा। आखेट सहज ही मिल गया।" तरुण ने हंसकर कहा।

"तू किस कुल का आर्य है?"

"वैश्रवण पौलस्त्य हूं।"

"तूने कहा था—तेरा मातृकुल दैत्यकुल है।"

"हां।"

"कहां का?"

"लंका का। मैं लंकापति सुमाली दैत्य का दौहित्र हूं।"

"अरे वाह प्रिय"—तरुणी हर्षोल्लास से चीख उठी। आनन्दातिरेक में उसने धक्का देकर तरुण को भूमि पर गिरा दिया। फिर उसके वज्र-वक्ष पर अपने अनावृत उन्मुख यौवन-युगल ढालकर तरुण के अधर चूमकर बोली—"सुपूजित है तू।"

उसे अपने में प्रावेष्ट-सा करता हुआ युवक बोला—"तू क्या लंकाधिपति सुमाली को जानती है?"

"सुपूजित है लंकाधिपति दैत्येन्द्र सुमाली का कुल। मेरा पिता दैत्येन्द्र का सेनापति था। हिरण्यपुर के देवासुर-संग्राम में उसने विष्णु से युद्ध किया था।"

तरुण ने दोनों भुजाओं में उसे लपेट वक्ष में दबोच लिया और उसके सघन जघन को अपनी सुपुष्ट जंघाओं में आवेष्टित करते हुए

बोला—"तब तो तू मेरी हो है।'

उसने अपना शिथिल गात्र जैसे तरुण को अर्पण करते हुए सुरा-सुरभित, आवेशित गर्म श्वास लेते हुए कहा—"आज मैं तेरी हूं। तू स्वच्छन्द रमण कर।"

"और आज के बाद?" तरुण ने अपने दांत तरुणी के दांतों पर रगड़ते हुए कहा।

"जैसा मेरा मन होगा। जैसा मुझे रुचेगा।" उसने नेत्र निमीलित कर लिए।

तमाल की सघन छाया में से छनकर अपराह्न की सुनहरी धूप उनके अनावृत, विवसन सम्पुटित अंगों पर पड़ रही थी। सरोवर में पक्षी कलरव कर रहे थे। दोनों निश्चल, निस्पन्द उस विजन वन में पर्णशय्या पर एक-दूसरे में समाए हुए से, आनन्दातिरेक से तृप्त-सुप्त-विस्मृत पड़े थे। तरुणी ने तरुण के कान में अधर लगाकर कहा—"अब उठ।" उसने धकेलकर तरुण को अपने से पृथक् किया और हंसती हुई उसे खींचकर जल में धंस गई।

दोनों विवसन विजन वन के अगम जल में क्रीड़ा करने लगे। अमल नील जल आन्दोलित हो उठा।

सूर्य क्षितिज पर झुक चला। श्रान्तक्लान्त तरुणी तरुण का हाथ थाम जल से निकली। जल-बिन्दु दोनों के अंगों पर ढर-ढरकर मोतियों की भांति इधर-उधर भूमि पर बिखरने लगे।

वह एक शिलाखण्ड पर अलस भाव से उत्तान लेट गई। अपराह्न की पीली धूप उसके सम्पूर्ण विवस्त्र गात्र पर फैल गई। तरुण भी वहीं आ खड़ा हुआ। जल उसके लौहगात से टपक रहा था। उसके बाहु-पाश में बहुत-से शतदल कमल पुष्प थे। उन्हें उसने तरुणी पर बिखेर दिया। तरुणी ने उसके गात को भरपूर दृष्टि से पीते हुए कहा—"कमनीय है तू रमण, प्रिय है, प्रियतम है। आ, शृंगार दे मुझे।"

तरुण ने विधिवत् रमणीय रमणी को शृंगारित किया। शृंगार सम्पन्न करके तरुण ने हंसते-हंसते पूछा—"अब और तेरा क्या प्रिय करूं?" तरुणी ने अपनी भारी-भारी पलकों में बंकिम कटाक्ष भरकर, तरुण को आपाद विवसन देख, दांतों में लाल-लाल जीभ को दबाकर सीत्कार-सी करते हुए मन्द स्वर में कहा—"अब परिरम्भण दे।" उसने दोनों भुजमृणाल ऊंचे फैला दिए। तरुण ने आवेशित-सा होकर सान्ध्य-वनश्री-सी उस कमनीय कामिनी को अपनी बलिष्ठ बाहुओं में अधर उठाकर वक्ष में समेट लिया। तरुणी जैसे तरुण के अंग-

प्रत्यंग में सम्पूर्ण धंस गई। जगत् जैसे खो गया।

अस्तंगत सूर्य की रक्तिम रश्मियां वनश्री को रंजित करने लगीं। तरुण ने धीरे से रमणी को शिलाखण्ड पर बैठाकर अधोवस्त्र दे नीवी बन्धन किया। स्वयं कटिबन्ध पहन मृगाजिन धारण किया, फिर उसके लाक्षारंजित चरणयुगल गोद में लेकर कच्छप चर्म-निर्मित उपानत् चरणों में डाल चर्मरज्जु बांधने लगा। तरुणी ने चरण-नख का तरुण के वक्ष पर आघात करके कहा—

"कमनीय है तू रमण।"

"सच ?"

"सच, ऐसा और नहीं देखा।"

"और भी देखे हैं तूने ?"

"बहुत।"

"पर अब तो तू मेरी है ?"

"वाह, ऐसा भी कभी होता है ? मैं दैत्यकन्या हूं, दैत्यबाला की यह मर्यादा नहीं है।"

"मैं तुझे प्यार करता हूं।"

"प्यार क्या होता है ?"

"जो प्राणों में प्राणों का विलय करता है।"

"तो तू प्यार कर, अनुमति देती हूं। किन्तु तू ही कुछ पहला पुरुष नहीं है, तुझसे पहले बहुत आ चुके हैं, तू ही अन्तिम नहीं है, और अनेक आएंगे।"

तरुण के नेत्रों से अग्निस्फुलिंग निकलने लगे। क्रोध से उसके नथुने फूल गए। उसने तरुणी के चरण गोद से गिराकर उसे ज़ोर से शिलाखंड पर धकेल दिया और खड़े होकर कहा—"नहीं, अब और नहीं आएंगे। अब जो तुझे छुएगा उसीके साथ तेरा भी मैं तत्क्षण वध करूंगा। मेरी यह मर्यादा है कि एक स्त्री एक ही पुरुष की अनुबन्धित हो।"

धक्का खाकर गिरने से तरुणी को आघात लगा। उसका शृंगार खण्डित हो गया। उसने सर्पिणी की भांति चपेट खाकर उठते हुए वेग से तरुण के वक्ष पर पदाघात किया। पदाघात खाकर तरुण लुढ़कता हुआ भूमि पर गिर गया। उसका सारा शरीर धूल में भर गया। तरुणी ने भुजंगिनी की भांति फूत्कार करते हुए कहा—"दैत्यकुल की कुमारी पर मर्यादा बांधने वाला तू होता कौन है रे अधम ?"

तरुण उछलकर एक ओर खड़ा हो गया और बोला—"तेरे साथ

मैंने रमण किया है; अब तेरा वध नहीं करूंगा। पर तू मेरी है—केवल मेरी। स्पर्श तो दूर, अब तू किसी पुरुष का ध्यान भी नहीं कर सकती।"

"रमण किया है तो रमण की भांति बात कर, मूर्खता न कर। मुझे भी तेरा विग्रह स्वीकार नहीं है, मैं तुझपर प्रसन्न हूं।"

"तो मांग ले, जो तुझे चाहिए।"

"धिग्विपन्न, तू दाता है कि याचक ?"

"तेरे प्यार का याचक हूं।"

"तो याचक ही रह। दाता का दम्भ न कर।"

उसने आगे बढ़कर तरुण की कमर में बांह डाल दी और हंसकर कहा—"आ चल, ग्राम चल, एक भाण्ड मद्य पी आ।"

"ग्राम आऊंगा, पर मद्य पीने नहीं, तुझे हरण करने।"

"यह कैसी बात ?"

"यह मेरी संस्कृति है—रक्ष-संस्कृति। कुमारी का हरण हमारे लिए वैध है—हरण की हुई कुमारियां हमारी अनुबंधित होती हैं।"

"और तू मुझे अनुबंधित करेगा ? तेरा साहस है रे, रमण।"

"मैं रमण नहीं, रावण हूं, पौलस्त्य वैश्रवण रावण।"

वह तेज़ी से एक ओर को चल दिया। तरुणी अकेली उस विजन वन में खड़ी, उसे अनिमेष देखती रही।

३

अब से सात सहस्राब्दी पूर्व जब वालिद्वीप के विजन वन में सरोवर के तट पर दैत्यबाला का अभिसार सम्पन्न हुआ तब तक नृवंश में विवाह-मर्यादा दृढ़बद्ध नहीं हो पाई थी। नर-नाग-देव-दैत्य-असुर-मानुष-आर्य-व्रात्य सभीमें ऐसे ही मुक्त सहवास का प्रचलन था। उन दिनों भारत की भौगोलिक सीमाएं भी आज के जैसी न थीं। आंध्रालय से लेकर आंध्र द्वीप तक—वालि, यवद्वीप, स्वर्णद्वीप, लंका, सुमात्रा आदि द्वीपसमूह स्थल-संश्लिष्ट थे और इन द्वीपों में नर-नाग-देव-दैत्य-दानव-असुर-मानुष-आर्य-व्रात्य सभी नृवंश के जन एकसाथ ही रहते थे। कुशद्वीप भी तब तक भारतवर्ष से भूमि-संश्लिष्ट था। उस समय तक विन्ध्य के उस पार भारतवर्ष के उत्तरापथ में आर्यावर्त था, जिसमें सूर्यमंडल और चन्द्रमंडल नाम से दो आर्य-राज्यसमूह थे। सूर्यमण्डल में मानव-कुल और चन्द्रमंडल में इला से

बना एलकुल राज्य करता था। उत्तरापथ से ऊपर भारतवर्ष के सीमान्तों पर पिशाचों, गन्धर्वों, किन्नरों, देवों और असुरों के जनपद थे। एलावर्त आदित्यों का मूल स्थान था, उरपुर और अक्षिपत्तन में देवों का आवास था और उनके पास काश्यप तट पर चारों ओर दूर तक असुर, गरुड़, नाग, दानव, दैत्यों के खण्डराज्य फैले हुए थे।

जिस तरुण ने दैत्यबाला को पौलत्स्य वैश्रवण रावण कहकर अपना परिचय दिया था, उसीकी बात कहते हैं। वह मेधावी और तेजस्वी तरुण उन दिनों आन्ध्रालय महाद्वीप से अपने साहसिक वीर साथियों सहित उत्तर-पश्चिमी द्वीपसमूहों को जय करता हुआ स्वर्ण लंका की ओर जा रहा था। उसने भारत के समस्त दक्षिणी द्वीपसमूहों—अंगद्वीप (सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), मलयद्वीप (मलाया), शंख-द्वीप (बोर्नियो), कुशद्वीप (अफ्रीका) और वाराहद्वीप (मेडागास्कर) पर अधिकार कर लिया था। अब उसकी नज़र चारों ओर समुद्र से घिरी हुई, बड़े-बड़े सोने के प्रासादों से सज्जित हुई स्वर्ण लंका पर थी, जिसे उसने अपनी राजधानी बनाने को चुना था। उन दिनों लंका का अधिपति इस तरुण का सौतेला भाई लोकपाल धनेश वैश्रवण कुबेर यक्षराज था।

आजकल जिस महाद्वीप को आस्ट्रेलिया कहते हैं, उस काल में उसका नाम आन्ध्रालय था। उन दिनों भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना अन्तर न था। लंका और मेडागास्कर की भूमि भी बहुत विस्तृत थी तथा भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ती थी। उन दिनों ये सब द्वीप भारत के अनुद्वीप माने जाते थे तथा ये द्वीपपुंज जो एक-दूसरे से मिले-जुले थे, इनका विशाल भू-भाग लंका महाराज्य के अन्तर्गत था।

४

दैत्यबाला के रमण से तृप्त और लातों के आघात से प्रहर्षित रावण लम्बी-लम्बी डगें भरता हुआ नगर की दक्षिण दिशा में स्थित समुद्र-तट की ओर बढ़ा चला गया। समुद्र-तट से कुछ हटकर छोटी-बड़ी चट्टानों की ओट में वन के एक दुर्गम प्रदेश में उसका शिविर था। शिविर तक आने में बहुत रात बीत गई। आकर उसने देखा—आग पर समूचा भैंसा भूना गया है, और दैत्य-दानव अब भोजन की तैयारी

कर केवल उसीकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। मद्यभाण्ड भरे धरे हैं। रावण के वहां पहुंचते ही एक वृद्ध दैत्य ने आगे बढ़कर उसका कन्धा थामकर कहा—"इतना विलम्ब करके तूने हमें चिन्ता में डाल दिया पुत्र।"

"चिन्ता काहे की मातामह!"

"पुत्र, अपना देश नहीं है। वन, वाट, वीथी अज्ञात हैं, और तू हमारे प्राणों से भी अधिक मूल्य का है।"

तरुण ने हंसकर वृद्ध का हाथ पकड़ लिया। कहा—"बहुत श्रम करना पड़ा मातामह, भोजन दो।"

"पहले कण्ठ सिक्त कर।"—वृद्ध दैत्य ने एक असुर को संकेत किया। असुर ने मद्यभाण्ड लाकर प्रस्तुत किया। समूचा भाण्ड ही एक सांस में पीकर और भाण्ड एक ओर फेंक, जीभ से होंठों को चाटता हुआ रावण उदग्र भाव से, एक बड़ा-सा छुरा ले भैंसे की ओर बढ़ा। उसने मांसखण्ड काटा। फिर तो सभी असुर भैंसे पर पिल पड़े। खा-पीकर निवृत्त होकर वृद्ध दैत्य तरुण के निकट खिसक आया। वह सुमाली था। उसने खींचकर तरुण को अंक में भरकर छाती से लगाकर कहा—"पुत्र, बहुत दिन के हमारे मनोरथ अब पूरे होंगे। ये सब द्वीपसमूह हमने जय कर लिए। यह बालिद्वीप भी आज रात जय हुआ समझ। परन्तु अब तू सामने इस स्वर्ण-लंका को देख। मेरी इस लंका में अब तेरा भाई कुबेर रहता है। वह हमारा नहीं, देवों—आर्यों का बान्धव है। आर्यों और देवों ने उसे धनेश बनाकर अपना लोकपाल नियुक्त कर दिया है। वह हमारे ही धन से सम्पन्न है। हमारी ही लंका में सुप्रतिष्ठत है। यह मैं अब नहीं सह सकता। विष्णु का अब हमें भय रहा ही नहीं। अब यदि कुबेर धनपति राजी से मेरी लंका तेरे लिए छोड़ दे तो ठीक है, नहीं तो हम उसे शस्त्र से मार तुझे लंकाधीश्वर बनाएंगे। पुत्र, तू ही डूबते हुए दैत्यवंश का सहारा है।

तरुण रावण नाना की बात सुनकर चुप हो गया। वह गहरे सोच में पड़ गया। इसपर सुमाली ने कहा—"अब क्या सोच रहे हो पुत्र?"

रावण ने कहा—"मातामह, कुबेर मेरा बड़ा भाई है, कैसे मैं उससे ऐसा प्रस्ताव करूं?"

इसपर रावण का मामा प्रहस्त उत्तेजित होकर बोला—"अरे भागिनेय, वीर पुरुषों में भाईचारा नहीं होता।"

सुमाली ने भी उसे बढ़ावा देते हुए कहा—"निस्सन्देह, विधि और

अदिति दोनों सगी बहिनें ही तो थीं। दोनों ही प्रजापति कश्यप की पत्नी थीं। पर अदिति से देवों और दिति से दैत्यों का कुल चला। अपने पराक्रम से तथा मातृपक्ष से ज्येष्ठ होने से सारी पृथ्वी दैत्यों ही के अधिकार में थी। पर विष्णु ने छल-बल से दैत्यों का नाश करके देवों को आगे बढ़ाया। इसलिए हम यह कोई नई मर्यादा नहीं स्थापित कर रहे हैं।"

इतना कहकर सुमाली ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रहस्त की ओर मर्म-भेदिनी दृष्टि से देखा। प्रहस्त ने कहा—"यही तो बात है भागिनेय, फिर तेरे साथ तो हमारा—सब दैत्य-दानवों का रक्त भी है, बल भी है। फिर लंका तो हमारी ही है। न्यायतः उसपर तो हमारा ही अधिकार है। अतः इस सम्बन्ध में तुझे सोचने-विचारने की कोई बात ही नहीं है।"

मामा के ये बचन सुनकर रावण ने कहा--"तो मातुल, तुम्हीं अब हमारे दूत बनाकर लंका जाओ और जिस प्रकार ठीक समझो, कुबेर धनपति से प्रस्ताव करो।"

सुमाली ने कहा—"ऐसा ही हो। पुत्र प्रहस्त, तू यह मत भूलना कि यदि लंका हमारे हस्तगत न हुई—तो फिर दैत्यों को कहीं खड़े रहने को स्थान नहीं है। मैंने बड़ी साधना की है और बहुत दूर तक विचार किया है। अब मेरी जीवन-भर की तपस्या को फलीभूत करना तेरा ही काम है, प्रहस्त।"

प्रहस्त ने कहा—"आज ही, अभी मैं लंका को तरणी द्वारा प्रस्थान करता हूं, और आशा करता हूं, आगामी ज्वार से पहले ही आ उपस्थित होऊंगा। तब तक आप सब बालिद्वीप पर ही रहना, तथा बालि-द्वीप को अधिकृत करने में विलम्ब न करना।"

"विलम्ब कैसा, हम तो आज रात ही यह अभियान कर रहे हैं।"

सुमाली ने साभिप्राय पुत्र को देखा—और फिर रावण की ओर देखकर कहा—"नगर तो तूने देख ही लिया?"

रावण ने हंसकर कहा—"देख लिया, सब राह-बाट देख आया हूं। किन्तु मातामह, हमें अभी एक और अभियान करना है।"

"कहां रे?"

"उधर, पर्वत की उपत्यका में, अर्जना-तट पर एक ग्राम है।"

"असुरों का है?"

"न, दैत्यों का।"

"कहां के हैं वे?"

"काश्यप-तट से आए हैं।"

"परन्तु दैत्यों का है, तो विग्रह क्यों ?"

"ऐसे ही। वह फिर कहूंगा। तो मातुल, शुभास्ते सन्तु पन्थानः!"

प्रहस्त ने चर्म का कटिबन्ध कमर में लपेटा और शूल हाथ में लेकर वह उठ खड़ा हुआ।

रावण ने खड़े होकर कहा—"चलो, अब हम भी चलें। सब योद्धा तैयार हो जाएं।"

५

प्रहस्त ने लंका में प्रवेश किया।

नगर की वीथी, पथ, चतुष्पथ, राजपथ पार करता हुआ प्रहस्त धनपति कुबेर के अलौकिक दिव्य प्रासाद के सम्मुख जा खड़ा हुआ। उस प्रासाद का वैभव देख प्रहस्त आश्चर्यचकित रह गया।

प्रहस्त ने साहस करके उस दिव्य प्रसाद में प्रवेश किया। द्वार पर उसे किसीने न रोका। वह सात कक्षों को पार करता हुआ चला गया। सातवें कक्ष में उसने देखा—एक विराट्काय पुरुष स्वर्ण की माला पहने और हाथ में वज़नी लोहे का मुद्गर लिए बैठा है। उस यमराज के समान विराट् काल पुरुष के विकराल रूप को देखकर प्रहस्त कांप गया। परन्तु उस पुरुष ने, जैसे मेघ गर्जे उस भांति गर्जना करके कहा—"तू कौन है और दिक्पति लोकपाल कुबेर धनेश के इस आवास में तेरे आने का कारण क्या है ?"

"प्रसीदतु प्रसीदतु दिक्पति लोकपाल धनेश कुबेर !"—प्रहस्त ने दोनों हाथ उठाकर कहा। फिर अपना परिचय देकर बताया कि वह धनेश कुबेर का मातुल है और धनेश के अनुज रावण का संदेश लेकर उनसे भेंटने उपस्थित हुआ है।

"स्वस्ति, यक्षपति दिक्पाल अभी सोमरस पान करने नन्दन वन गए हैं। अब उनके आने का समय हो रहा है। महापराक्रमी दिक्पाल धनेश के आते ही मैं उनसे आपका शुभागमन निवेदन करता हूं। तब तक आप यहां रत्नपीठ पर बैठकर विश्राम कीजिए।

प्रहस्त सोचने लगा—यह सारी ही सम्पदा मेरे पिता की है, अतः मैं ही इसका वास्तविक स्वामी हूं। परन्तु कालविपाक से यह धनेश कुबेर इसका अधिपति बना है और मैं अपरिचित अतिथि की भांति यहां उपस्थित हूं।

प्रहस्त अभी इन बातों पर विचार ही कर रहा था कि उसने देखा एक मणिकांचन निर्मित रथ पर चन्द्रमा के समान एक कान्तिमय पुरुष सिर पर किरीट, कानों में कुंडल और कमर में मेखला धारण किए, अनेक दिव्यांगनाओं, अप्सराओं और गन्धर्वों से घिरा चला आ रहा है। अनेक किन्नर और गन्धर्व नृत्य करते और गाते चले आ रहे हैं। उस तेजस्वी पुरुष के तेज से जैसे वह स्थान ही आलोकित हो रहा है।

रथ से उतरते ही उस द्वारपुरुष ने आगे बढ़कर उस दिव्य पुरुष को अभिवादन कर कहा—"धर्मावतार, यह महात्मा प्रहस्त, दैत्यपति सुमाली का पुत्र, आपकी विमाता कैकसी का अनुज, और आपका प्रतिष्ठित मातुल यहां उपस्थित है। यह आपके अनुज आयुष्मान रावण का संदेश लेकर देव के सम्मुख आया है। आगे देव प्रमाण हैं।

द्वारपुरुष के इतना कहते ही, लोकपाल दिक्पति कुबेर दोनों भुजा पसारकर अपने स्वर्णतारों में झिलमिल उत्तरीय को, तथा कुंचित घन-सघन कृष्ण काकपक्ष को सुरभित हवा में फहराता हुआ हंसकर बोला—"आओ मातुल, इस स्वर्ण-लंका में आपका स्वागत है! कहिए, मेरे पितृचरण तो कुशल से हैं? और मेरा प्रिय भाई रावण प्रसन्न है न? मेरे सब सम्बन्धी, मित्र, बन्धु सुखपूर्वक हैं न?"

प्रहस्त ने हाथ जोड़कर विनय की—"धनेश दिक्पाल कुबेर, आपकी कृपा से सब भांति कुशल है। मैं आपकी सेवा में आपके प्रिय अनुज रावण का संदेश लेकर आया हूं।"

"अहा, रावण, वह मेरा वीर भाई प्राणों से भी अधिक प्रिय है। कहो, मेरे प्रिय अनुज की क्या अभिलाषा है जिसे मैं पूर्ण करूं?"

प्रहस्त ने कहा—"देव धनपति, अपने अग्रज के चरणों में अनुगत रावण ने अनेक बार अभिवादन करने के बाद मुझे देव-चरणों में यह विनीत निवेदन करने के लिए भेजा है कि लंकापुरी और लंका-साम्राज्य हम दैत्यों का है। इसलिए इसे आप हमें लौटा दें तो ठीक है। यह एक धर्म की बात है। इसमें हमारा-आपका प्रेम भी बना रहेगा।"

प्रहस्त की बात सुनकर धनेश कुछ क्षण चुप रहा। फिर उसने धीरे से कहा—"मातुल, रावण दशग्रीव के शौर्य का बखान हम सुनते रहते हैं। उस आयुष्मान ने हमारे आसपास के सभी द्वीप जय कर लिए हैं। यह ठीक है कि पहले यह लंकापुरी आपके पिता दैत्यराज सुमाली की थी। परन्तु, जिस समय मेरे पिता ने निवास के लिए यह लंकापुरी मुझे दी थी, उस समय यह सूनी थी। यहां कोई राजा नहीं

था। मैंने ही इसे फिर बसाकर धन-जन से सम्पन्न किया है। यद्यपि तुम्हारे-हमारे आचार में अन्तर है, तुम रक्ष-संस्कृति के प्रतिष्ठाता हो और मैं यक्ष संस्कृति का। परन्तु इससे क्या? हम सब दायाद बान्धव तो हैं ही। तथा इस लंकापुरी में इस समय देव, दैत्य, किन्नर, असुर, नाग सभी जाति के जन रहते हैं। सबका समान ही अधिकार है। इससे तुम मेरे अनुज रावण से कहो कि इस मेरी बसाई हुई लंका में वह भी आकर सुख से रहे। बाधा कुछ नहीं है। लंका जैसी मेरी है—वैसी उसकी भी है। क्योंकि अभी पिता ने रावण के साथ हमारा कोई बंटवारा नहीं किया है। अभी तक हमारे पिता का सारा धन और राज्य बिना बंटा हुआ ही है।"

धनपति कुबेर से यह सारगर्भित और युक्तियुक्त बचन सुनकर प्रहस्त के मुख से बोल नहीं निकला। वह नीची गर्दन किए कुछ सोचता रह गया।

कुबेर ने प्रहस्त का खूब आत्मीयता से सत्कार किया और सब भांति पूजित कर उसे विदा किया।

६

दैत्यों का वह छोटा-सा दल निश्शब्द, नीरव, समुद्र-तट से तनिक हटकर घाटी में टेढ़े-तिरछे मार्ग में तीव्र गति से नगर की ओर बढ़ रहा था। दल के आगे रावण कन्धे पर भीमकाय परशु रखे चल रहा था।

सुमाली ने आगे बढ़कर रावण के कन्धे पर हाथ रखा। रावण ने तनिक कान पीछे झुकाकर कहा—"कुछ और आदेश है मातामह?"

"नहीं पुत्र, सब पूर्व-नियोजित है। किन्तु तेरे भट यथासमय उपस्थित मिलेंगे न? ऐसा न हो कि वे सब उत्सव के हुड़दंग में मद्य-पान कर मत्त हो जाएं।"

"ऐसा न होगा मातामह। उनका नेतृत्व मातुल अकम्पन कर रहे हैं।"

"तब ठीक है, हमारे मद्यभाण्ड भी नागराज को समय पर मिल जाएंगे। परन्तु पुत्र, ठीक क्षण आने तक धैर्य रखना। इन नागों को मैं भली भांति जानता हूं। विष और मद्य इन्हें अभिभूत नहीं करते। ये दिव्यौषधि सेवन करते तथा सोमपान करते हैं। इसीसे एक प्रकार से वे सब मृत्यंजय हैं।"

"चिन्ता न कीजिए मातामह, रावण का यह परशु किसी मृत्युंजय की आन नहीं मानता, और फिर हमें उनके प्राण लेने से क्या प्रयोजन है ! हम तो द्वीप पर अधिकार चाहते हैं। यदि नाग हमारी रक्ष-संस्कृति को स्वीकार कर लें, तो हमारी ओर से वे ही द्वीप पर शासन करें।"

"यह पीछे देखा जाएगा पुत्र, पहले युद्ध, पीछे राजनीति। यह देखो, सामने ही पुर है। आशा करता हूं, नगर-द्वार पर हमें अपने भट मिल जाएंगे।"

"द्वार के निकट ही हमारे भट छिपे हुए हैं।"

"तो अब हमें सावधान रहना चाहिए।"

"आप केवल दल का पृष्ठ भाग संभालिए। मैं सब निबट लूंगा। नगर में हमारे मित्र बहुत हैं। राजसभा में भी हमारे मित्र हैं। सब दैत्य असुर, दानव और राक्षस तो अपने मित्र हैं ही। यक्ष, देव और गन्धर्व भी विरोध न करेंगे। फिर नर, नाग ही रहे। सो उनका बल ही क्या ?"

"ठीक है, पर पुत्र शत्रु को कभी लघु न गिनना, सावधान रहना !"

कुछ ठहरकर रावण ने हंसकर कहा—"मातामह, आप तो नाग-पति के पिता के मित्र हैं। वज्रनाभ आपका तो स्वागत ही करेगा।"

"नहीं तो क्या ? और जब मैं उससे कहूंगा कि यह दिक्पति धनेश कुबेर का अनुज—दशानन रावण है, तो वह ससम्भ्रम तुझे अभ्युत्थान देगा।"

"स्वस्ति, तो हमारे सर्वोपरि अस्त्र ये मद्यभाण्ड हैं।"

"ये रत्नमणि भी अस्त्र ही समझ पुत्र। जब हम यह सब स्वर्ण, रत्नमणि और मद्यभाण्ड उसे मैत्रीभाव से भेंट करेंगे, तो आनन्द से उन्मत्त होकर वह हमारी ही लाई हुई सुरा का सब सचिव-सहित पान करेगा। इन नागों को हमारी मसालेदार मद्य बहुत प्रिय है, और मेरी बनाई हुई सुवासित मद्य जो एक बार पी लेगा, उसे भूलेगा नहीं, वह असयत हो जाएगा। बस, हम ज्योंही उन सबको मदमत्त और असावधान देखेंगे, अपने शेष कार्य सम्पूर्ण कर लेंगे।"

"इससे उत्तम युक्ति क्या हो सकती है मातामह, किन्तु आप क्या नागपति वज्रनाभ को पहचानते हैं ?"

"न, उसका पिता मेरा कृपापात्र तथा मित्र था। उसकी एक बार असुरों के विरुद्ध सम्मुख युद्ध में मैंने सहायता की थी। वज्रनाभ यह

जानता है और हमें मित्र-भाव से आया जान, हमारा सत्कार करेगा।"

"तो हम उसे जय करके मित्र ही बना लेंगे मातामह ?"

"जैसा संयोग होगा, वध भी करना पड़ सकता है। देख, यह सम्मुख ही तो नगरद्वार है। अब सब कोई सावधान हो जाओ। मैं आगे चलकर द्वार खुलवाता हूं।"

वृद्ध असुर आगे बढ़ा। अवरुद्ध द्वार पर आकर उसने पुकारा—"अनवरुद्ध-कपाटं द्वारं देहि, द्वारं देहि, द्वारं देहि !"

द्वारपाल ने गोखे से सिर निकालकर कहा—"कौन हो तुम ?"

"नागराज के सम्माननीय अतिथि हैं, क्या तू नहीं जानता, आज नागराज हमारी अभ्यर्थना करेगा ? बोल, तुझे आदेश मिला है ?"

"आदेश नहीं मिला है, चिह्न है ?"

"चिह्न भी देख ले"—बूढ़े दैत्य ने बगल से एक नरसिंहा निकालकर ज़ोर से फूंका। इधर-उधर छिपे, बहुत-से दैत्यों ने आकर उस सुभट का सिर काट लिया, और द्वार खोल दिया।

सभी दैत्य नगर में घुस गए। द्वार अवरोधकर्ता युद्ध करने लगे। परन्तु रावण द्वार पर रुका नहीं, वेग से अपने सुभटों को संग लिए राजप्रासाद की ओर बढ़ता चला गया। जो दो-चार नाग सुभट द्वार-रक्षा में उपस्थित थे, उन्हें मारकर असुरों ने द्वार अधिकृत कर लिया। किसीको भी यह बात कानोंकान न सुनाई दी।

अब भेरी और नगाड़े बजाते हुए दैत्य राजद्वार में घुस गए। प्रासाद में किसीने उनका विरोध नहीं किया। कुछ इधर-उधर बिखरकर भीड़ में मिल गए। प्रासाद में बहुत भीड़-भाड़ थी। बहुत लोग प्रासाद में आ-जा रहे थे। लोग ठौर-ठौर मद्यपान करके कोलहाल मचा रहे थे। ये असुर भी जहां-तहां इनमें घुसकर कोलाहल मचाने और मद्य पीने-पिलाने लगे। वास्तव में आज नाग संवत्सर-समारोह मना रहे थे। राजप्रासाद खूब सजा था। विविध वाद्यों के निनाद और लोगों के शोर के कोलाहल से कान नहीं दिए जाते थे। सभा-भवन और मण्डप खूब ठाठ से सजाए गए थे। नागराज का सिंहासन सिंहल के बड़े-बड़े मुक्ताओं से सजाया गया था।

सभा-मण्डप के एक कोने में वादकों का एक दल मधुर वाद्य बजा रहा था। कुछ देर बाद एक प्रौढ़ पुरुष स्वर्ण-विमान पर सवार सभा-मण्डप में आया। दिव्यांगनाएं वह स्वर्ण-विमान उठाए हुए थीं। बहुत-सी वारवनिताएं उसके आगे मंगलगान करती आ रही थीं। विमान के चारों ओर शुभ्रवसना कुमारिकाएं मंगलचिह्न लिए लाज-

विसर्जन करती चली आ रही थीं। यही भोगिराज नागपति वज्रनाभ था। वज्रनाभ के सभा-मंडप में आते ही सब बाजे बड़े जोर से बज उठे। सिंहद्वार पर दुन्दुभि गर्जने लगी। सभी लोग जयजयकार करते उठ खड़े हुए और घुटनों पर हाथ टेक खड़े रह गए। भोगिराज के सम्मुख सीधा खड़ा होने का किसीको आदेश न था। ठीक इसी समय मण्डप के बाहर दूसरी ओर दुन्दुभि बज उठी। और एक ही क्षण बाद वज्र-वक्ष दशानन रावण हाथ में भीमकाय परशु और दैत्यपति सुमाली विकराल खड्ग लिए लाल वस्त्र पहने सभा-मण्डप में आ खड़े हुए। इन दो महातेजस्वी पुरुषों को देखकर सभा भीत चकित रह गई। जो वाद्य सभा में बज रहे थे, स्तब्ध हो गए।

परन्तु इसी समय दैत्य सुमाली ने आगे बढ़कर कहा—"स्वस्ति नागराज, मैं दैत्य सुमाली हूं और यह आयुष्मान् दशानन रावण मेरा दौहित्र तथा दिक्पति धनेश कुवेर का अनुज है। रावण का कुछ अभिप्राय है, जिसे वह अभी निवेदन करेगा। अभी आप हमारी यह स्नेह-भेंट स्वीकार कीजिए।" इतना कहकर दैत्यपति ने संकेत किया। दैत्य अनुचरों ने मद्यभाण्ड ला-लाकर नागराज के सम्मुख धर दिए। रत्नमणि की मंजूषाएं भी नागराज के सम्मुख खोल दीं।

यह मूल्यवान स्नेहभेंट देख नागपति प्रसन्न हो गया। वह सिंहासन छोड़ उठ खड़ा हुआ। आगे बढ़कर उसने रावण को छाती से लगाकर सिर सूंघा और आंखों में आंसू भरकर प्रेम से गदगद होकर कहा—"स्वागत भद्र, जैसे लोकपाल धनेश मेरा मित्र है, वैसा ही तू है। तेरे पिता विश्रवामुनि को मैं जानता हूं।" फिर उसने दैत्येन्द्र की ओर मुंह फेरकर कहा—"दैत्यपति, आप तो मेरे पूज्य पितृव्य ही हैं। पितृचरणों ने आपसे मैत्री-लाभ किया है। आपका स्वागत, यह आसन है, विराजिए।"

नागपति ने दैत्येन्द्र सुमाली और दशानन रावण को अपने साथ सिंहासन पर बैठाया। सिंहासन पर बैठते ही बन्दीजन ने नागराज की वन्दना की। किन्नर और गन्धर्व गाने लगे। अप्सराएं नृत्य करने लगीं। इसके बाद नागराज के आदेश से मद्यपान चला। मरकत के पात्रों में मद्य भर-भरकर नागों ने अतिथियों के हाथ में दिए।

मद्य पीकर दैत्य संप्रहर्षित हुए। अवसर पाकर सुमाली ने दैत्यों को संकेत किया। दैत्यों ने मद्यभाण्डों से मद्य उंडेल-उंडेलकर नागों को पिलाना आरम्भ कर दिया। नागराज ने हंसकर सुमाली दैत्य के हाथ से सुवासित मद्य लेकर पिया। धीरे-धीरे पान में संयत भाव

लोप होने लगा, तथा मद्य भी नागों के मस्तिष्क में पहुंचकर ऊधम मचाने लगा। इसी समय सब बाजे जोर-जोर से बज उठे। नृत्यांगनाओं ने नृत्य आरम्भ किया। नागराज आनन्दातिरेक से बहुत-सा मद्य पी चुके थे। दैत्य उन्हें ढाल-ढालकर और भी मद्य देते जा रहे थे। सुमाली उन्हें बढ़ावा दे रहा था। अकस्मात् बाहर बहुत-सा गोलमाल सुनाई दिया। और, सावधान होने से प्रथम ही चारों ओर से दैत्य-सुभट भारी-भारी खड्ग, परशु, त्रिशूल, मुद्गर लिए सभा-मंडप में घुस आए और लगे मारकाट करने। देखते ही देखते नागों का विध्वंस होने लगा। चारों ओर कोलाहल मच गया। नागराज ने विस्मित होकर रावण की ओर देखकर कहा—"पुत्र, यह क्या ?" रावण ने अपना परशु उठाया। वह उछलकर सिंहासन पर खड़ा हो गया। हवा में उसने चारों ओर परशु हिलाकर जलद-गम्भीर स्वर से गर्जकर कहा—"वयं रक्षामः !"

उसने फिर हवा में परशु को हिलाया। संकेत से उसने दैत्यों को रोका। क्षणभर को मारकाट रुक गई। परन्तु दैत्येन्द्र सुमाली अपना विकराल खड्ग नागराज के सिर पर तानकर खड़ा हो गया।

रावण ने कहा—"सब कोई सुने, आज से यह बालिद्वीप रक्ष-संस्कृति के अधीन हुआ। हम राक्षस इसके अधीश्वर हुए। जो कोई हमसे सहमत है, उसे अभय। जो कोई सहमत नहीं है, उसका इसी क्षण शिरच्छेद होगा। पहले तुम, नागराज, अपना मन्तव्य प्रकट करो। यदि तुम हमारी रक्ष-संस्कृति स्वीकार करते हो तो हमारी ओर से इस द्वीप के स्वामी तुम्हीं हो।"

"किन्तु, यह कैसा अत्याचार है ? यह तो विश्वासघात है।"

"इस प्रकार की बातें मित्रता-विरोधिनी हैं नागराज ! जहां समान बल नहीं होता, वहां यह युक्तियुद्ध ही श्रेयस्कर है, ऐसा नीति का वचन है। कहो तुम, क्या तुम्हें रक्ष-संस्कृति स्वीकार है ?"

क्रोध-अभिभूत होकर नागराज ने हाथ झटककर कहा—"नहीं।"

और उसी क्षण वज्रपात की भांति रावण का कुठार नागराज के कण्ठ पर पड़ा। उसका सिर कटकर दूर जा पड़ा। सज्जित सिंहासन खून से लाल हो गया। इसके साथ ही सब दैत्य नागों पर पिल पड़े। न जाने कहां से दैत्यों के दल-बादल जैसे भूमि फाड़कर निकल-निकलकर आने लगे। कुछ क्षणों में ही नागों का सफाया हो गया। बचे हुए नाग-गन्धर्व-यक्षों ने रावण की अधीनता स्वीकार कर ली। नागराज के कटे हुए सिर को उठा, उसीके रक्त से रावण के मस्तक

पर तिलक देकर तथा उसे रक्तप्लुत सिंहासन पर बैठाकर दैत्येन्द्र सुमाली ने विकराल खड्ग हवा में हिलाते हुए ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"वयं रक्षाम:?" दैत्यों, नागों, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों ने एक स्वर से यही स्वर ध्वनित किया। वालिद्वीप में रावण की आन फिर गई। नागों के उस भव्य प्रासाद को रावण और उसके साथी दैत्यों ने अधिकृत कर, अन्त:पुर पर अपने पहरे बैठा दिए। इस समय तीन पहर रात व्यतीत हुई थी।

७

भोर होते ही रावण ने रक्ताम्बर धारण किया। गोह-चर्म के दस्ताने पहने। कृष्णाजिन वक्ष पर बांधा। सिर पर किरीट, पैरों में चर्म-रज्जु के दृढ़ उपानह। कमर में दुकूल और उसपर मरकतमणि का कटिबन्ध। कन्धे पर धनुष और हाथ में वही विकराल परशु—जिसका नागरक्त अभी सूखा न था। उसने वृद्ध दैत्य सुमाली से कहा—"मातामह, एक छोटा-सा अभियान है, मैं जाता हूं। वालिद्वीप और नागराज के अवरोध का आप यथारुचि विघटन कर लीजिए।"

सुमाली ने कहा—"तुझे क्या कुछ भट चाहिए पुत्र?"

"नहीं, मातुल अकम्पन मेरे साथ हैं।"

सुसज्जित रथ आ उपस्थित हुआ।

रावण रथ पर सवार हुआ और अकम्पन ने वल्गु ली। अश्व-तरियां वायुवेग से चलीं—रावण के संकेत पर, पर्वत की उपत्यका की दिशा में, अर्जना-तट की ओर।

देखते ही देखते, वन, वीथी, हाट, मार्ग पीछे रहते चले गए। पार्श्व में समुद्र को गर्जन करते छोड़, समुद्र-गर्जना से होड़-सी करती हुई रथ की स्वर्ण-घण्टिकाएं क्वणनध्वनि करती हुई चली जा रही थीं। धनुष से छूटे हुए साठ टंक के वाण के समान वेग से, सीधे अर्जना-तट की ओर—जहां रावण की अभिसार-नायिका अनावृत यौवन-वाली दैत्यबाला थी, जिसने रावण के वक्ष पर स्तन-विक्षेप के बाद लात मारकर उसे सम्पन्न किया था।

अर्जना का तट आया। तट पर एक सघन मनोरम वन था। वन में अनेक ताल, तमाल हिन्ताल के वृक्ष थे, हरिण थे, उनका कल-रव था। स्थान-स्थान पर वहां इस समय अग्निदाह हो रहा था। कुछ हाथ, पैर, गर्दन-कटे शव पड़े थे। स्त्रियों के शंखचूड़, गुंजामाल,

वस्त्रखण्ड, स्वर्णवलय टूटे-फूटे इधर-उधर पड़े थे। टूटे हुए शक्ति, परशु, खड्ग और मरे-अधमरे पशु सिसक रहे थे।

रावण ने रथ से उतरकर देखा। उसने कहा—"मातुल, यहां तो विकट संग्राम हुआ प्रतीत होता है। सभी शव गर्म हैं। युद्ध संभवतः अभी हुआ है। देखो तो, कोई जीवित पुरुष भी है जिससे घटना का ज्ञान हो।"

अकम्पन ने बारीकी से देखा। एक बूढ़े असुर में अभी प्राण थे। उसीने टूटे-फूटे स्वर में बताया कि दानवों के एक दल ने आक्रमण करके उनका ग्राम-गोत्र लूट लिया है। ग्राम का सब स्वर्ण, अन्न और स्त्रियों को वे लूट ले गए हैं, तथा सब जीवित पुरुषों को बांधकर बन्दी बना ले गए हैं। दैत्य ने बताया—वे दक्षिण दिशा में समुद्र के तीर तीर गए हैं।

रावण ने हुंकृति भरी। रथ पर खड़े होकर दक्षिण दिशा की ओर देखा। उसने उसी दिशा की ओर परशु उठाकर कहा—"चलो तो मातुल, देखो, वह धूल उड़ रही है।"

और अश्वतरी उसी दिशा में उड़ चलीं। अधीर होकर रावण रथ पर खड़ा होकर व्यग्रभाव से उधर देखने लगा। देखते-देखते धूल का बवंडर निकट होता गया। थोड़ी ही देर में देखा—दानवों का एक सम्पन्न संगठित दल सब दैत्यों, स्त्री-पुरुषों को रस्सियों में बांधे, उनका अन्न-स्वर्ण गठरियों में लादे, उनका पशु व धन आगे कर परिघ, शूल, कृपाण, शक्ति, शूल खड्ग हवा में उछालता वन के गहनतम प्रदेश में बढ़ता जा रहा है।

आगे बढ़कर रावण ने ललकारा। साथ ही उसने दस बाण दस-दस टंक के छोड़े। बाणविद्ध होकर दानवदल घूमा। उन्होंने देखा—एक दुर्धर्ष तरुण योद्धा दिव्य रथ पर आरूढ़ धंसा चला आ रहा है।

दलपति ने दानवों को तुरन्त व्यूहबद्ध खड़े होने की आज्ञा दी। बन्दियों और आहतों को दूर खड़ा किया। पलटकर उसने पुकारकर कहा—"यह अकारण हमपर आक्रमण करके वैर करनेवाला महाभाग कौन है? इस अकारण के वैर का कारण क्या है? वह कहे कि हम उसका बाणों से सत्कार करें, या मधुपर्क से?"

रावण ने कहा—"मैं रक्षाधिप वैश्रवण रावण हूं—इन सब द्वीप-समूहों का स्वामी। तुमने मेरे द्वीप पर अनाचार किया है। कहो तुम्हारा ग्राम, गोत्र कहां है?"

"इसी द्वीप के उस ओर हमारा द्वीप है और गोत्र भी है। परन्तु तुम कैसे इस द्वीप के स्वामी हो ! द्वीप का अधिपति वज्रनाभ है।"

"वज्रनाभ का सिर इसी परशु से मैंने गत रात्रि काटकर द्वीप पर अपना अधिकार किया है। सो अब तक तुमने यदि राक्षसपति दशग्रीव रावण का नाम न सुना हो, तो अब सुनो, और जान लो, कि आज से यह बालिद्वीप रक्ष-संस्कृति के अधीन हुआ है। हम राक्षस इसके अधीश्वर हैं। जो कोई हमसे सहमत है, उसे अभय। जो सहमत नहीं है, उसका इसी परशु से, इसी क्षण शिरच्छेद होगा।"

इतना कहकर वह अपना परशु घुमाता हुआ दानवों के दल में घुस गया और रणोन्मत्त हो दानवों के सिर अपने परशु से काटने लगा। दानव भी तोमर-भिन्दिपाल आदि शस्त्र ले रावण पर टूट पड़े। परन्तु रावण इससे तनिक भी भयभीत न हुआ। यह देख दानवेन्द्र ने रावण से कहा—"वीर विश्रवापुत्र, तू धन्य है। तेरे वीरत्व पर मैं प्रसन्न हूं। परन्तु तुझ एकाकी विरथ रथी से हम सबका युद्ध करना न्यायसंगत नहीं है। इसलिए वीर, तू हममें से जिससे चाहे, उसीसे द्वन्द्व युद्ध कर। रावण ने मुंह का रक्त पोंछते हुए कहा—"ऐसा ही सही। तब दानवेन्द्र मकराक्ष स्वयं ही मेरे साथ युद्ध करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएं।"

यह सुनकर दानवेन्द्र ने कहा—"तथास्तु !" दोनों वीर गदा लेकर परस्पर गुंथ गए। उनकी गदाएं जब आपस में टकराती थीं तो उनमें से अग्निस्फुलिंग निकलता था, तथा बड़ा घोर शब्द होता था। दोनों वीर एक-दूसरे के वक्ष को ताक-ताककर वार करना चाहते थे। परन्तु दोनों में से कोई किसीको अवसर न देता था। बहुत देर तक यह असह्य युद्ध होता रहा। अन्त में अवसर पाकर दानव मकराक्ष ने गदा घुमाकर रावण के वक्ष पर प्रहार किया। प्रहार से गदा के दो टुकड़े हो गए। रावण दर्द से कराहकर भूमि पर गिर गया और रक्त-वमन करता हुआ मूर्च्छित हो गया। दानवेन्द्र मकराक्ष ने उसे अच्छी तरह रस्सियों से जकड़कर बांध लिया।

यह देख अकम्पन रथ को त्याग हाथ में शूल ले आगे बढ़ा। दानवेन्द्र मकराक्ष ने कहा—"अब तुम्हारे प्राण देने से क्या प्रयोजन है, वीर ? हमने अपने पराक्रम से द्वन्द्वयुद्ध में वैश्रवण रावण को बन्दी किया है। तुम्हें उचित है, अपनी नगरी को लौट जाओ।" रावण ने मूर्च्छा भंग होने पर अपने बन्धन देख अकम्पन से कहा—"मातुल, मातामह से कहना, मकराक्ष दानव ने मुझे द्वन्द्वयुद्ध में बन्दी किया

है।" अकम्पन भी कुछ सोचकर रुक गया। दानव रावण को बांधकर सब बन्दियों के साथ समुद्र-तीर पर चले।

८

दानवों का यह दल अपने बन्दियों और लूटे हुए माल को लेकर तरणियों में बैठ तेज़ी से समुद्र-गर्भ में अग्रसर होने लगा। बन्दियों के बीच रस्सियों से बंधी हुई अपनी प्रेयसी—उस तरुणी को रावण ने अपने परिजनों के साथ बैठे देख लिया। रावण को देखते ही तरुणी की आंखें चमकने लगीं। उसने पास बैठे एक बूढ़े दैत्य के कान में कुछ कहा। दैत्य ने आंख उठाकर रावण को देखा।

वे सब दूसरे तट पर उतरे। दानवों की एक टोली दोनों बन्दियों को घेरकर ले चली। टेढ़े-मेढ़े रास्ते पार करते हुए वे एक पर्वत पर चढ़ने लगे। बन्दियों के पीछे बहुत दानव आबाल-वृद्ध थे। सभी कौतूहल स पूर्ण थे। शीघ्र ही यह दल उस छोटी-सी पहाड़ी के शिखर पर चढ़ गया। शिखर पर एक छोटा-सा मैदान था। मैदान के बीचोबीच जलदेव की विकराल मूर्ति थी। उसके आगे दो यूप थे। दानवों ने दोनों बन्दियों को यूपों से कसकर बांध दिया। थोड़ी देर में गाजे-बाजे के आगे दानवेन्द्र के साथ ही उसकी महिषी भी थी। उसके साथ एक ठिगने कद का वृद्ध पुरुष था। उसकी खूब बड़ी लम्बी सफेद दाढ़ी थी। वह कमर में व्याघ्रचर्म पहने था। उसके हाथ में बहुत बड़ा खड्ग था।

दोनों पुरुष यूप के आगे आकर रुक गए। दानवेन्द्र ने महिषी-सहित देवता का पूजन किया। फिर दोनों बन्दियों को मुक्त कर स्नान कराकर उन्हें नवीन वस्त्र धारण कराए। हविष्यान्न खाने को दिया। इसके बाद दानवेन्द्र ने महिषी-सहित हवन किया। अग्नि-प्रदक्षिणा करके उसने बलि का पूजन किया। वृद्ध दाढ़ी वाला व्यक्ति 'चरक' था। उसने मन्त्रपाठ किया। गाय, घोड़ा आदि सात ग्राम्य पशु और हरिण आदि सात जंगली जीव रस्सियों से बांधकर लाए गए। फिर बलि-जीवों को बांधना आरम्भ किया।

दानवेन्द्र ने रावण की तथा महिषी ने दैत्यबाला की दाहिनी भुजा रस्सी से बांधकर ऊपर को खींची। चरक ने फिर मंत्रपाठ किया। फिर उन्होंने वही रस्सी सिर की तरफ ले जाकर पीछे से पैरों को भी बांध दिया। बाध्यों का अंग जकड़ गया।

चरक ने अन्य पशुओं को भी इसी भांति दूसरे यूपों से बांध दिया

जिससे वे हिल-डुल न सकें। अब उन्होंने मंत्रपाठ कर फिर अग्नि-होत्र किया। चरक ने उठकर खड्ग उठाया और मंत्रपाठ करके एक-एक कर सभी पशुओं को मार-मारकर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया।

इसके बाद दानवेन्द्र मकराक्ष विकराल खाण्डा हाथ में लेकर रावण के सम्मुख आया। उसने कहा—"अरे विश्रवा मुनि के पुत्र, वाणी के देवता के लिए, जलों के देवता के लिए, अलभ्य वस्तु उपलब्ध होने के लिए मैं तेरी बलि देता हूं। अन्तरिक्ष के देव प्रसन्न हों। जल के देवता प्रसन्न हों। तुझे स्वर्ग मिले। यह पूत खड्ग तुझे पूत करे।"

महिषी ने दैत्यबाला के सम्मुख आकर कहा—"लब्धप्रतीक्षा वाले देवता के लिए तुझे मैं बलि देती हूं।"

चरक ने उन्हें पुष्पमाला अर्पित की और सौत्रामणि सुरा दी। बहुत-से बाजे ज़ोर से बज उठे।

सुरा पीकर रावण चैतन्य हुआ। आसन्न विपत्ति को उसने देखा। सामने दूर समुद्र के शान्त नील जल पर क्षितिज के उस छोर पर जाकर उसकी आंखें ठहर गईं। आशा और उल्लास से उसका हृदय धड़कने लगा। उसने देखा—नील जल-राशि पर सुन्दर क्षितिज के पास श्वेत-श्वेत धब्बे दीख रहे हैं। उसने नेत्रों के संकेत से दैत्य-कुमारी को भी बता दिया। उसके होंठों के स्फुरण से तथा नेत्रों के आह्लाद से वह समझ गई कि कुछ आशाजनक संदेश है। थोड़ी ही देर में उसने देखा—बहुत-से पोत अपने पाल उड़ाए इधर बढ़े आ रहे थे।

अब चरक की आज्ञा से दैत्येन्द्र खड्ग लेकर रावण को वध करने आगे बढ़ा। यूप से बद्ध रावण ने अपनी आंखें फैलाकर फिर विस्तृत समुद्र की ओर देखा। अनगिनत तरणियां तीव्र गति से चली आ रही थीं। रावण ने कहा—

"दानवेन्द्र से मेरा एक अनुरोध है। वह धर्मानुबन्धित है।"

"वह क्या है, कह!"

"मैं मुनिकुमार हूं, मुझे वेदपाठ करना है।"

"सो तू कर, पर अधिक समय मैं ठहर नहीं सकता।"

रावण ने उच्च स्वर से वेदपाठ करना आरम्भ किया। परन्तु तरणियां अभी बहुत दूर थीं।

मकराक्ष ने कहा—"बस, अब और नहीं ठहर सकता।" वह खड्ग लेकर आगे बढ़ा।

रावण की दृष्टि में व्यथा व्याप गई। दैत्यबाला की दृष्टि भी

उन्हीं तरणियों पर थी। संकट समुपस्थित देखकर उसने कहा—"मैं कुमारी हूं, दैत्यकन्या हूं, लब्धव्य की प्राप्ति के लिए, पहले मेरी बलि हो।"

चरक ने हाथ उठाकर कहा—"कुमारीमनूढां कन्यामालभेत।"

उसने महिषी की ओर संकेत किया और यज्ञपूत खड्ग महिषी को दिया। महिषी खड्ग लेकर आगे बढ़ी। रावण कुछ प्रतिक्रिया करे, इससे प्रथम ही दानव-महिषी का खड्ग बलि पर पड़ा। दैत्यबाला का सिर कटकर नीचे लटक गया। धड़ से रक्त की धारा उमड़ चली। रावण के नेत्रों में अन्धकार छा गया। यूप को उखाड़ने और बन्धनमुक्त होने के उसके सारे ही प्रयत्न निरर्थक गए। दानवों ने देखते ही देखते दैत्यबाला का सिर काटकर यज्ञ-वेदी पर चढ़ा दिया। देखते ही देखते दैत्यबाला के छटपटाते शव के दानवों ने टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मांसखण्डों को एक बड़े भाण्ड में भरकर पाक करने को आग पर चढ़ा दिया। चरक ने मंत्र पढ़ा।

रावण का सारा अंग जड़ हो गया। इस काम में बहुत समय व्यतीत हो गया। अतः रावण के भाव-परिवर्तन को किसीने नहीं देखा। अब चरक ने मंत्र पढ़ा। मकराक्ष चरक के हाथ से पूत खड्ग लेने को आगे बढ़ा। परन्तु इसी समय एक बाण चरक के हलक और तालू को फोड़ता हुआ निकल गया।

मकराक्ष ने देखा—अनगिनत राक्षसों ने चारों ओर से वह यज्ञ-स्थल घेर लिया है, और वे चारों ओर से बाण-वर्षा करते तथा दानवों का निर्दय संहार करते बढ़े चले आ रहे हैं। यह देखते ही मकराक्ष ने अपनी बगल में पड़ा नरसिंहा फूंका। पार्वत्य उपत्यकाओं तथा नगर-वीथियों से सहस्रों दानवों के दल-बादल निकल-निकलकर राक्षसों से भिड़ गए। एक तुमुल संग्राम छिड़ गया। मकराक्ष वही मंत्रपूत यज्ञ-खड्ग लिए हुंकार कर शत्रुओं पर पिल पड़ा। अकस्मात् अकम्पन उछलकर शक्ति लेकर मकराक्ष के सम्मुख आया। रावण ने चिल्ला-कर कहा—"उसे मेरे लिए छोड़ दो मातुल! दानवेन्द्र मेरा पशु है।" और क्षणभर ही में उन्मुक्त होकर रावण ने अकम्पन के हाथ से शक्ति लेकर मकराक्ष के हृदय में हूल दी। दानव रक्त-वमन करने और कराहने लगा। अब रावण ने मुक्के मार-मारकर उसकी पसलियां तोड़ डालीं। दानव की जीभ बाहर निकल पड़ी। उसकी नाक-कान और मुख से रक्त की धार बह निकली। इसी समय रावण ने अपनी वज्र भुजाओं में उसे सिर से ऊपर उठा लिया और धधकते हुए

विराट हवन-कुण्ड में फेंक दिया।

दानवेन्द्र मकराक्ष का ऐसा भयानक अन्त देख दानव चारों ओर भयभीत होकर भागने लगे। उन भागते हुए दानवों को राक्षसों ने पटापट मारना आरम्भ कर दिया। शेष दानवों ने शस्त्र भूमि पर रख, भूमि में गिरकर प्रणिपात किया। रावण ने हाथ का खड्ग हवा में ऊंचा उठाकर कहा—"वयं रक्षामः! सब कोई सुनो, आज से यह सुम्बा द्वीप और दानवों के सब द्वीपसमूह रक्ष-संस्कृति के अधीन हुए। हम राक्षस इसके अधीश्वर हुए। जो कोई हमसे सहमत है उसे अभय; जो सहमत नहीं है, उसका इसी क्षण शिरच्छेद हो।"

सभी आबाल-वृद्ध दानवों ने भूमि पर लोटकर रक्षपति रावण की अधीनता स्वीकार कर ली। राक्षसों ने वह सुन्दर द्वीप, हर्म्य, सौध, स्वर्ण, रत्न, राज्य अपने अधीन कर लिए। द्वीपों में सर्वत्र रावण की दुहाई फिर गई।

६

दानवों के उस क्षुद्र द्वीप का नाम सुम्बा था। वह छोटा-सा द्वीप बालिद्वीप के दक्षिणांचल में थोड़ा पूर्व की ओर मुड़कर था। भारतीय महासागर में जो असंख्य अज्ञात छोटे-छोटे द्वीपसमूह हैं, उनमें से एक यह था। द्वीप का आकार अंडे के समान था। द्वीप चुम्बक पत्थर का था, इससे जलयान और तरणी बहुधा यहां नहीं आती थी। आने से, उनका जलमग्न चुम्बकीय चट्टानों से टकराकर डूब जाने का भय था। परन्तु दानव यहां निर्भय आते-जाते थे। दानवों की यहां सम्पन्न बस्तियां थीं। उनके घर पक्के, राजमार्ग प्रशस्त और पुर में स्थान-स्थान पर हरे-भरे उपवन थे, जिनमें अनेक मौसमी फल और फूल लगे थे।

रावण अपनी अभिसारिका उस दैत्यबाला का अपनी ही आंखों के सम्मुख निधन देख अत्यन्त व्यथित हुआ। दानवों का दमन करने तथा मकराक्ष की जीवित आहुति देने से उसका क्रोध यद्यपि कम हो गया था, परन्तु उसका मन शोकदग्ध हो रहा था। वह इस समय एकाकी समुद्रतीर पर चित्त शांत करने और स्वस्थ होने के लिए आया था। इसी समय उसने देखा, कि एक दीर्घकाय दानव उसीकी ओर चला आ रहा है। उसके साथ ही एक परम सुन्दरी सलोनी बाला है। दानव बहुत लम्बा और कृशकाय था। उसकी साथवाली बाला

अनूढा थी। तपाए हुए सोने के समान उसका रंग था। क्षीण कटि और स्थूल नितम्ब थे। वह सोलह सुलक्षणों से युक्त थी। उसके केश काले, सघन चिकने और घुंघराले थे।

दानव ने धीरे-धीरे रावण के निकट आकर उसे 'स्वस्ति' कहा। लाज से सिकुड़ी हुई तथा शोभा और कोमलता से परिपूर्ण उस बाला को नीची आंखें किए उस दानव के पास खड़ी देख एक बार रावण चमत्कृत हो गया। उसने दानव से कहा—"महाभाग! आप कौन हैं, और मेरे निकट आने में आपका क्या प्रयोजन है?"

"आप विश्रवा मुनि के पुत्र रावण पौलस्त्य हैं न?"

"वही हूं।"

"तो मेरा आप ही से काम है रक्षराज!"

"आपने क्या रक्ष-संस्कृति स्वीकार कर ली है?"

"निस्सन्देह, और मैं आपके अधीन हूं।"

"तो महाभाग यह वैश्रवण रावण पौलस्त्य आपका क्या प्रिय कर सकता है? परन्तु आप कौन हैं? पहले यह कहिए।"

"मैं दनुपुत्र मय हूं।"

"आप प्रजापति के वंश के हैं, मैं आपको अभिवादन करता हूं।"

"तो सौम्य रावण, मेरी कथा सुनो। काश्यप सागर-तट पर हिरण्यपुर के निकट मेरा पुर है, और मैं दैत्यपति विरोचन का बान्धव हूं। कदाचित् तुमने सुना हो, एक हेमा नाम की अप्सरा उरपुर की निवासिनी थी। उसे देवों ने मेरे लिए दे दिया था। चिरकाल तक मैं उसके साथ आनन्द से रहा। परन्तु आज चौदह वर्ष बीत रहे हैं, वह मुझे छोड़कर फिर देवों के पास चली गई। उसके सुख-विलास के लिए मैंने एक अति सुन्दर नगर की रचना की थी, जो स्वर्णमय था। उसमें मैंने उस सुन्दरी के लिए मणिमहल बनवाया था, जो आज चौदह वर्षों से सूना हो रहा है। मैं उस प्रिया के विरह से व्याकुल असमय ही में वृद्ध हो गया हूं, और द्वीप-द्वीप में भटक रहा हूं। यह कन्या उसीके गर्भ से उत्पन्न हुई है। अब यह युवती हुई। तुम ऋषि-पुत्र हो, विक्रमशील हो तथा प्रजापति के वंश का रक्त तुममें है, इससे मैं यह अपनी सुलक्षणा कन्या तुम्हें देता हूं। मेरे पास बहुत स्वर्ण-रत्न हैं—वह सब भी मैं तुम्हें देता हूं। मेरे दो पुत्र, इस कन्या के भाई, बड़े वीर और मेधावी हैं। राजसभा के नियमों को जानते हैं, उन्हें भी मैं तुम्हारी सेवा में नियुक्त करता हूं। अब तुम यह मेरा उपहार स्वीकार करो, मुझे सम्प्रहर्षित करो, अनुबन्धित करो।"

बूढ़े दानव की यह बात सुनकर रावण ने कनखियों से चरण-नख से भूमि कुरेदती हुई उस नव किसलय-कोमल तन्वंगी बाला की ओर देखा तो उसका सम्पूर्ण तारुण्य जाग्रत् हो गया।

रावण ने पूछा—"महाभाग, आपकी इस कन्या का नाम क्या है?"

मय दानव ने कहा—"इसका नाम मन्दोदरी है।"

"तथावस्तु महाभाग, अग्नि प्रज्वलित करो, मैं उसकी साक्षी में धर्मपूर्वक आपके कन्यारत्न को ग्रहण करूंगा।" बूढ़े दानव ने तत्काल सूखी समिधाएं चुन लीं और अग्नि-पाषाण से अग्न्याधान किया। रावण ने कन्या का हाथ पकड़कर कहा—"गृहणामि ते सौभगत्वाय हस्तम्।" दानव मय ने एक अमोघ शक्ति उसे भेंट देकर कहा—"स्वस्ति, तुम्हारा कल्याण हो, पौलस्त्य मुनिकुमार, यह दिव्य शक्ति लो। इसके रहते तुम विश्व में अजेय हो। अब मैं चला।"

वृद्ध दानव एक ओर जाकर पर्वत-शृंखलाओं में गायब हो गया।

१०

इस प्रकार अकल्पित, अतर्कित रीति से प्राणरक्षा होने, अपनी अभिसारनायिका का देखते-देखते ही वध होने तथा दानवों के द्वीप के साथ दानवपुत्री मन्दोदरी को प्राप्त करने के कारण रावण एकबारगी ही अस्तव्यस्त हो उठा। अभी वह स्वस्थ नहीं था। परन्तु दिव्य-स्वरूपा मन्दोदरी के लिए उसका सम्पूर्ण तारुण्य विकल हो रहा था। मनोरम सान्ध्यवेला थी। प्रबल पराक्रमी रावण उस समय प्रमदवन में विचरण कर द्वीप की सुषमा देख रहा था।

आकाश में चन्द्रोदय हुआ। कभी रावण चन्द्रमा की ओर देखता, कभी दूर तक फैले हुए सागर के विस्तार को।

इसी क्षण लाज के भार से सिकुड़ी, पुष्पभार से लदे वृन्त की शोभाधारिणी मन्दोदरी को सखियों-समेत धीरे-धीरे प्रमदवन में आते देखा। वह अधीर होकर दोनों हाथ फैलाकर आगे बढ़ा, किन्तु कुछ सोचकर जहां का तहां रह गया। इस समय मन्दोदरी के अंग पर जैसे छहों ऋतुएं बास कर रही थीं। विविध पुष्पों के मनोरम और कला-पूर्ण आभूषण धारण किए, जिन्हें किन्नरियों और दानव-कुमारियों ने गूंथा था, वह मूर्तिमती वनश्री-सी दीख रही थी।

एक चेटी ने कहा—"भर्तृदारिके, देखो, देखो, वह सागर-तीर

पर धवल रमणीय सारसों की पंक्ति कैसी भली लग रही है?"

"मनोरम है किन्तु मैं श्रमित हूं; आओ, यहां माधवी-लतामण्डप में विश्राम करें।"

मन्दोदरी लतामण्डप में रखी स्फटिक-शिला पर बैठ गई। सखियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इसी समय एक चेटी ने आड़ में खड़े रावण को देख लिया।

उसने मन्दस्मित संकेत करते हुए कहा—"अरे, वह कौन है?"

मन्दोदरी ने बड़े-बड़े कमल से नेत्र उठाकर देखा—उसके नेत्र लाज और चाह से भर गए।

मन्द मुस्कान करके उसने कहा—"आर्यपुत्र ही तो हैं। अब क्या करूं?"

रावण ने भी यह देखा। वह धीरे-धीरे आगे आया। मन्दोदरी ने खड़ी होकर कहा—

"जयत्वार्यपुत्र! इदं आसनम्।"

"अये मन्दोदरि! आस्यताम्।"

"यदार्यपुत्र आज्ञापयति।" दोनों स्फटिक-शिला पर बैठे। चेटियां दूर खिसक गईं। मन्दोदरी ने कहा—"आपका मुख जल से भरे हुए मेघों के समान अश्रुक्लिन्न है, इसका क्या कारण है?"

"आहा काशकुसुम-रेणु आंख में गिर गया, उसीसे।"

मन्दोदरी ने व्यग्रभाव से चेटी को पुकारकर कहा—"अरी, सुखोदक लाओ।"

चेटी दौड़कर गई। सुखोदक ले आई। रावण ने मुख-प्रक्षालन किया। वह मन में सोचने लगा—यह नवोढ़ा बाला मेरे मन की सच्ची व्यथा सुन क्या कहेगी? यों तो यह धीर स्वभाव की दीख पड़ती है, परन्तु स्त्री-स्वभाव ही अधीर है। इसीसे प्रिया से मुझे झूठ बोलना पड़ रहा है।

इसी समय चेटी ने आकर निवेदन किया—"समुद्र-गृह में शय्या सज्जित है।"

सखियों ने रावण के संकेत से मन्दोदरी को उठाया और समुद्र-गृह की ओर ले चलीं। समुद्रगृह के द्वार पर जाकर सब ठिठक गईं। रावण ने हाथ पकड़कर मन्दोदरी को भीतर लिया। सखी-चेटिकाएं लौट गईं। प्रासाद में मंगलवाद्य बज रहे थे तथा नृत्यांगनाएं मंगल-गान कर रही थीं। कक्ष में सुगन्धित तेल के दीप बड़े-बड़े दीपाधारों पर जल रहे थे। कृशोदरी मन्दोदरी को अंक में भरकर रावण

ने उसके शतसहस्र चुम्बन ले डाले। फिर उसने उसकी आंखों में आंख डालकर कहा—"प्राणसखि ! क्या यह स्वप्न नहीं है ? क्या सचमुच ही तुम, मूर्तिमती कौमुदी आज मेरे सान्निध्य में हो ? तब क्या दानव मकराक्ष ने मेरी बलि नहीं दी ? वह सब स्वप्न था ?"

मन्दोदरी ने पलकों में मुस्कान भरके कहा—"सत्य था। मैंने आपको बलियूप में बंधे देखा।"

"तब तुमने यह भी आशा की थी कि यह यूपबद्ध बलि-पुरुष तुम्हारा पति होगा ?"

"आशा नहीं, कामना की थी। पितृचरण से मैंने आग्रह किया था, वह तुम्हारी रक्षा करें।"

"फिर ?"

"दानवेन्द्र मकराक्ष ने पितृचरण का अनुरोध नहीं माना। इसीसे पितृचरण ने अपने बान्धव दानवों से विद्रोह किया। उन्होंने दानवेन्द्र के विरुद्ध तुम्हारे पक्ष में युद्ध किया था।"

"कहां ? यह तो उन्होंने कहा नहीं।"

"न कहने से क्या, पितृचरण आत्मश्लाघा नहीं चाहते।"

"मैं उनका उपकृत हूं; क्या मैं उनका कुछ प्रिय कर सकता हूं ?"

"यदि तुम मातृचरण का उद्धार कर सको।"

"कहां हैं वे ?"

"उरपुर में, देवों के सान्निध्य में।"

"किसके ?"

"वारुणों के।"

"किन्तु..."

"क्या ?"

"वहां वे क्या स्वेच्छा से हैं ?"

"मैं नहीं जानती; जब वे गईं, मैं बहुत छोटी थी।"

"अच्छा, समय पर याद दिलाना। दिक्पाल वारुणों को देखूंगा मैं।"

"अनुगृहीतास्मि।"

"क्या तुम मुझे पाकर प्रसन्न हुईं प्रिये ?"

"यह तो अधिक से भी अधिक है।"

"तुमने पहले कभी मेरा नाम सुना था ?"

"केवल क्षणभर मैंने तुम्हें बलि-यूप में बंधा हुआ देखा था, उसी क्षण मैंने अपने को तुम्हारे पादपद्म में अर्पित कर दिया।"

"यदि मैं बलि हो जाता ?"

"तो मैं भी···।"

स्निग्ध चांदनी रात थी। समुद्र की आनन्ददायक वायु के झोंके आ-आकर युगल दम्पती के हृदयोल्लास को आन्दोलित कर रहे थे। रावण मुग्ध दृष्टि से मन्दोदरी को देख रहा था, जो चन्द्रज्योत्स्ना की रजत-प्रभा में हीरक मणि-सी दिप रही थी।

दानव कन्याएं अलक्ष रहकर मंगल-गान कर रही थीं। सिंहद्वार पर बादलों की गर्जना के समान नगारे बज रहे थे। रावण अतृप्त दृष्टि से लज्जावनमिता क्षीण कटि वाली मन्दोदरी को दृष्टि से मानो पी रहा था। मन्दोदरी ने मन्द मुस्कान से कहा—

"अब क्या सोच रहे हो !"

"तू ही कह।"

"उसी महाभागा अभिसार-सखी की बात।"

"नहीं, तेरी।"

"मेरी क्या ?"

"तेरा कुसुमकोमल, अमल-धवल-तरल गात्र है; जैसे छूने से ही मैला हो जाएगा।"

मन्दोदरी रावण के वक्ष से आ लगी। उसने मृदुल कण्ठ से कहा—"मैं तो तुम्हारी अनुगता हूं, दासी हूं। मुझसे तुम्हें सुखोपलब्धि हो तो अहोभाग्य !"

रावण ने मन्दोदरी का चुम्बन किया। फिर कहा—"सब कुछ अनिर्वचनीय-सा प्रतीत हो रहा है।"

"क्या ?"

"जैसे आज तेरे सान्निध्य में मेरा अहं गला जा रहा है। मैं जैसे खोया जा रहा हूं।" इतना कहकर उसने उस अनिन्द्य दानवनन्दिनी कृशोदरी मन्दोदरी को हृदय से लगा लिया।

११

सम्पूर्ण वसन्त बीत गया। उसी मनोरम द्वीप में तालतमाल, हिन्ताल की सघन छाया वाले स्थलों से परिपूर्ण उस रम्यस्थली में नव-वधू दानवनन्दिनी मन्दोदरी के साथ रावण ने स्वच्छन्द मधुकाल व्यतीत किया। यहीं उसने मातुल प्रहस्त द्वारा कुबेर धनपति का निमन्त्रण पाया। उसने अपने नाना से परामर्श कर सब मनोरथ-

संकल्प सोच-विचार लंका में प्रवेश करने का निर्णय किया।

उसने उन द्वीपों के राज्य-प्रबन्ध, व्यवस्था और सुरक्षा का उत्कृष्ट प्रबन्ध किया। दानवों के इस द्वीपसमूह का राज्याधिकारी मामा अकम्पन को बनाया, तथा बालिद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप के राज्य-भार विश्वस्त राक्षसों को देकर, सुमाली को संग ले, रावण ने बहुत-से विश्वस्त और सुभट राक्षसों के साथ तरणियों में बैठ, द्वीपों से प्राप्त बहुत-सा स्वर्ण-रत्न साथ ले लंका की ओर प्रस्थान किया। सुमाली दैत्य की चिर अभिलाषा सम्पूर्ण हुई। लंका में रावण का कुबेर ने यथावत् सत्कार किया। उसे पृथक् महल रहने को दिया। प्रेम और सौहार्द से सब सुविधाएं प्रस्तुत कर दीं। साथ ही बहुत-सी धन-सम्पदा भी दी। उसने स्पष्ट कहा—"भाई यह लंका जैसी मेरी है, वैसी ही तुम्हारी भी है। इसलिए मेरे राज्य में तुम सुख से रहो।"

परन्तु रावण के तो उद्देश्य और दृष्टिकोण ही कुछ और थे। वह न केवल दक्षिण की इन सब अनार्य जातियों को एक सूत्र में बांधकर एक सम्मिलित नई जाति राक्षसों की बनाना चाहता था, वह आर्यों और अनार्यों के भेद को भी नष्ट कर देना चाहता था। वास्तव में उसमें आर्य और अनार्य दोनों ही रक्तों का मिश्रण था, इसलिए वह चाहता था कि दोनों जातियां सब भेदभाव भूलकर एक हो जाएं। इसीलिए उसने वैदिक-अवैदिक सारी प्रथाओं और परम्पराओं को मिला-गुलाकर 'रक्ष-संस्कृति' की स्थापना की थी।

परन्तु अब, जब उसने लंका की समृद्धि देखी, कुबेर का वैभव देखा, सौध, हर्म्य, वीथी, राजमार्ग देखे, मणिरत्न और स्वर्ण के भंडार देखे, नगर-कोट, राजप्रासाद, नन्दन-वन, अशोक-वन और हाट देखे, तो वह लंका पर मोहित हो गया। उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि लंका की केवल भौगोलिक स्थिति ही नहीं, उसकी राजनीतिक स्थिति भी ऐसी है कि इसी द्वीप से सारे दक्षिण समुद्र-तट पर राक्षसों का अनुशासन कायम किया जा सकता है।

परन्तु कुबेर उसकी सबसे बड़ी बाधा था। कुबेर ही क्यों, यक्ष जाति ही उसके उद्देश्य की पूर्ति में बहुत बड़ी बाधा थी। रावण ही की भांति कुबेर दिक्पाल ने भी यक्षों की एक नई जाति देव, दैत्य, दानव, असुर और नागों में से संगठित की थी। उसका नारा था—'वयं यक्षामः' अर्थात् हम भोगेंगे। इसका अभिप्राय यह था कि विश्व के भोग-ऐश्वर्य हम भोगेंगे। परन्तु रावण ने आकर उनकी सारी व्यवस्था ही भंग कर दी। उसके नव-दीक्षित राक्षस 'वयं रक्षामः'

का नारा लगाते, जहां-तहां उपद्रव करते, यक्षों को चिढ़ाते, कभी-कभी मारपीट भी कर बैठते थे। यक्षपति ने समझा था कि जैसे शान्तिपूर्वक हम यहां रहते हैं उसी तरह रावण भी रहे, खाए-पिए, मौज-मजा करे। सभी तो कहते हैं—वयं यक्षामः बहुत अच्छा मूलमंत्र है। तभी तो नाग, असुर, देव, दैत्य दानवों ने अपने कुल-धर्म को यक्ष जाति में संगठित होना पसन्द किया है। फिर यह रावण क्यों नये उपद्रव खड़े करता है? यह नई 'रक्ष-संस्कृति' क्या बला है?

एक बार धनपति कुबेर ने रावण से बातचीत की। कुबेर ने कहा—"आयुष्मान रावण! तू यह क्या अनर्थ करता है, नगर के शान्त जीवन को अशान्त बनाता है। तुझे चिन्ता क्या है? रहने को तेरे पास महालय है। धन-धान्य, दास-दासों का अभाव नहीं। खा-पी और मौज कर। हम यक्षों की यही संस्कृति है। यही नारा है—'वयं यक्षामः'।"

रावण ने कहा—"आप ज्येष्ठ हैं, पूज्य हैं, परन्तु हम आपसे सहमत नहीं हैं। खाना-पीना, मौज करना जीवन का ध्रुव ध्येय नहीं। मेरा नारा है—'वयं रक्षामः'। हम प्रजापति के वंशधर हैं। एक ही पिता कश्यप से भिन्न-भिन्न माताओं से दैत्य, दानव, नाग, असुर और आदित्यों की उत्पत्ति हुई है। हम दायाद बान्धव हैं। मैं नहीं चाहता कि आदित्य, देव, दैत्य दानव, नाग, असुर अपनी पृथक् जाति बनाएं, उनमें संघर्ष हो, युद्ध हो। मैं विश्व में नृजाति को एक ही संस्कृति के अधीन करना चाहता हूं और वह संस्कृति मेरी स्थापित की हुई रक्ष-संस्कृति है। हम कहते हैं—'वयं रक्षामः' और हमारी संयुक्त जाति है—'राक्षस'।"

"परन्तु हम तो यक्ष हैं। हमारा नारा भी प्रथक् है। हम तुमसे सहमत नहीं हैं।"

"आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, पूज्य हैं, इसीसे मैं आपको छोड़ता हूं। नहीं तो मेरा यह भी नियम है कि हमसे—हमारी रक्ष-संस्कृति से—जो सहमत है, वह अभय। जो सहमत नहीं है, उसका उसी क्षण हम परशु से शिरच्छेद करते हैं; जैसाकि हमने नागराज वज्रनाभ और दानवेन्द्र मकराक्ष का किया।"

"तो आयुष्मान! यह तो स्पष्ट युद्ध-निमंत्रण है। मैंने तुझे इसलिए तो लंका में बुलाया नहीं है।"

"आपने मुझे लंका में बुलाकर अपनी ही मर्यादा की रक्षा कर

ली। आप यदि ऐसा न करते तो मैं स्वयं आता—उसी प्रकार जैसे मैं अन्य द्वीपों में गया हूं।"

"समझ गया, आयुष्मान मुझसे युद्ध चाहता है।"

"नहीं, बस आप हमारी रक्ष-संस्कृति स्वीकार कर लें।"

"परन्तु मैं यक्षपति, दिक्पाल धनेश कुबेर हूं।"

"सो ठीक है, वह रहें। केवल आप कहिए—'वयं रक्षामः'।"

"नहीं तुम्हीं कहो—'वयं यक्षाम'।"

"नहीं।"

"तो आपकी सेवा में मेरा यह परशु है।" रावण ने अपना विकराल परशु कुबेर के सम्मुख हवा में घुमाया।

कुबेर ने भी अपनी वज्र गदा लेकर उसे वायु में घुमाकर कहा—"तुम्हारे इस परशु का जवाब मेरी यह गदा है।"

इसी समय सुमाली झपटता हुआ आकर दोनों क्रुद्ध सरदारों के बीच में खड़ा हो गया। उसने दोनों के शस्त्रों का निवारण करके कहा—"ऐसा नहीं रक्षपति! ऐसा नहीं यक्षपति!" इस द्वंद्व का कैसे निराकरण हो, इसका निर्णय अपने पूज्य पिता पर छोड़िए। उनसे जाकर परामर्श लीजिए। वे जैसा कहें वही कीजिए। आप दोनों ही के वह समान हितैषी हैं। पिता हैं।"

कुबेर ने कहा—"तथास्तु!"

रावण ने भी कहा—"तथास्तु!"

दोनों एक-दूसरे को घूरते हुए क्रुद्ध और क्षुब्ध अपने-अपने निवास पर चले गए। कुबेर सब बातों का आगा-पीछा समझ, और रावण तथा उसके साथी राक्षसों का उद्धत स्वभाव देख पुष्पक पर सवार हो अपने पिता विश्रवा मुनि के आश्रम में आन्ध्रालय में पहुंचा। पिता का विधिवत् पूजन कर, बद्धांजलि हो कुबेर ने कहा—"रावण को मैंने अपना अनुज समझ लंका में आदर सहित बुला स्थान दिया था। अब वह वहां नित नये उपद्रव मचा रहा है। उसने वहां एक रक्ष-संस्कृति स्थापित की है, वह परशु ऊंचा करके कहता है—'वयं रक्षामः।' जो कोई असहमत होता है उसका तत्काल शिरच्छेद कर देता है। मुझसे वह युद्ध करने को तैयार है। बालक और छोटा भाई जानकर मैंने उसे अभी दण्ड नहीं दिया है।"

सारी बातें सुनकर दूरदर्शी विश्रवा मुनि बोले—"पुत्र, तुमने जो कहा, वह मैंने सुना: इस सम्बन्ध में सब बातें मैं जानता हूं। अब तुम मेरी बात ध्यान से सुनो! यह रावण बहुत खटपटी, उग्र स्वभाव

और उच्चाकांक्षी है। उसके पास वीरों का अच्छा दल है। उन्हींकी सहायता से उसने भारत-सागर के सभी द्वीपसमूहों को जीत लिया है। ऐसी अवस्था में अब लंका में अकेला तुम्हारा रहना सुरक्षा के विचार से ठीक नहीं है।

"दूसरी बात यह कि सब झगड़ों की जड़ उसका नाना सुमाली और उसके पुत्र उसके साथ हैं। यह लंका तो पुत्र, पहले सुमाली दैत्य ही की थी। जब मैंने वहां तुम्हें बसाया था, तब सुमाली का कुछ पता ही नहीं था। मैं जानता था कि वह हिरण्यपुर के देवासुर-संग्राम में मारा गया। अब यह न जाने कहां से धरती फोड़कर निकल आया। इसकी पुत्री ने मुझसे ऋतुकामना की—सो मैंने धर्म के विचार से वह स्वीकार कर ली। इसीसे यह रावण और इसके भाई-बहिन उत्पन्न हुए। मैंने इन्हें वेद पढ़ाया, पर ये सब मेरे प्रभाव में नहीं—अपने नाना और मामा के प्रभाव में हैं। वही उसे उकसाकर ले गया। और लंका पर उसका दांत है। लंका के निवासी भी सब उन्हींके भाई-बन्धु, दैत्य, असुर, नाग और दानवंशी हैं। इससे पुत्र, तेरे भले की बात मैं तुझसे कहता हूं कि तू इस उपद्रवी से युद्ध के झंझट में न फंस। तू लंका को छोड़ दे और गन्धमादन पर अलकापुरी बसा वहीं सुख से रह। वह स्थान बड़ा मनोरम है।"

और कुबेर ने यह सीख मान ली। इसका मर्म वह समझ गया। उसने चुपचाप लंका खाली कर दी। अपने यक्षों को तथा सब सम्पदा को लेकर वह पुष्पक विमान में चढ़ गन्धमादन पर्वत पर चला गया और वहां अलकापुरी बसाकर निवास करने लगा।

रावण ने भी उससे अधिक छेड़-छाड़ नहीं की। उसे अपने सब धन, रत्न और परिजनों सहित चला जाने दिया। कुबेर के लंका छोड़ते ही राक्षस बहुत प्रसन्न हुए। रावण ने आज्ञा दी—"जिसे हमारी रक्ष-संस्कृति स्वीकार नहीं, वह लंका छोड़ दे, नहीं तो उसका शिर-च्छेद होगा।" सभी देव, दैत्य, दानव, असुर, नागों ने उसकी रक्ष-संस्कृति स्वीकार कर ली। 'वयं रक्षामः' का मूलमंत्र लंका का ध्रुव श्रेय बना। अब लंका को सुदृढ़-सुगठित कर विश्वस्त राक्षसों को राज्य के भिन्न-भिन्न भाग दे अपने ग्यारह मामाओं को राजसचिव बना—वह रावण लंकापति, राक्षसेन्द्र-पद पर अभिषिक्त हुआ और मन्दोदरी उसकी राजमहिषी।

रावण ने अपनी अजेय सामर्थ्य और प्रबल प्रतिभा से लंका का महाराज्य सुदृढ़ किया। मय दानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह करके उसने दैत्यपति विरोचन की दौहित्री वज्र-ज्वाला से अपने भाई कुम्भकरण का और गन्धर्वों के राजा शैलुष की पुत्री सामा से विभीषण का विवाह किया। इससे ये दोनों प्रबल और प्रतिष्ठित कुल भी उसके सम्बन्धी बन गए। राक्षस जाति का भलीभांति संगठन कर वह रक्ष संस्कृति का प्रतिष्ठाता हो गया। उसने अपने नाना सुमाली को अपना प्रधान सलाहकार बनाया तथा प्रवण, प्रहस्त, महोदर, मारीच, महा पार्श्व, महादंष्ट्र, यज्ञकोष, दूषण, खर, त्रिशिरा, दुर्मुख, अतिकाम देवान्तक, अकम्पन आदि महारथी, रणमत्त, नीतिवन्त, यशवन्त अनुगत उच्चवंशीय राक्षसों को अपना मंत्री, सेनापति, नगरपाल आदि बनाया। ये सब मंत्री और सेनापति राजनीति के महापण्डित थे। स्वयं रावण भी नीति और वेद का महान् पण्डित था। वह दुर्मा रावण अकेला ही अजेय योद्धा और नीतिविशारद था। अब कुम्भ करण जैसे वीर भाई, ऐसे योग्य मंत्री और सेनानायकों को पाक उसका बल बहुत बढ़ गया। शीघ्र ही उसे पुत्ररत्न की उपलब्धि हुई उसका नाम रखा मेघनाद। वह द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़क सब शास्त्रों तथा शस्त्रों में निपुण हो गया। रावण के इस पुत्र भी पिता का शौर्य और तेज था। इसके अतिरिक्त दूसरी पत्नियं से रावण को त्रिशरा, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाम, महोदर, महा पोर्श्व आदि अनेक और पुत्र भी हुए जो महाकाल के समान दुर्ज योद्धा थे। रावण के रनवास में अनेक दैत्य, दानव, नाग और यक्ष वंश की सुन्दरियां थीं। रावण ने मेघनाद का विवाह भी दानव कन्या सुलोचना से किया। इस प्रकार पुत्र, परिजन, अमात्य, बान्ध और राक्षसों से सम्पन्न वह रावण परम एश्वर्य और सामर्थ्य प्रतीक हो गया।

इस प्रकार स्वर्ण-लंका में अपना महाराज्य स्थापित करके तब सम्पूर्ण दक्षिणवर्ती द्वीपसमूहों को अधिकृत करके अब उसका ध्या भारतवर्ष की ओर गया। लंका भारत ही के चरणों में थी।

उन दिनों तक भारत के उत्तराखंड में ही आर्यों के सूर्य-मण्डल औ चन्द्र-मण्डल नामक दो राजसमूह थे। दोनों मण्डलों को मिलाक आर्यावर्त कहा जाता था। उन दिनों आर्यों में यह नियम प्रचलि

था कि सामाजिक शृंखला भंग करनेवालों को समाज-बहिष्कृत कर दिया जाता था। दण्डनीय जनों को जाति-बहिष्कार के अतिरिक्त प्रायश्चित, जेल और जुर्माने के दण्ड भी दिए जाते थे। प्रायः ये ही बहिष्कृत जन दक्षिणारण्य में निष्कासित कर दिए जाते थे। धीरे-धीरे इन बहिष्कृत जनों की दक्षिण और वहां के द्वीपपुंजों में दस्यु, महिष, कपि, नाग, पौण्ड्र, द्रविण, काम्बोज, पारद, खस, पल्लव, चीन, किरात, मल्ल, दरद, शक आदि जातियां संगठित हो गई थीं।

रावण के शरीर में शुद्ध आर्य और दैत्य वंश का रक्त था। उसका पिता पौलस्त्य विश्रवा आर्य ऋषि था और माता दैत्यराज-पुत्री थी। उसका पालन-पोषण आर्य विश्रवा के आश्रम में उसीके तत्त्वावधान में हुआ। उसे शिक्षा-दीक्षा भी उसके पिता ने अपने अनुरूप ही दी थी। उस समय वेद का जो स्वरूप था, उसे उसने अपने बाल्यकाल में अपने पिता से पढ़ लिया था। उस काल तक वेद ही आर्यों का एक-मात्र साहित्य और कर्म-वचन था जो केवल मौखिक था—लेखबद्ध न था। रावण के मातृपक्ष में दैत्य-संस्कृति थी। दैत्य और असुर, देवों तथा आर्यों के भाई-बन्द ही थे, परन्तु रहन-सहन, विचार-व्यवहार में दोनों में बहुत अन्तर था। विशेषकर बहिष्कृत जातियां आर्यों से द्वेष और घृणा करती थीं। बहिष्कार का सबसे कटु रूप ऋषियों पुरोहितों द्वारा संस्कार-क्रिया से उन्हें वंचित रखना तथा यज्ञों से बहिष्कृत समझना था। यद्यपि अभी यज्ञों का भी विराट् रूप न बना था जो आगे बना। फिर भी यह एक ऐसी अपमानजनक बात थी जिसने इन जातियों में आर्यों के विरुद्ध दैत्यों और असुरों से भी अधिक—जो आर्यों के दायाद बान्धव थे—विद्वेष और विरोध की ज्वाला सुलगा दी थी।

रावण के मन में तीन तत्त्व काम कर रहे थे। उसका पिता शुद्ध आर्य और विद्वान वैदिक ऋषि था, उसकी माता शुद्ध दैत्य वंश की थी, उसके बन्धु-बान्धव बहिष्कृत आर्यवंशी थे। उन्हें क्रियाकर्म तथा यज्ञ से च्युत कर दिया गया था। अब उसने भारत और भारतीय आर्यों को दलित करने, उनपर आधिपत्य स्थापित करने और सब आर्य-अनार्य जातियों के समूचे नृवंश को एक ही रक्ष-संस्कृति के अधीन समान भाव से दीक्षित करने का विचार किया।

देवों और आर्यों का संगठन उस काल में अत्युत्तम था। उन्होंने लोकपालों, दिक्पालों की स्थापना की थी, जो देवभूमि और आर्यदेश के प्रान्त भाग की रक्षा करते थे। देवों की प्रवर जातियों में तब मरुत,

वसु और आदित्य ही प्रमुख थे। चोटी के पुरुषों में इन्द्र, यम, रुद्र, वरुण, कुबेर आदि थे। यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र—ये चार वंश-परम्परा से लोकपाल थे।

रावण ने देवों और आर्यों के इस संगठन को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने की योजना बनाई। उसने सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों ही प्रकार के विप्लवों का सूत्रपात किया। उसका मेधावी मस्तिष्क और साहसिक शरीर ही यथेष्ट था, तिसपर उसके साथी-सहयोगी, सुमाली, मय, प्रवण, प्रहस्त, महोदर, मारीच, महापार्श्व महादंष्ट्र, यज्ञकोष, खर, दूषण, त्रिशिरा, अंतिकाय, अकम्पन आदि महारथी सुभट और विचिक्षण मंत्री थे। कुम्भकर्ण-सा भाई और मेघनाद-सा पुत्र था। रावण की सामरिक शक्ति अब चरम सीमा तक पहुंच गई थी। खूब सलाह-सूत करके और आगा-पीछा विचारकर उसने रामेश्वर के निकट मंदराचल की समुद्रमग्न पर्वत-शृंखला के सहारे दक्षिण भारत से सम्बन्ध स्थापित किया। उसने सहस्रों समर्थ राक्षसों को विविध छद्म वेश धारण करके भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भेज दिया, जो सब जातियों में रावण द्वारा स्थापित राक्षस-धर्म का प्रचार करते तथा लोगों को राक्षस बनाते थे। इस प्रकार इस समय समूचे दक्षिणारण्य में ही नहीं, आर्यावर्त में भी बहुत-से राक्षस घूम रहे थे। अब रावण किसी सुयोग की तलाश में था। वह उसे अकस्मात् ही मिल गया। एक दिन एक दूत रावण के भाई धनपति कुबेर का संदेश लेकर आया और उसने रावण को कुबेर का यह संदेश दिया कि "तुम्हारा आचरण और व्यवहार तुम्हारे कुल के योग्य नहीं है। तुम दैत्यों के संग में बहुत गिर गए हो। दक्षिणारण्य में और भरत-खण्ड में तुम्हारे भेजे हुए राक्षस बहुत उत्पात मचाते हैं। वे ऋषियों को मारकर खा जाते हैं। यज्ञ में रुधिर-मांस की आहुति देते हैं और अनार्यों से मेल रखते हैं। तुम्हारे ये कार्य देवों और आर्यों को अप्रिय हैं। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं, तो भी तुमने मेरा बड़ा अपमान किया; फिर भी मैंने अपनी लंका खुशी से तुम्हें दे दी और तुम्हें अज्ञानी बालक समझकर तुम्हारे अपराध सहे हैं। परन्तु अब तुम्हारे कृतपाप असह्य होते जाते हैं। इससे मैं कहता हूं कि तुम अपने आचरणों को सुधारो और अपने कुल के अनुसार कार्य करो।"

दूत के ये वचन सुनकर रावण ने कहा—"अरे दूत, तेरी बात मैंने सुनी। तू जो मुझे भय दिखाता है सो मुझे तेरा यह आचरण सह्य नहीं है—फिर भी तुझे दूत समझकर सहता हूं और कुबेर धनपति

मेरा भाई है इसीलिए उसे नहीं मारता। किन्तु तू उससे जाकर कह कि रावण शीघ्र ही तीनों लोकों को जीतने के लिए आ रहा है। तभी वह तेरी बात का जवाब देगा।"

दूत को विदा कर रावण ने अपनी योजना आगे बढ़ाई। सब बातों पर सोच-विचार करके उसने दण्डकारण्य का राज्य अपनी बहिन सूर्पनखा को दिया और अपनी मौसी के बेटे खर और सेनानायक दूषण को चौदह हज़ार सुभट राक्षस देकर उसके साथ भेज दिया। इस प्रकार जनस्थान और दण्डकारण्य में राक्षसों का एक प्रकार से अच्छी तरह प्रवेश हो गया, तथा भारत का दक्षिण तट भी उसके लिए सुरक्षित हो गया।

बहुत दिनों से लंका में ताड़का नाम की एक यक्षिणी रहती थी। यह यक्षिणी जम्भ के पुत्र सुन्द यक्ष की स्त्री थी। एक पुत्र प्रसव होने के बाद एक युद्ध में अगस्त्य ऋषि ने सुन्द यक्ष को मार डाला था। अगस्त्य के साथ शत्रुता होने के कारण ताड़का ऋषियों से घृणा करती थी। उसने यक्षपति कुबेर से कहा था कि वह उसके पति के वैर का बदला अगस्त्य से ले, परन्तु कुबेर अगस्त्य का मित्र था। इससे उसने उसकी बात पर कान नहीं दिया। जब रावण ने नई रक्ष-संस्कृति की स्थापना की और कुबेर को लंका से खदेड़ दिया, तो यह यक्षिणी लंका से नहीं गई—उसने अपने पुत्र मारीच-सहित उसका राक्षस-धर्म स्वीकार कर लिया। मारीच को साहसी तरुण देख रावण ने उसे प्रथम अपने सेनानायकों में और फिर मंत्रियों में स्थान दे दिया। जब रावण का अभिप्राय ताड़का ने सुना तो उसने रावण के निकट जाकर कहा—"हे रक्षराज, आप अनुमति दें तो मैं आपकी योजनापूर्ति में सहायता करूं। आप मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनिए। मेरा पिता सुकेतु यक्ष महाप्रतापी था। भरतखण्ड में—नैमिषारण्य में उसका राज्य था। उसने मुझे सब शस्त्र-शास्त्रों की पुरुषोचित शिक्षा दी थी और मेरा विवाह धर्माता जम्भ के पुत्र सुन्द से कर दिया था जिसे उस पाखण्डी ऋषि अगस्त्य ने मार डाला। अब उस वैर को हृदय में रख मैं अपने पुत्र को ले जी रही हूं। जो सत्य ही आप आर्यावर्त पर अभियान करना चाहते हैं, तो मुझे और मेरे पुत्र मारीच को कुछ राक्षस सुभट देकर नैमिषारण्य में भेज दीजिए, जिससे समय आने पर हम आपकी सेवा कर सकें। वहां हमारे इष्ट-मित्र, सम्बन्धी-सहायक बहुत हैं, जो सभी राक्षस-धर्म स्वीकार कर लेंगे।" ताड़का की यह बात रावण ने मान ली। उसे राक्षस भटों का एक अच्छा दल देकर

तथा उसीके पुत्र मारीच को उनका सेनानायक बनाकर, तथा सुबाहु राक्षस को उसका साथी बनाकर नैमिषारण्य में भेज दिया।

रणशास्त्र और नीतिशास्त्र का महापण्डित रावण जब दण्डकारण्य और नैमिषारण्य में अपने सबल सैनिक-सन्निवेश स्थापित कर चुका और समूचे भरतखण्ड और आर्यावर्त एवं देवभूमि में अपने राक्षसों के जाल फैला चुका, तो वह अपने नाना सुमाली को लंका का प्रबन्ध सौंप एकाकी ही अपना परशु हाथ में ले चुपचाप छद्म वेश धारण कर भरतखण्ड में प्रविष्ट हुआ।

प्रथम उसने दण्डकारण्य में घूमना आरम्भ किया। इस महावन का नाम महाकान्तार भी था। यह अति दुर्गम वन था। इसका प्राकृत सौंदर्य भी अपूर्व था। वन में बड़े-बड़े पर्वत-शृंग, झरने, झील और नदी-नाले थे। दक्षिणारण्य में अभी तक दण्डकारण्य ही ऐसा स्थान था, जहां बहुत विरल बस्ती थी तथा जहां राक्षसों का प्राबल्य था। यहीं रावण की बहिन सूर्पनखा खर-दूषण तथा चौदह सहस्र राक्षस सुभटों के साथ रहती थी। फिर भी यहां कुछ ऋषिगण अपने आर्य उपनिवेश स्थापित किए हुए थे, जिनमें प्रमुख शरभंग और सुतीक्ष्ण ऋषि थे। सुतीक्ष्ण ऋषि का उपनिवेश मन्दाकिनी नदी के तट पर एक मनोरम स्थल पर था। यह उपनिवेश बहिष्कृत आर्यों का सबसे बड़ा आश्रयस्थल था। परन्तु इस दुर्गम अंचल में सबसे अधिक महिमावान् अगस्त्य का उपनिवेश था। महर्षि अगस्त्य बड़े प्रतापी ऋषि थे। यों तो ये सभी ऋषि राक्षसों से लड़ते-झगड़ते रहते थे, पर अगस्त्य ने वीरतापूर्वक अनेक राक्षसों का वध कर डाला था, जिनमें वातापि और इल्वल प्रमुख थे। इससे अगस्त्य का आतंक राक्षसों पर भी था।

आजकल जहां नासिक है, उसीके इधर-उधर पंचवटी के निकट ही अगस्त्य का उपनिवेश था। पंचवटी में ही विनता के पुत्र श्येनवंशी गरुड़ के भाई अरुण के पुत्र जटायु का उपनिवेश भी था, जो गोदावरी के तट पर एक मनोरम स्थान पर था। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत था।

रावण ने भी अपनी बहन सूर्पनखा के नेतृत्व में दण्डकारण्य में एक उपनिवेश ही स्थापित किया था, यद्यपि वास्तव में वह था सैनिक-सन्निवेश। ये राक्षस केवल अपनी संस्कृति का प्रचार बलात् करते

और वहां के लोगों को राक्षस बनाने की चेष्टा करते थे। रावण की आज्ञा युद्ध करने की न थी। इसी कारण यद्यपि यहां खर-दूषण चौदह हजार राक्षसों के साथ रहते थे, परन्तु वे लोग लड़ते-भिड़ते न थे। केवल ऋषियों के यज्ञों में आकर बलि-मांस बलात् डालते, उन्हें पकड़ ले जाते, उनकी बलि देते तथा नरमांस खाते थे।

रावण दण्डकारण्य की सुषमा पर मोहित हो गया।

रावण प्राकृत दृश्यों का आनन्द लेता तथा छद्म वेष में ऋषियों के उपनिवेशों में आता-जाता, मतलब की बातों की खोज-खबर लेता रहता था। इसी प्रकार उसने दण्डकारण्य में रहते हुए आर्यावर्त और भरतखण्ड के राज्यों का बहुत-सा ज्ञान सम्पादन कर लिया था।

१३

दण्डकारण्य के दक्षिण भाग के पास वैजयन्तपुर था, जहां का स्वामी असुरों का एकाधिपति, कुलीतरवंशी तिमिध्वज शम्बर था जो सौ दुर्गों का स्वामी था। शम्बर की राजमहिषी दितिपुत्र मय दैत्य की पुत्री तथा रावण की महिषी मन्दोदरी की सगी बड़ी बहन थी। उसका नाम माया था। असुरराज शम्बर जैसा प्रतापी और सम्पन्न था, वैसा ही शालीन और महिमावान् भी था। रावण विचरण करता हुआ अकस्मात् ही शम्बर की राजसभा में जा पहुंचा।

हंसते-हंसते शम्बर के सम्मुख जाकर रावण ने कहा—"असुरराज शम्बर की जय हो! मैं पौलस्त्य विश्रवा मुनि का पुत्र रावण, लंकापति, राजमहिषी मायादेवी का बहनोई, आपका साढ़ू, आपके दर्शनार्थ आया हूं। आप मेरे ज्येष्ठ हैं। मैं आपका अभिवादन करता हूं।" रावण के ऐसे वचन सुनकर शम्बर दोनों हाथ फैलाकर आसन से उठकर रावण की ओर दौड़ा। उसने अंक में भरकर रावण को बारंबार आलिंगन करके कहा—"आज मैं धन्य हुआ, प्रतिष्ठित हुआ। पौलस्त्य रावण, तुम पूजार्ह हो। अभ्यर्थना करता हूं। इस असुरपुरी में तुम्हारा स्वागत है। भाई, यह तुम्हारी ही पुरी है। तुम अपने ही घर आए हो।"

आनन्दातिरेक से शम्बर के नेत्रों से जलधार बह चली। उसने अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि नगर में उत्सव मनाया जाए, सब कोई आज दीपावली करें।

शम्बर ने कहा—"चलो बन्धु, अन्तःपुर में देवी तुम्हें देखकर

प्रसन्न होंगी।" उसने चेटिका की ओर देखकर कहा—"मरी जा, देवी से निवेदन कर, हमारा बन्धु लंकाधिपति पौलस्त्य रावण आया है और अब हम अवरोध में आ रहे हैं।"

चेटिका मस्तक अवनत कर, 'जो आज्ञा' कह चली गई और असुर-राज शम्बर रावण के कन्धों पर हाथ रखकर धीरे-धीरे बातें करते हुए अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

अपराह्न की मनोरम वेला में मायावती अन्तःपुर की मदन-वाटिका के माधवी मण्डप में अकेली ही कुछ विचारमग्न-सी बैठी थी। आयु उसकी अभी अट्ठाईस ही वर्ष की थी, परन्तु अपनी आयु से वह बहुत कम दीख पड़ती थी। उसका रंग तप्त कांचन के समान देदीप्य-मान था ही, उसकी भाव-भंगिमा भी बड़ी मोहक थी। उसका शरीर उठानदार था, कद कुछ लम्बा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे अंग से रक्त फूटकर बाहर निकलना चाहता है। लावण्य और स्वास्थ्य की कोमलता का उसके शरीर में कुछ ऐसा सामंजस्य था कि किसी भी तरह सुषमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

शम्बर एक प्रतापी पुरुष अवश्य था पर उसकी अवस्था पचास वर्ष से अधिक थी। वह राजकीय आवश्यकता और युद्धों से घिरा रहता था। यद्यपि वह प्रेमी, भावुक और स्वच्छ हृदय का पुरुष था, परन्तु सच्चे अर्थों में मायावती की मांग का वह पूरक न था। वह एक अच्छा पति था, पर मायावती की उद्दाम वासना पति के स्थान पर प्रेमी चाहती थी। इतने बड़े राज्य का अधिपति पचास वर्ष की ढलती आयु में प्रेमी नहीं हो सकता था। मायावती के कोई संतान भी नहीं हुई थी, इससे भी उसकी वह पिपासा भड़की हुई थी। फिर भी मायावती के चरित्र में कोई दोष न था। उसकी मानसिक भूख मन ही में थी। अपनी मर्यादा, चरित्र तथा दायित्व का उसे पूरा ज्ञान था।

रावण की अवस्था अभी लगभग मायावती के बराबर ही थी। कहना चाहिए—एकाध वर्ष कम ही थी। रावण निर्द्वन्द्व, हंसमुख, विनोदी, वीर और साहसी था। उल्लास और आकांक्षाओं से उसके रक्त की प्रत्येक बूंद भरपूर थी। माया को देखते ही रावण के नेत्रों में मद छा गया। माया उसकी साली—पत्नी की बड़ी बहन थी, अतः माया से वह केवल खुलकर हास्य-विनोद ही करता, व्यंग्य-विनोद भी करने लगा। रावण के स्वभाव, विनय, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और

पौरुष—इन सबपर मायावती विमोहित हो गई। एक अज्ञात आकर्षण रावण के प्रति उसके मन में उत्पन्न हो गया। वह रावण को चाहने भी लगी और प्यार भी करने लगी।

माधवी-मण्डप में अकेली वह असुर-साम्राज्ञी रावण ही के विचार में कुछ अनमनी-सी बैठी थी। उसका मन परस्पर-विरोधी भावों से आन्दोलित हो रहा था। इसी समय रावण ने हंसते-हंसते मण्डप में प्रवेश करते हुए कहा—"देवी प्रसन्न हों, इस मंगलमयी सान्ध्य वेला में वनश्री की शोभा को आपने अपनी उपस्थिति से कैसा सजीव कर दिया है! ऐसा प्रतीत होता है कि इस माधवी-लता से आवेष्टित मण्डप से छन-छनकर जो अस्तंगत मरीचिमाली की स्वर्णिम रश्मिराशि एकत्र हो गई है, उसे किसी जादूगर ने जैसे एकत्र कर मूर्तरूप दे दिया है।"

"ओह, लंकेश्वर केवल वीर-शीरोमणि ही नहीं हैं—चाटुकार भी वैसे ही हैं। इसी गुण ने शायद मन्दोदरी को मोह लिया है कि कभी वह अपने आत्मीयों को याद भी नहीं करती।"

"परन्तु आपकी आनन्द और श्रद्धा की मूर्ति तो उसीने मेरे हृदय में अंकुरित की है। तभी तो आपके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण करने इतनी दूर से आया हूं।"

"जाइए, बातें न बनाइए। श्रद्धांजलि उन्हीं चरणों में अर्पित कीजिए जो नूपुरध्वनि से लंका के मणिमहालय को मुखरित करते हैं। अपात में दान करने से पुण्यक्षय होता है—ऐसा नीतिकारों का वचन है।"

"आपका वचन प्रमाण है। किन्तु अभयदान मिले तो कुछ निवेदन करूं!"

मायावती हंस दी। उसने हाथ उठाकर अभिनय-सा करते हुए कहा—"अभय, लंकाधिपति, आपको अभय!"

"तो मुझे कहने दीजिए कि रावण लंकाधिपति नहीं, आपका दास है। उसे इन चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करने दीजिए।" हठात् रावण मायावती के सम्मुख घुटनों के बल बैठ गया।

मायावती ने भयभीत होकर इधर-उधर देखा। उसका मुंह लज्जा से लाल हो गया। उसने कहा—"उठिए, यह आप क्या कर रहे हैं?"

"आराधना कर रहा हूं—उस देवी की, जिसकी अप्रतिम छवि मेरे रक्त के प्रत्येक बिन्दु में व्याप्त हो गई है। क्षमा करो सुन्दरी, यह रावण आपका दास है।" इतना कहकर उसने उसके दोनों हाथ

अपने हाथों में लेकर होंठों से लगा लिए।

हठात् रावण के इस आचरण से मायावती विचलित-विस्मित हो गई। वह भीत-चकित हरिणी की भांति कांपने लगी। उसके मुंह से बात न निकली। एक अकथनीय आनन्द से वह विह्वल हो उठी, पर तुरन्त ही सावधान होकर उसने अपना हाथ खींच लिया और कहा—"यह क्या लंकेश्वर ?"

"स्वीकार करता हूं, मैंने अपराध किया है। किन्तु यह आपकी इस अतुलनीय रूप-माधुरी का सत्कार है। इस दिव्य ज्योति की मानसी पूजा है। आप रुष्ट क्यों हो गईं ?"

"रुष्ट नहीं हूं, परन्तु आप मर्यादा से बाहर आचरण कर रहे हैं।"

"देवी प्रसन्न हों, निस्सन्देह अकिंचन आपकी कृपा के योग्य नहीं, पर इस दिव्य सौन्दर्य की पूजा से तो आप मुझ दास को वंचित मत कीजिए।"

"यह क्या आप व्यंग्य कर रहे हैं लंकेश ?" मायावती ने अपनी प्रशंसा सुनकर असंयत होकर धड़कते हुए हृदय से कहा।

"नहीं देवी, मैं सच कह रहा हूं। मैं चाटुकारिता नहीं करता। मैं आपपर मुग्ध हूं, मेरा हृदय आपपर न्योछावर है।"

"यह तो आप मन्दोदरी के प्रति अन्याय कर रहे हैं।"

"मन्दोदरी को निस्सन्देह मैं प्राणों से अधिक प्यार करता हूं पर आपके दिव्य रूप की तो मैं पूजा करता हूं, परन्तु आपके क्रोध से भय खाता हूं।"

मायावती के आग्रहशील हृदय में प्रवृत्ति की लहरें उमड़ने लगीं। उसने मन्द-मन्द मुस्कराकर कहा—"वीरध्वज लंकेश भी भय खाते हैं स्त्रियों से, यह तो लंकेश के लिए प्रशंसा की बात नहीं है।" रावण के नेत्रों की तृष्णा उभर आई, उसने कहा—"आह, तब आप मुझपर एकदम निर्दय नहीं हैं।"

इतना कहकर रावण ने झपटकर मायावती को अपने अंकपाश में दबोच लिया। मायावती बाज के पंजे में दबी हुई कबूतरी की भांति छटपटाने लगी। उसका शृंगार अस्तव्यस्त हो गया, वस्त्र फट गए। केश बिखर गए। वह केले के पत्ते के समान कांपने लगी। मायावती की दुर्दमनीय प्रवृत्ति भी तीव्र अभिलाषाग्नि से उद्दीप्त हो उठी। उसने कांपते हुए मृदु-मन्द स्वर में कहा—"नहीं, नहीं, मत करो, ऐसा मत करो!"

इसपर रावण ने उसे और भी कसकर अपनी बलिष्ठ भुजाओं में

भर लिया। और उसके होंठों के निकट अपने उत्तप्त होंठ ले जाकर कहा—"प्रिये, तू मेरी आराध्या है।"

उसने अपने अधर मायावती के अधरों से मिला दिए। मायावती भी आवेश में आ रावण के अंक में समा गई। वह भूल गई अपना स्त्री-धर्म, राजपद-मर्यादा, असुरराजमहिषी का गौरवमय पद। उसने उन्मत्त हो सब कुछ भूल, उस नायक के आलिंगन में अधखुले नेत्रों के साथ अपना शरीर अर्पित कर दिया।

वज्र-गर्जना के समान शम्बर के शब्द दोनों के कानों में पड़े। असुरराज कह रहा था—"अरे विश्रवा मुनि के पुत्र, तेरे शस्त्र कहां हैं, शस्त्र ले। तू कुलीन है, प्रजापति का वंशधर है, लोकपाल का भाई है। मैं तेरा निरस्त्र वध नहीं करूंगा।"

असुर-सम्राट् के ये वाक्य सुनते ही मायावती मूर्छित हो गई। रावण ने उसे छोड़ दिया। वह नीची आंखें करके शम्बर के आगे खड़ा हो गया।

शम्बर ने कहा—"शस्त्र ग्रहण कर रावण!"

"नहीं, आप मेरा निरस्त्र ही वध कीजिए।"

"यह मेरे कुल की मर्यादा नहीं।"

"किन्तु मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा।"

"तो मल्लयुद्ध कर।" शम्बर ने अपने हाथ का शूल दूर फेंक दिया। परन्तु रावण उसी भांति सिर नीचा किए खड़ा रहा।

शम्बर ने कहा—मैं विलम्ब और आज्ञा की अवज्ञा सहन नहीं कर सकता रावण!"

"मैं आपसे युद्ध नहीं करूंगा!"

"नहीं कैसे करेगा रे, लम्पट, परस्त्रीगामी, चोर!" असुर ने एक लात मारी? लात खाकर रावण भूमि पर जा गिरा। असुर ने कहा—"युद्ध कर!"

"नहीं, किन्तु तुम अब मेरा वध करो असुरराज।"

"वध नहीं, पाद-प्रहार करूंगा।"

"पाद-प्रहार नहीं। अनुग्रह मांगता हूं, तुम मेरा वध करो।"

परन्तु असुर ने फिर रावण की छाती पर लात मारी। इस बार रावण लात खाकर गिरा नहीं। दो कदम पीछे हट गया। उसने कहा—"असुर शम्बर, अब बस करो। बहुत हुआ। दोष-निवारण हो गया।

मैं तुम्हें क्षमा करता हूं, अब मुझे जाने दो।"

"तू ऐसा जघन्य अपराध करके जीवित जाएगा मेरी पुरी से!"

"किन्तु मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया।"

"अरे लम्पट, अपराध नहीं किया? तूने क्या मेरी पत्नी से बलात्कार की चेष्टा नहीं की?"

"स्त्री और पृथ्वी वीरभोग्या हैं—फिर असुरों की स्त्रियों पर किसीका एकाधिकार नहीं, वे सभी के लिए हैं।"

"किन्तु मेरी यह लात केवल तेरे लिए है।" असुर ने फिर रावण के वक्ष पर लात मारी। इस बार रावण ने असुर का पैर पकड़कर उसे अपने सिर के चारों ओर घुमाकर दुर फेंक दिया। शम्बर घूमते हुए चक्र की भांति एक धनुष दूर जा गिरा। इस बीच रावण ने अपना कुठार उठा लिया।

शम्बर भी उठकर शूल लेकर रावण पर झपटा। उसने भरपूर वेग से शूल रावण के ऊपर फेंका। शूल रावण के पार्श्व में घुस गया। पर रावण ने परशु सिर पर घुमाकर असुर पर आघात किया। असुर घूमकर वार बचा गया। किन्तु वह घुटनों के बल गिर गया। रावण ने फिर परशु का प्रहार किया। असुर ने लेटकर प्रहार बचा, रावण के पैरों में घुस, उसे गिरा दिया। परशु उसके हाथ से छूट गया। दोनों योद्धा परस्पर गुंथ गए। दोनों एक-दूसरे पर लात-मुक्कों का प्रहार करने लगे। दोनों एक-दूसरे को दलमल करने लगे। दोनों के शरीर और नाक-मुंह से रक्त झरने लगा। लड़ते-लड़ते ही दोनों फिर खड़े हो गए। असुर ने विकराल खड्ग उठाया। रावण ने अपना परशु लिया। दोनों घात-प्रतिघात करने लगे। रावण प्रबल पराक्रम से भिड़ गया। अन्त में असुर ने खड्ग का रावण के सिर पर प्रहार किया। उस प्रहार से रावण का किरीट गिर गया और वह बेसुध होकर कटे वृक्ष की भांति धरती पर गिर गया। शम्बर ने उसके हाथ-पैर बांधकर अन्धकूप में डलवा दिया।

मायावती की ओर ध्यान देने का शम्बर को समय नहीं मिला। इसी समय चर ने उसे सूचना दी कि देवों और आर्यों की सेनाएं वैजयन्तपुरी की सीमाएं लांघ चुकी हैं। गिरिव्रज में आ पहुंची हैं। शम्बर ने भी तत्क्षण ही असुरों को सन्नद्ध होने का संकेत किया। भेरी मुरज और शंख बजने लगे। दुंदुभि धमक उठी। हाथी चिंघाड़ने लगे।

घोड़े हिनहिनाने लगे। असुरवाहिनी बरसाती नदी के वेग के समान शत्रुओं का दर्प चूर्ण करने बढ़ चली।

गिरिव्रज की उपत्यका में पांचालपति दिवोदास और महाकोशल के स्वामी राजसिंह आर्येन्द्र दशरथ अजेय की संयुक्त वीरवाहिनी शत्रु की प्रतीक्षा कर रही थी। दिवोदास की सेना में देव, नाग, गन्धर्व और आदित्य आदि सभी सुभट थे।

दोनों ही पक्षों के भट आमने-सामने हो युद्ध करने को विकल हो उठे। आर्यों के प्रधान सेनाधिपति ने महाशुचि व्यूह का निर्माण किया। शम्बर ने अपनी सेना का अर्धचन्द्र व्यूह रचा।

व्यूहबद्ध होने के बाद ही दोनों सेनाओं में रणवाद्य बज उठे। देखते ही देखते दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे। जय-जयकार का महा-शब्द होने लगा। बाणों से आकाश छिप गया। शस्त्रों के परस्पर टक-राने से आग निकलने लगी। हाथी, घोड़े और सुभट मर-मरकर गिरने लगे। उनसे रुधिर की नदी वह चली। देवों की विकट मार से विकल होकर असुर इधर-उधर भागने लगे। यह देख शम्बर ने बाणों की विकट वर्षा कर दिवोदास के सारथी को मार दिया। उसके घोड़े भी मर गए। यह देख असुरों ने बड़ा भारी जयनाद किया। इसपर दिवोदास रथ से कूदकर शम्बर के रथ पर चढ़ गया। उसने उसका धनुष काट दिया तथा ध्वजा गिरा दी। यह देख बड़े-बड़े विकट असुरों ने पांचालपति को घेर लिया। विद्याधरों के राजा विकृतदंष्ट्र पंचरथ ने यह देखा तो वह समुद्र-गर्जना की भांति महानाद करता हुआ असुरों के दल पर पिल पड़ा। गन्धर्वों का विकट विक्रम देख असुर भयभीत होकर भागने लगे। शम्बर ने यह देखा तो हुंकार भरकर अपना रथ उसी ओर बढ़ाया और प्रबल पराक्रम से उनके सारथी, ध्वजा, रथ तथा घोड़ों को मार कुण्डल समेत उसका सिर काट लिया।

महाराज दशरथ के साथ कैकेयी धनुष-बाण ले राजा के पृष्ठ की रक्षा कर रही थी। महाराज दशरथ अपने यूथपों को ललकारकर विकृतदंष्ट्र का बदला लेने आगे बढ़े। उनका क्रोध देख और प्रचण्ड बाण-वर्षा से व्याकुल हो असुर चीत्कार कर भागने लगे। कुछ बाणों से विद्ध हो-होकर मरने लगे। इसपर कंकट-अंकुरी, प्रचण्ड और काल-कम्पन—इन चार असुर यूथपतियों ने बाण-वर्षा से दशरथ के रथ की धज्जियां उड़ा दीं। घोड़े मार डाले, चक्र तोड़ डाले। इसपर महाराज दशरथ रथ से कूदकर खड्ग और चक्र चलाने लगे। असुर यूथपतियों ने उन्हें चारों ओर से दबोच लिया। उनका अंग बाणों से बिंधकर

छलनी हो गया। इसपर विकट साहस कर रानी कैकेयी ने एक हाथ में चक्र को सम्हालकर घायल राजा को रथ पर बैठाकर बाण-वर्षा करनी आरम्भ कर दी।

पांचालपति दिवोदास ने दूर से महाराज दशरथ का यह संकट देखा। वह अपने दस सहस्र अतिरथों को ललकारकर उधर बढ़ा। उसने विकट पराक्रम से दशरथ का मूर्च्छित शरीर अपने रथ पर डाल उन्हें निरापद स्थान में भेज दिया। फिर वह दूसरे रथ पर आरूढ़ हुआ, जिसमें सोलह श्यामकर्ण घोड़े जुते थे। इसी समय अवसर पाकर दिवोदास ने शम्बर का सिर काट लिया। सिर कटने पर भी दो मुहूर्त तक उसका कबन्ध लड़ा। असुर का कबन्ध गिरते ही देवों ने विजय-शंखध्वनि की। असुर भयभीत होकर रक्त के कीचड़ में लथपथ युद्ध-भूमि से भाग चले। इसी समय सूर्य अस्ताचल को गए। पांचालपति दिवोदास विजय के नगाड़े बजाता हुआ पीछे लौटा।

धूलुण्ठिता मायावती की उपेक्षा कर शम्बर रणक्षेत्र की ओर चल दिया था। जाने से पूर्व उसने मायावती से भेंट भी नहीं की। वह पुंश्चली थी। मानवती और भावुक मायावती पति की इस अवज्ञा, अपने पाप और रावण के अपराध से अभिभूत हो, चैतन्य आते ही मृत्यु की कामना करने लगी। शम्बर को वह प्यार करती थी। शम्बर ने भी माया को सदैव प्राणाधिक समझा था। उसके जीवन में यह प्रथम ही क्षण था, जब उसकी अवज्ञा हुई—अप्रतिष्ठा हुई। परन्तु वह जितना ही विचार करती, उसे अपना अपराध गुरुतर प्रतीत होता जाता था। उसने यह निर्णय किया कि वह पति से दण्ड की याचना करेगी, फिर अग्नि-प्रवेश करेगी।

सम्राट् के शव को योद्धा रणांगण से ले आए। प्रतिमागृह में राजशव की प्रतिष्ठा हुई। शव का संस्कार कर, उसे अगरु-कस्तूरी-चन्दन-गोरोचन से चर्चित कर, श्वेत कौशेय से आच्छादित कर, उसके चारों ओर घृत के सहस्र दीप जलाए गए। शोकपूर्ण वाद्य गर्भगृहों में बजने लगे। असुर पुरोहितों ने मंत्रपाठ करना आरम्भ किया। बलि, अर्चना और अन्त्येष्टि के अन्य उपचार सम्पन्न होने लगे। मायावती ने असुरराज-महिषी की गरिमा धारण की। अश्रुविमोचन नहीं किया। सहमरण को सन्नद्ध होकर चिता तैयार करने की आज्ञा दी। मज्जन किया, शृंगार किया, अंगराग लगाया और मंगलचिह्न अंग पर धारण

किए। फिर वह पति के सिर को गोद में लेकर बैठ गई। अगरु और चन्दन की चिता रचकर तैयार की गई थी। घृत और कपूर स्थान-स्थान पर उसमें रख दिए गए थे। असुर-पुरोहित मन्त्रपाठ कर रहे थे और असुर-प्रमुख बलि-पशु ला-लाकर डाल रहे थे।

अभी रावण अन्धकूप में बन्दी था। मायावती ने उसे बन्धनमुक्त करके अपने सम्मुख लाने की आज्ञा दी। सम्मुख आने पर मायावती ने कहा—"राक्षसेन्द्र, अब तुम अपनी पुरी को लौट जाओ, मैं तुम्हें क्षमा करती हूं और तुमसे क्षमायाचना करती हूं। क्षमा करती हूं तुम्हारे अपराध-अविनय-अनीति-आचरण के लिए और क्षमा-याचना करती हूं अतिथि और आत्मीय से मेरे पति ने विग्रह किया, इसलिए इस असुरपुरी में तथा असुरराज-महालय में तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है। रत्न, मणि, माणिक्य, दासी, दास जो कुछ तुम्हें रुचे, ले जाओ। तुम मेरी छोटी बहन के पति हो, मुझे उसीके समान प्रिय हो, जाओ, मेरा आशीर्वाद मन्दोदरी से कहना। और कहना—उसकी बहन ने उसके लिए सत्पथ प्रदर्शित किया है।"

इतना कहकर मायावती मौन हो गई। उसने नेत्र बन्द कर लिए। रावण ने कहा—"देवि, इस असुर-निकेतन में यदि सत्य ही मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है, तो तुम अपने ही को मुझे दे दो। इसके बदले में मेरा लंका का सम्पूर्ण साम्राज्य, मेरा यह अधम शरीर, मन-वचन-प्राण से तुम्हारा है, तुम्हीं इसकी यथार्थ स्वामिनी हो। इस भयानक विचार को तुम त्याग दो। मुझ अनुगत दास पर प्रसन्न हो, अपने स्वर्ण-गात का यों दाह न करो। मैं मर्यादा के प्रतिकूल नहीं कह रहा हूं।" किन्तु माया ने उत्तर नहीं दिया।

रावण ने आर्तभाव से कहा—"प्रसीदतु, प्रसीदतु!" उसने कातर हो दोनों हाथ पसार दिए।

मायावती ने नेत्र खोले। उसने कहा—"हे विश्रवा मुनि के पुत्र, यह काम-विकार का काल नहीं है। मैं जिस पुरुष की पत्नी हूं, उसीके साथ सहगमन करूंगी। जाओ तुम, आयुष्मान्, तुम्हारा कल्याण हो—शिवास्ते सन्तु पन्थानः!"

माया ने दोनों हाथ आकाश में उठा दिए। रावण ने अश्रुविमोचन करते हुए कहा—"प्रसीदतु, प्रसीदतु!"

माया ने उसी भांति आंखें बन्द करके कहा—"माभूत, माभूत!"

रावण श्रद्धा से झुक गया। उसने माया की तीन परिक्रमाएं कीं। फिर दीर्घ निःश्वास लेकर बोला—"तब जाता हूं देवि, देवों के और

मानवों के रक्त से बन्धुवर शम्बर का तर्पण करने।"

और वह चल दिया। आंखों में अन्धकार और हृदय में तूफान भरे, अज्ञात दिशा की ओर—अपने भीषण कुठार को कंधे पर धरे।

१४

विकल और व्यथित रावण कन्धे पर परशु रखे, खिन्न-मन, वन-वन भटकता-घूमता रहा—कामोन्मत्त-सा, मदगन्धमत्त गजेन्द्र-सा, जिसकी हथिनी मर गई हो। कभी वह प्रलाप करता, कभी लम्बी-लम्बी सांसें खींचता। कभी किसी शिलाखण्ड पर निश्चेष्ट पड़ा रहता, कभी किसी सागर-सरोवर के तट पर बैठ उसकी लहरें गिनता। भूख-प्यास का भी उसे ज्ञान न रहा। केवल मायावती की मोहिनी मूर्ति उसके नेत्रों में बसी थी। वह मत्त मातंग-सा राक्षसेन्द्र रावण, अपनी स्वर्ण-लंका, रक्ष-साम्राज्य और उदग्र बाहुबल को भी भूल गया।

घूमता-भटकता वह गन्धर्वों के देश में जा पहुंचा। आजकल पेशावर से लेकर डेरा गाजीखां तक जो प्रदेश है, वह उस काल में गन्धर्वों का देश कहाता था। वहीं उसने गन्धर्वों के राजा मित्रावसु को देखा। मित्रावसु के साथ उसकी पुत्री चित्रांगदा थी। चित्रांगदा का रूप पार्वती के समान दिव्य था। उस नवल-यौवन-सम्पन्ना अनिन्द्य सुन्दरी गन्धर्व-बाला को देख रावण स्तम्भित रह गया। उसका रूप संसार के नेत्रों को आनन्द देने वाला था। मित्रावसु ने अर्धविक्षिप्तावस्था में रावण को उस अगम गन्धर्व-क्षेत्र में विचरण करते देख, उसके निकट आ कहा—"तू कौन है आयुष्मान् वीर गन्धर्वों के इस अगम क्षेत्र में कैसे निर्भय घूम रहा है? क्या तू आसन्न विपत्ति से असावधान है?"

रावण ने अपना परिचय दिया। मित्रावसु गन्धर्वराज ने हंसकर कहा—"मैं गन्धर्वों का राजा मित्रावसु गन्धर्व हूं और यह मेरी पुत्री चित्रांगदा है। मैं तुझपर प्रसन्न हूं। कह, मैं तेरा क्या प्रिय करूं?"

"भाग्यदोष से मैं प्रियजन-विछोह से दुःखित हूं, मैं बड़ा भाग्य-हीन हूं।"

"पौलस्त्य, इस गन्धर्व-लोक में तेरा स्वागत है। प्रसन्न हो! यह मेरी प्राणाधिका पुत्री चित्रांगदा है। यह तेरा मनोरंजन करेगी। तेरे प्रियजन-विछोह से विदग्ध हृदय को आप्यायित करेगी। इसे मैं तुझे देता हूं। तू समिधा ला, अग्न्याधान कर।"

रावण ने समिधा ला अग्न्याधान किया। गन्धर्व ने अग्नि की साक्षी

में अपनी अनिन्द्य सुन्दरी कन्या रावण को प्रदान कर दी। कन्या रावण को देकर गन्धर्वराज चला गया। चित्रांगदा पुष्पभार से लदी लता-सी लज्जावगुण्ठिता रावण के पास खड़ी रही। रावण ने कहा—"कह कल्याणी, अब तेरा क्या प्रिय करूं ?"

"वह सामने एक सरोवर है। चलिए, वहां आप विश्राम करें। वहीं मेरी सखियां भी हैं। आपको अर्घ्यपाद्य से सत्कृत करेंगी।"

रावण ने सरोवर-तट पर जाकर देखा—उसमें नीलमणि-सा स्वच्छ जल भरा है। बड़े-बड़े रक्त-कमल खिल रहे हैं, उनपर भौंरे गुंजार रहे हैं। लता-पुष्पों से स्थान सुशोभित है। वह बाला एक लता-मण्डप में पुष्पों के एक बिछौने पर बैठ गई। उस समय उसकी ऐसी शोभा प्रतीत हुई मानो शरत्काल के मेघों पर विराजमान चन्द्रमा की कला हो। उसकी इस दिव्य सुषमा को देखकर रावण आश्चर्य और उत्कंठा से भौचक रह गया। इसी समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो आकाश से उतरता हुआ तेज-पुंज आ रहा है। उसने सुन्दरी चित्रांगदा से पूछा—"प्रिये, यह क्या चमत्कार है ?"

चित्रांगदा ने कहा—"आर्यपुत्र, ये सब विद्याधरी, गन्धर्वी, अप्सराएं, नागकन्याएं मेरी सखियां हैं।" वे सब अपने हाथों में कोई ताज़ा कमल-फूल, कोई गन्ध-पराग, कोई अंगराग, कोई वीणा-मृदंग, षट्खंजरीक, कोई गोरोचन, कोई मयूरपुच्छ लिए वहां आ पहुंचीं। अब वे सब घेरकर रावण को सरोवर के तट पर ले गईं। उन दिव्यांगनाओं के साथ रावण ने यथेष्ट जल-विहार किया। फिर उन दिव्यांगनाओं ने रावण को नवीन वस्त्राभरण धारण कराए। प्रियतमा गन्धर्वनन्दिनी सहित उसे दिव्यासन पर बैठाकर स्वर्णथालों में विविध प्रकार के स्वादिष्ट भुने मांस, मिष्टान्न, पक्वान्न परोसे।

इस प्रकार सेवा-सत्कार, स्नान-अर्चना, आहार-विहार से सब भांति तृप्त कर, रावण की सब क्लान्ति हरण कर चित्रांगदा उसे दिव्य कनकरथ में बैठाकर अपने मणिमहल में ले गई।

धीरे-धीरे सन्ध्या का अतिक्रमण हुआ। रात्रि हुई। महल अनगिनत सुगन्धित तेलों के दीपों तथा रत्नदीपों से आलोकित हो उठा।

सखियां चित्रांगदा और रावण को अब अपने शयनागार में ले गईं। वहां एक बहुत ऊंचा अद्भुत पलंग बिछा था, जिसपर बहुमूल्य कोमल वस्त्र बिछा था। उसपर चन्द्रमा के समान एक छत्र लगा था। चित्रांगदा पति के अंक में उस शय्या पर आ बैठी। दिव्यांगनाएं चन्दन और मयूर-पुच्छ की पंखियां लेकर उनकी हवा करने लगीं। रावण उस सुख-सागर

में जैसे खो गया। उसने वि विध रास-रंग-विहार किया। दिव्य गन्धर्व-कन्या चित्रांगदा के साथ रा ि-विलास कर श्रान्तश्रमित रावण सो गया।

कुछ काल रावण ने गन्धर्व-कुमारी के साथ यथेष्ट विहार किया। वह उस आनन्दलोक में प्रहृष्टमन रमण करता रहा। सुवासित गंधर्वी सुरापान कर और शील-रूप और कोमल हाव-भाव में अद्वितीय गन्धर्व-कुमारियों के साथ नानाविध हास-विलास और रति कर जब वह तृप्त हुआ, तो उसने वहां से चलने का विचार गन्धर्वी चित्रांगदा पर प्रकट किया। सुनकर चित्रांगदा विकल हो गई। गन्धर्वराज को जब राक्षसेन्द्र का यह विचार ज्ञात हुआ तो उसने प्रसन्नमन वेदी रच, ढाई-ढाई मन की हज़ार विदरी स्वर्ण, रत्नाभरणों से तथा अनेक प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों से भरे सौ ऊंट, सात हज़ार घोड़े, पांच हज़ार हाथी और एक हज़ार रूपलावण्यवती किशोरी कुमारी गंधर्व-कन्याएं तथा सात देश रावण को वेदी पर संकल्प कर दिए।

१५

वन, पर्वत, उपत्यका सबको पार करता हुआ वीर शिरोमणि रावण अन्ततः पम्पा-सरोवर पर आ पहुंचा। यहां की भूमि समतल थी। घाट सुन्दर और सुगम थे। सरोवर के नीचे की भूमि बालुकामय थी। असंख्य नीलकमल और रक्तोत्पल उस सरोवर की शोभा बढ़ा रहे थे। सरोवर के पश्चिम तट पर ही महामुनि मातंग ऋषि का आश्रम था। उसमें एक हज़ार वटुक वेद पढ़ते थे और ब्रह्मचर्य धारण करते थे। आश्रम में अनेक वानर-कुमार ब्रह्मचारी वेदपाठी थे। अनेक यति, तपस्वी व्रतधारी पुरुष-स्त्री वहां तपस्वी जीवन बिताते थे। इसी आश्रम में एक अमोघ प्रभावशाली महिला शबरी रहती थी। वह जाति की तो निषाद थी, परन्तु महाज्ञानवती एवं तपस्विनी थी।

सरोवर के सम्मुख ही ऋष्यमूक पर्वत था। यह पर्वत जैसा मनोरम था वैसा ही दुरारोह भी था। इस पर्वत पर सर्प बहुत थे। वन में हाथियों के भी बहुत झुण्ड विचरण करते थे, जो यूथ बनाकर सरोवर के तट पर जल पीने आते थे। पर्वत के अंचल में बड़ी-बड़ी प्राकृत गुफाएं थीं। फल-फूल और कन्द-मूल की तो वहां कोई कमी थी ही नहीं। रावण ने सरोवर में स्वच्छन्द स्नान किया। तृप्त होकर कन्द-मूल-फलों का

आहार किया। फिर वह मुनि के आश्रम में गया।

महामुनि मातंग ऋषि तथा शबरी ने रावण का आतिथ्य किया। उसे अर्घ्यपाद्य दिया। इसके बाद रावण ने किष्किन्धा नगरी में प्रवेश किया। उस स्वर्ण-नगरी में स्वच्छ, सुगन्धित पवन प्रवाहित था। उसमें विंध्य पर्वत के ऊंचे गगनचुम्बी प्रासाद थे। नगर में अनेक रंगस्थलियां थीं। वानर नागरिक और उनकी पत्नियां सजी हुई पालकियों में इधर-उधर आ-जा रहे थे। यहां इन्द्र पुत्र महाबली वालि और सुग्रीव दो भाई राज्य करते थे। बालि का शरीर लोहे के समान कठोर था। जब वह मुद्गर लेकर युद्ध में उतरता था, तब बड़े-बड़े योद्धा भी उससे पार नहीं पा सकते थे। वह अब तक किसी वीर से परास्त नहीं हुआ था।

ऋष्यमूक पर्वत पर कभी सात ऋषियों के आश्रम थे। अब उनके स्थान पर सात विशाल ताड़ वृक्ष थे। उन्हींके निकट किष्किन्ध्यापुरी थी। रावण राजपथ, वीथी, अट्टालिकाएं देखता हुआ राजमन्दिर की पौर पर जा खड़ा हुआ। राजमन्त्रियों ने उसे अतिथि-अभ्यागत जान अर्घ्य-पाद्य से सत्कृत किया। परिचय पूछा, आने का कारण जाना। मन्त्री तार ने कहा—"आप तनिक विश्राम कीजिए। वानरराज वालि सन्ध्योपासना को समुद्र-तट पर गए हैं। यह उनका नित्य-नियम है, आप उनसे युद्ध-याचना कर सकते हैं अथवा किसी वानर से द्वन्द्व रच सकते हैं, इससे भी हमारा मनोरंजन होगा।"

परन्तु रावण ने कहा—"मंत्रिवर, मुझे वानरराज के दर्शन की बड़ी उत्सुकता है, मैं वहीं जाकर उनसे युद्ध-याचना करूंगा। अन्य वानरों से द्वन्द्व करने का मेरा क्या प्रयोजन है?" मंत्रियों ने कहा—"यदि आपको अपने जीवन का मोह नहीं है तो आप समुद्र-तट पर चले जाइए। वहीं महातेजस्वी सुभट बालि से आपका साक्षात् हो जाएगा।"

समुद्र-तट पर जाकर रावण ने देखा—बालि एकाग्रमन सूर्य पर दृष्टि दिए द्वितीय सूर्य के समान अचल भाव से समुद्र-जल में खड़ा है। रावण ने उच्च स्वर से कहा—"युद्धं देहि! युद्धं देहि!"

बालि ने मुंह फेरकर महावीर्यवान् रावण को देखा। सूर्य को जलांजलि दी। फिर जल से बाहर आकर कहा—"आप कौन महाभाग मुझसे युद्ध-याचना कर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं?" रावण ने कहा—"मैं सीत द्वीपों सहित लंका का अधीश्वर पौलस्त्य रावण हूं और गूढ़ उद्देश्य से आपसे युद्ध-याचना कर रहा हूं। आइए, आप

भयभीत नहीं हैं तो युद्ध कीजिए।"

बालि ने हंसकर कहा—"अतिथि का अर्घ्य-पाद्य से सत्कार किया जाता है। फिर आप महाप्रतिष्ठित हैं। परन्तु आप युद्ध-याचना करते हैं, आपका अभिप्राय गूढ़ है तो ऐसा ही हो। आप शस्त्र-पात कीजिए।"

"नहीं वीर, आप निरस्त्र हैं, मैं मल्लयुद्ध करूंगा।"

"तो ऐसा ही हो।"

रावण ने अपना परशु फेंक दिया। दोनों वीर समुद्र की सोन रेती में मल्लयुद्ध करने लगे। कुश्ती के दांव-पेच चलने लगे। दोनों अप्रतिम योद्धा थे, वे परस्पर एक-दूसरे की प्रशंसा करते हुए बड़ी देर तक मल्लयुद्ध करते रहे। दोनों के शरीर पसीने से लथपथ हो गए। युद्ध करते-करते उन्हें दो प्रहर का काल हो गया। अन्त में बालि ने रावण को परास्त कर उसके वक्ष और कण्ठ पर अपना चरण रखकर, हंसते हुए कहा—"पौलस्त्य रावण, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हुई या अभी और कुछ इच्छा है?"

रावण ने भी हंसकर कहा—"सन्तुष्ट हुआ इन्द्रतनय, तू महा-वीर है। तुझमें अद्भुत बल है, विक्रम है। तेरी गति वायु के समान है। मैं विश्रवा मुनि का पुत्र, पौलस्त्य रावण सात द्वीपों सहित लंका का अधिपति, तेरा अभिनन्दन करता हूं। तेरे बल की थाह के लिए मैंने तुझसे युद्ध किया था, क्योंकि मैं तुझसे मित्रता स्थापित करना चाहता था। अब अग्नि की साक्षी में तुझे अपना मित्र बनाता हूं। अब से स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र—सब वस्तुएं हमारी-तुम्हारी एक ही रहेंगी। हम-तुम दोनों मिलकर ही इनका उपभोग किया करेंगे।"

रावण के ये वचन सुन बालि प्रसन्न हो गया। उसने उसके कण्ठ से अपना चरण हटाकर कहा—"मैं तुझपर प्रसन्न हूं। तू श्रेष्ठ कुल का वीर है, पूज्य है, श्लाघ्य है। आ, अग्न्याधान कर, हम अग्नि को साक्षी बनाकर बन्धुत्व की स्थापना करें।"

दोनों ने अग्नि प्रज्वलित कर परस्पर बन्धुत्व की प्रतिज्ञा की। फिर दोनों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया।

१६

हिमालय के अंचल में छद्मवेशी रावण कुबेर की अलका के चारों

ओर घूम-फिरकर सब घाट-घर देखने लगा। घूमते-घूमते वह शरवन में जा पहुंचा। यह शरवन सूर्य की धूप में स्वर्ण, सूर्य और अग्नि के समान चमक रहा था। यहां शरवन में कास इतना ऊंचा था कि रावण को आगे की राह ही नहीं मिली। रावण अभी विमूढ़-सा हो इधर-उधर देख ही रहा था कि एक विकट पुरुष उसके पास आया। उसने रूखे स्वर से पूछा—

"तू कौन है रे पापिष्ठ, कैसे तूने इस अगम वन में आने का साहस किया?"

रावण ने उससे तनिक भी भयभीत न होकर कहा—

"तू ही कह, तू कौन है और किस अभिप्राय से तू इस वन को अगम कहता है?"

"अरे, तू क्या नहीं जानता, यहां भगवान रुद्र का निवास है? यह कैलाश की उपत्यका है।"

"यह रुद्र कौन है, जिसका नाम लेकर तू मुझे डराता है?"

"देव-दैत्य-पूजित भगवान को तू नहीं जानता है? अब भाग यहां से। इस अगम क्षेत्र में प्राणियों का आना निषिद्ध है। यहां मेरी चौकी है।"

"तू कौन है?"

"मैं भगवान रुद्र का किंकर नन्दी हूं।"

"तेरे भगवान रुद्र रहते कहां हैं? उन्हें मैं भी देखना चाहता हूं।"

"तेरा दुस्साहस है। जा, जा, भाग जा। भगवान रुद्र के दर्शन यों ही नहीं होते, साधना से होते हैं।"

"कैसी साधना से?"

"वह तुझ अपात्र से मैं क्या कहूं! तू यदि भगवान रुद्र के कोप का भाजन नहीं होना चाहता है तो जल्द भाग जा।"

"पृथ्वी पर विचरण करने का हरएक प्राणी को अधिकार है। और मुझे तो ऐसा विचरण प्रिय है। तेरे रुद्र के कैलाश को भी मैं देखना चाहता हूं, चल।"

इतना कहकर रावण हंसकर पवत पर चढ़ने लगा।

नन्दी ने बाधा डालकर कहा—"मैं कहता हूं, भाग जा, आगे न बढ़, यह अगम क्षेत्र है।" पर रावण नहीं माना, तो नन्दी ने उसे पकड़कर पीछे ठेल दिया। इसपर रावण ने अनायास ही उसे उठाकर दूर फेंक दिया। उस पुरुष का ऐसा बल देख नन्दी आश्चर्यचकित रह गया। नन्दी में अमोघ बल था। वह रावण की ओर देखकर

बोला—"तू सत्त्ववान् पुरुष प्रतीत होता है। आ, मुझसे मल्लयुद्ध कर।"

रावण तैयार हो गया। बहुत देर युद्ध करने के बाद रावण ने नन्दी को पछाड़ दिया। इस समय तक शोर-शराबा सुनकर बहुत-से गण वहां आ गए थे। वे सब मिलकर शोर मचाने और शस्त्र चमकाने लगे। नन्दी ने कहा—"नहीं, इसे मारो मत, यह सत्त्ववान् पुरुष है, इसे भगवान रुद्र की सेवा में ले चलो।"

सब गण रावण को घेरकर ले चले। रावण भी अपना परशु कन्धे पर रख उनके साथ चल खड़ा हुआ। ज्यों-ज्यों पर्वत-शृंग पर आरोपण करने लगा, त्यों-त्यों वह उसका सौन्दर्य देख मोहित होने लगा।

उसने कैलाश शिखर पर पहुंचकर विकट गणों से सेवित रुद्र को देखा। पिंगल जटा-जूट, कटि में बाघ-चर्म और दृष्टि में अन्तर्ज्योति। रावण ने ऐसे प्रभावशाली पुरुष को पहले कभी नहीं देखा। फिर भी उसने रुद्र को अभिवादन नहीं किया। अपना विकराल परशु कन्धे पर रख निर्भय सम्मुख आ खड़ा हुआ।

रुद्र ने देखा, देखकर नन्दी से पूछा—"यह कौन पुरुष है और किस अभिप्राय से हमारे पास आया है?"

नन्दी ने कहा—"देव, इसने परिचय नहीं दिया। किन्तु यह कैलाश के नीचे के अगम क्षेत्र में घूम रहा था। मेरे रोकने पर इसने मुझसे विग्रह किया और मुझे पराभूत किया।"

"तुझे पराभूत किया! श्लाघ्य है तब तो यह पुरुष।" फिर रुद्र ने रावण की ओर मुख करके कहा—"अपना परिचय दे पुरुष! मेरे अगम क्षेत्र में विचरने का कारण भी कह।"

रावण ने कहा—"महाभाग, मैं धनेश कुबेर का भाई रक्षपति लंकेश रावण हूं; मैं इस वन में स्वच्छन्द विचरण कर रहा था, तभी इस पुरुष ने मुझे रोका। इसलिए विग्रह का दायित्व मुझपर नहीं है।"

रुद्र ने सुनकर हंसते हुए कहा—"अच्छा, अच्छा, रावण तू ही है! स्वस्ति! तू कुशलपूर्वक तो है! मैंने धनेश कुबेर से तेरी बात सुनी है। पर तूने अपने ज्येष्ठ कुबेर की अवज्ञा की है, सो क्या सत्य है।"

"इसपर कौन विचार कर सकता है? मैं तो ऐसा नहीं समझता। मेरे भाई कुबेर ने यक्ष-संस्कृति स्थापित की है, किन्तु मैंने रक्ष-संस्कृति की स्थापना की है। हमारा मूल मंत्र है—'वयं रक्षामः'। जो हमसे सहमत है, उसे अभय। जो सहमत नहीं है, उसके लिए मेरा यह

कुठार है।"

रुद्र खूब जोर से हंस पड़े। उन्होंने कहा—"आयुष्मान्, यही कुठार तेरा तर्क है ?"

"मूल तर्क तो यही है।"

"किन्तु मैं तुझसे सहमत नहीं हूं।"

"तो आपके लिए भी मेरा यह कुठार है।"

"मेरे पास भी यह त्रिशूल है।"

"तो अभी हमारा-आपका शक्ति-संतुलन हो जाए।"

"पर तू मेरा अतिथि है, समागत अभ्यागत है।"

"आप इसी त्रिशूल से मेरा आतिथ्य कीजिए। मैं युद्ध की याचना करता हूं। आप दिक्पाल महाभाग यमदेव के वंशधर हैं। मैं विश्रवा मुनि का पुत्र हूं। आप मेरे ज्येष्ठ हैं, इसीसे मैं आपका शिरच्छेद नहीं करता, युद्ध की याचना करता हूं। युद्धं देहि !"

"मैं भी तेरे शौर्य से प्रसन्न हूं, तेरी युद्धाभिलाषा पूरी करूंगा, अभी तू विश्राम कर।"

"नहीं महाभाग, कार्य-पूर्ति ही मेरा विश्राम है। उठाइए त्रिशूल।"

"तब जैसी तेरी इच्छा !"

रुद्र ने हुंकृति की, डमरूनाद कर त्रिशूल उठाया। डमरूनाद सुनकर बहुत-से रुद्रगण, गन्धर्व, देव, यक्ष आ जुटे। वे रुद्र और रावण का वह विराट् युद्ध देखने लगे। रावण को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रुद्र उसके परशु-प्रहार को कौशल से विफल कर रहे हैं और वे उसपर शूल का करारा वार ही नहीं कर रहे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे कोई गुरु किसी बालक को युद्ध-शिक्षण दे रहा हो। रावण ने अपने जीवन में ऐसा विकट पुरुष नहीं देखा था। अन्त में रावण थक-कर हांफने लगा। उसका शरीर पसीने से भर गया। उसने अपना परशु फेंक दिया और सामने खड़ा हो गया।

रुद्र ने हंसते हुए कहा—"क्या थोड़ा विश्राम चाहता है तू रावण ?"

"नहीं, विराम चाहता हूं। आप युद्ध कहां करते हैं, खिलवाड़ करते हैं।"

"किन्तु तू युद्ध कर।"

"नहीं, शंकर ! शंकर !!"

"यह क्या ?"

"शं—कल्याणं कुरु ! आप देव हैं, देवपति हैं, यह रावण आपका किंकर है, आप इसका कल्याण कीजिए—शंकर ! शंकर ! !"

रुद्र ने हाथ उठाकर हंसते हुए कहा—"कल्याण हो तेरा ! तेरा शौर्य स्तुत्य है, तू अजेय है, किन्तु तेरी रक्ष-संस्कृति क्या है ?"

"वयं रक्षामः—हम रक्षा करते हैं। यही हमारी रक्ष-संस्कृति है। आप देवाधिदेव हैं। आप देखते ही हैं कि आर्यों ने आदित्यों से पृथक् होकर भरतखण्ड में आर्यावर्त बना लिया है। वे निरन्तर आर्यजनों को बहिष्कृत कर दक्षिणारण्य में भेजते रहते हैं। दक्षिणारण्य में इन बहिष्कृत वेद-विहीन व्रात्यों के अनेक जनपद स्थापित हो गए हैं। फिर भारतीय सागर के दक्षिण तट पर अनगिनत द्वीपसमूह हैं, जहां सब आर्य, अनार्य, आगत, समागत, देव, यक्ष, पितर, नाग, दैत्य, दानव, असुर परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करके रहते हैं। फिर भी संस्कृति भिन्न है, परन्तु हमारा सभीका एक ही नृवंश है और हम सब परस्पर दायाद बान्धव हैं। मैं चाहता हूं कि मेरी रक्ष-संस्कृति में सभीका समावेश हो, सभी की रक्षा हो। इसीसे मैंने वेद का नया संस्करण किया है और उसमें मैंने सभी दैत्यों-दानवों की रीति-परम्पराओं को भी समावेशित किया हैं। जिससे हमारा सारा ही नृवंश एक वर्ग और एक संस्कृति के अन्तर्गत वृद्धिगत हो। आप देखते हैं कि गत एक सौ वर्षों में तेरह देवासुर-संग्राम हो चुके, जिनमें इन सब दायाद बान्धवों ने परस्पर लड़कर अपना ही रक्त बहाया। विष्णु ने दैत्यों से कितने छल किए देवगण अब भी अनीति करते हैं। काश्यप-सागर-तट की सारी दैत्य-भूमि आदित्यों ने छल-बल से छीनी है। अब सुन रहा हूं कि देवराट् इन्द्र चौदहवें देवासुर-संग्राम की योजना बना रहा है। ये सब संघर्ष तथा युद्ध तभी रोके जा सकते हैं, जब सारा नृवंश एक संस्कृति के अधीन हो। इसीलिए मैंने यह रक्ष-संस्कृति प्रतिष्ठित की है। आगे देव प्रमाण हैं!"

रावण का ऐसा सारगर्भित भाषण सुनकर रुद्र बहुत प्रसन्न हुए और रावण के सिर पर हाथ रखकर कहा—"तेरा प्रयत्न स्तुत्य है और मैं तुझसे प्रसन्न हूं। मैं भी देव, दैत्य, असुर सबसे समान प्रीति रखता हूं।"

"तो मैं आपका अनुगत शिष्य और सेवक हूं। आपने मुझे कल्याण-दान किया है, आप मुझे अनुमति दीजिए कि मैं आपको 'शंकर'—कल्याणदाता, कहकर आपकी वन्दना करूं।"

इतना कहकर रावण ने घुटनों के बल बैठकर रुद्र के चरणों में

सिर नवाया। रुद्र ने दोनों हाथ उठाकर कहा—"कल्याणं ते भवतु ! शिवं ते अस्तु !"

१७

दिग्दिगन्त में घूम-फिरकर रावण ने पृथ्वी की राजनीतिक और सामरिक सत्ताओं को अपने मन में तौल लिया। कहां कैसे किससे लोहा लिया जाएगा, इसकी योजना उसने मन ही मन बना ली। फिर उसने दोनों भारतीय सैनिक-सन्निवेशों—दण्डकारण्य और नैमिषारण्य —का सूक्ष्म निरीक्षण किया। दण्डकारण्य के रक्षपाल खर-दूषण को और नैमिषारण्य के रक्षपाल मारीच और सुबाहु को आवश्यक गुप्त आदेश दिए। फिर वह खूब सावधानी से लंका में लौट आया।

रावण ने अपने पीछे अपने छोटे भाई विभीषण को यौवराज्य दे, अपने नाना सुमाली को प्रधानमन्त्री और सेनानायक बना दिया था। अब सबसे प्रथम इन्हीं दोनों ने खिन्न-मन आकर उसका अभिनन्दन किया। उन्हें खिन्न देखकर रावण ने कहा—"मातामह, क्या कारण है कि आप खिन्नमनस्क हैं ? अरे विभीषण भ्राता, क्यों तेरा मुख वर्षोन्मुख मेघ के समान हो रहा है ?"

इसपर विभीषण तो मुख नीचा कर मौन हो रहा, परन्तु सुमाली दैत्य ने कहा—"पुत्र, हमारा कुल दूषित हो गया। घर का छिद्र हम तुझसे कैसे कहें ?"

"क्या हुआ मातामह ?"

"तेरी अनुपस्थिति में हम अमर्यादित हो गए।"

"किन्तु किस प्रकार ?"

"प्रमाद ही कहना चाहिए। और किस प्रकार ?"

"किसका प्रमाद मातामह ?"

"मेरा ही पुत्र! तूने मुझे ही तो लंका और राजपरिवार की रक्षा का भार सौंपा था। विभीषण तो अभी निपट बालक ही है।"

"सो लंका में कहीं कुछ दोष उत्पन्न हो गया ?"

"लंका में नहीं पुत्र, राजकुल में।"

"राजकुल में क्या हुआ ?"

"आनर्तराज मधु लंका आया था।"

"आनर्तराज मधु दैत्य तो हमारा सम्बन्धी है, आपका परिजन सुप्रतिष्ठित राजवर्गी है, योद्धा है। क्या उसका लंका में यथावत्

स्वागत नहीं हुआ ?

"नहीं पुत्र, आतिथ्य ही तो राजकुल का दूषण हो गया।"

"किन्तु कैसे ?"

"हमने उसका लंका में भव्य स्वागत किया।"

"सुष्ठु !"

"राजमहालय और अन्तःपुर में उसे आत्मीय की भांति प्रतिष्ठित किया।"

"आप राजकुल की मर्यादा जानते हैं, आपने राजकुल की मर्यादा के अनुकूल ही किया।"

"किन्तु राजकुल की मर्यादा भंग हो गई।"

"किसने भंग की ?"

"इसी अतिथि चोर ने।"

"क्या कहते हैं आप मातामह ?"

"वह चोर मेरे भाई माल्यवान् की पुत्री, तेरी बहन कुम्भीनसी में अनुरक्त हो गया।"

"सुपात्र है मधु दैत्य। उसे कुम्भीनसी देकर हमारा कुल सुपूजित होगा।"

"वह तो उसे हरण कर ले गया।"

"क्या मधु ?" रावण के दोनों नेत्र जल उठे। उसके नथने फूल गए। उसने विषधर सर्प की भांति फुफकार मारकर कहा—"क्या आपके रहते मातामह ?"

"पुत्र, मैं तो भ्रम ही में रहा। फिर उस समय मैं एक गुरुतर राज-काज से द्वीपसमूहों में चला गया था।"

"और भाई कुम्भकर्ण ?"

"वह सो रहा था।"

"विभीषण ?"

"वह आकण्ठ जल में तप कर रहा था।"

"पुत्र मेघनाद ?"

"यज्ञ में दीक्षित बैठा था।"

"मन्त्रिगण, राक्षस योद्धा, हमारे सेनापति ?"

"उन्होंने विकट युद्ध किया, पर मधु ने सभीको परास्त किया वह हमारे सुपूजित राजकुल के मस्तक पर लात मारकर बलात् हमारी कन्या का हरण कर ले गया पुत्र !"

"वह हमारे सुरक्षित अन्तःपुर से बलपूर्वक हमारी बहन कुम्भी

नसी को हरण कर ले गया, आप यह कहना चाहते हैं ?"

"हां, पुत्र !"

"और भी कुछ है ?"

"हां, विद्युज्जिह्व !"

"विद्युज्जिह्व ? कौन है वह ?"

"एक तरुण दानव है।"

"उसके सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"वह लंका में आया है।"

"तो अवश्य ही आपने उसका समुचित सत्कार किया होगा।"

"नहीं किया, पुत्र !"

"नहीं किया ?"

"हमारे ऊपर तुम गुरु भार सौंप गए थे—लंका से भी बढ़कर राजकुल की रक्षा का।"

"सो फिर ?"

"राजकुल हमारी ही असावधानी से दूषित हुआ। मधु दैत्य···।"

"सो तो सुना, विद्युज्जिह्व ही की बात कहिए।"

"वह कहता हूं, वह इधर बहुधा आता-जाता रहा। उसने कहा—मृगया में मेरी अभिरुचि है।"

"इसमें दोष क्या है ?"

"नहीं है। दोष की बात दूसरी है।"

"क्या ?"

"वह सूर्पनखा में साभिप्राय दृष्टि रखता है।"

"तो ?"

"हम मधु दैत्य का कटु अनुभव ले चुके थे। हमने विद्युज्जिह्व को अन्तःपुर से दूर ही रखा।"

"वह अब कहां है ?"

"लंका ही में कहीं है।"

"सूर्पनखा बहन यदि उसे पसन्द करती है तो हम उसे विद्युज्जिह्व को दे देंगे।"

"तुम्हारी बात दूसरी है, हम ऐसा करने में स्वतंत्र न थे, हमने सावधानी रखी।"

"मैं सूर्पनखा से बात करूंगा और जिसने मेरा कुल दूषित किया है, उसे दण्ड दूंगा। पुत्र मेघनाद कहां है ?"

"निकुम्भला-उद्यान में यज्ञदीक्षित है।"

"तो वहीं मैं उससे मिलने जाऊंगा। मेरा रथ मंगाइए।"

सुमाली ने कहा—"अच्छा!" और वहां से चला गया। रावण ने विभीषण की पीठ पर हाथ फेर कहा—"भाई, कातर न हो। जाओ, तुम विश्राम करो।" और वह पुत्र मेघनाद से मिलने को चला।

त्रिकूट-उपत्यका में समुद्र-तीर से तनिक हटकर रमणीय निकुम्भला-उद्यान था। उद्यान में एक बड़ा सरोवर था। ताल, तमाल, हिन्ताल, मौलसिरी और चन्दन के वृक्ष थे। उद्यान अत्यन्त विस्तृत था। उसमें विविध लता-मण्डप, लता-गुल्म, वीथी और चौक थे। हरी घास के बड़े-बड़े चौगान थे। सघन छाया में नाना जलचर, नभचर, विहंग और जीव वहां विचरण करते थे। वहां का दृश्य बड़ा ही मनोरम था।

सरोवर के तीर पर एक स्फटिक-वेदी पर मेघनाद कृष्ण मृगचर्म पहने, हाथों में कमण्डलु लिए, सिर पर शिखा बढ़ाए, यज्ञसूत्र पहने, दीक्षित हो, मौन व्रत धारण किए बैठा था। पास ही दैत्य-याजक समासीन हो विधिपूर्वक उससे यज्ञ करा रहे थे।

रावण को यह सब अच्छा न लगा। उसने कहा—"पुत्र, यह तुम क्या कर रहे हो?"

परन्तु मेघनाद उसी प्रकार निश्चल बैठा रहा। इसपर रावण ने फिर प्रश्न किया—"अरे मेघनाद, यह तू कैसा अनुष्ठान कर रहा है? क्यों कर रहा है? मुझे ठीक-ठीक बता।" परन्तु मेघनाद फिर भी मौन—जड़ रहा। परन्तु याज्ञिक ने कहा—'हे रक्षेन्द्र, तुम्हारे पुत्र मेघनाद ने छः यज्ञ समाप्त कर लिए हैं।"

"कैसे छः यज्ञ?"

"जैसे वेद-विहित हैं—अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, वैष्णव और राजसूय।"

"किन्तु इनमें तो देवों की पूजा होती है। क्या रावण के पुत्र को इन मूर्ख देवों की पूजा करना उचित है?"

"रक्षेन्द्र, अब तक की परम्परा तो यही रही है।"

"रक्ष-कुल में यह परम्परा न चलेगी, रक्ष-कुल के इस आयुष्मान् को तो इन देवताओं को शत्रु की भांति युद्ध में जय करके उन्हें बन्दी बनाना होगा।"

"किन्तु रक्षेन्द्र, देवगण बन्दी कैसे होंगे?"

"हमारे प्रबल पराक्रम से। मैंने अपनी रक्ष-संस्कृति में केवल एक ही देव को स्वीकार किया है।"

"वह कौन है ?"

"महेश्वर, वृषभध्वज रुद्र, शंकर ! उठ पुत्र, इन हीन देवों का आश्रय त्याग, और जा, भूपति रुद्र की अर्चना कर। फिर उनके सान्निध्य से दुर्जय देवों को बन्दी बनाकर अपनी सेवा में रख।"

राक्षसेन्द्र के ऐसे वचन सुनकर मेघनाद हुंकृति कर, यज्ञासन छोड़, उठ खड़ा हुआ। यज्ञ-सूत्र उसने तोड़ दिया। शिखा काट फेंकी। यज्ञ-हवि पशुओं को खिला दी। फिर वह बद्धांजलि हो, पिता के चरणों में गिर गया। उसने रावण के चरणों में मस्तक टेककर कहा—"हे तात, कौन हैं वे दुर्लभ महेश्वर रुद्र ?"

"वे शरवन के उस पार उत्तुंग हिम-शिखर पर रहते हैं। जा और देवजय करने के निमित्त उनसे वर प्राप्त कर। उनका सान्निध्य प्राप्त करके तू कामचारी हो सकता है। उनसे खेचरमुद्रा, मृत्युंजय-सिद्धि, देवसिद्धि और दिव्यास्त्रों को प्राप्त कर।" इतना कह, रावण ने भुजा उठाकर कहा—"सब देव, दैत्य, यक्ष, किन्नर, असुर, नर, नाग सुनें—राक्षसों का यह वंश अब से कभी देवार्चन न करेगा। देव इस वंश के दास हैं, पूजार्ह नहीं। पूजार्ह केवल देवाधिदेव महादेव वृषभध्वज रुद्र हैं।"

मेघनाद ने अलक्ष्य रुद्र को साष्टांग प्रणिपात किया और कहा—"हे पिता, मैं यथावत् यम-नियम-अनुष्ठान करके भगवान् वृषभध्वज रुद्र की शरण में जाता हूं।"

"जा पुत्र, और महत् श्रेय को सिद्ध कर। फिर हम इन दुर्बल देवों का सम्मुख समर में निधन कर, विश्व में एक रक्ष-संस्कृति का प्रसार करेंगे।"

मेघनाद ने रावण की वन्दना की और गधों के वायुवेगी रथ में बैठ वहां से प्रस्थान किया। रावण भी अब चिर-वियोग-विदग्धा सुन्दरी सुकुमारी मन्दोदरी का ध्यान कर अपने अन्तःपुर की ओर चला।

अन्तःपुर में रक्षमहिषी मन्दोदरी ने रावण का भव्य स्वागत किया। सब मंगलोपचार किए। प्यार, विरह, उपालम्भ और मान-मनव्वल हुआ, रति-विलास हुआ। मिलन-यामिनी मधुयामिनी की भांति व्यतीत हुई। सुप्रभात हुआ। नित्य नैमित्तिक कार्यों से निवृत्त हो,

रावण ने अब अपने रक्ष महासाम्राज्य के विस्तार पर ध्यान दिया। इसी महत् कार्य के लिए उसने सारी पृथ्वी की यात्रा की थी। वह धर्म और राजनीति, दोनों में सार्वभौमता की स्थापना करने का स्वप्न देख रहा था। जिस महदुद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपने प्राणाधिक पुत्र मेघनाद को मृत्युंजय रुद्र के सान्निध्य में भेज दिया था, उसकी पूर्ति के लिए उसे अब अपने महावीर भाई कुम्भकर्ण, महाकूटनीतिज्ञ सुमाली तथा अपने मन्त्रियों से सत्परामर्श लेने थे। उसे पृथ्वी के सब दिक्पालों और लोकपालों को जय करना था। सर्वत्र अपनी रक्ष-संस्कृति का डंका पीटना था। वह अभी तक ऋषिकुमार और सप्त-द्वीपाधिपति ही था। किन्तु अब वह पृथ्वी-भर के नृवंश का महिदेव बनना चाह रहा था।

रात्रि ही में उसने अपने सब प्रमुख राजपुरुषों और राक्षस महज्जनों को भोर ही में सभा करने की आज्ञा दे दी थी। अब वह प्रातःकृत्यों से निवृत्त हो ज्योंही सभा-भवन की ओर जाने को प्रस्तुत हुआ, तभी मन्दोदरी ने आगे बढ़कर कहा—

"मुझे रक्षेन्द्र से कुछ निवेदन करना है।"

"किन्तु मैं तो अभी बहुत व्यस्त हूं, क्या अगत्य की बात है?"

"है तो।"

"किसके सम्बन्ध में?"

"रक्ष-राजकुमारी सूर्पनखा के सम्बन्ध में।"

"अच्छा, विद्युज्जिह्व की ओर तो तुम्हारा संकेत नहीं है, प्रिये?"

"निस्सन्देह, सूर्पनखा उससे प्रेम करती है।"

"बुरा क्या है, विद्युज्जिह्व एक उच्चवंशीय तरुण दानवकुमार है। सुन्दर और सभ्य है। यदि वह उससे प्रेम करती है तो मैं उसे अनुमति दूंगा।"

"पर मैं समझती हूं कि वह लड़की अभी प्रेम के तत्त्व से नितान्त अनभिज्ञ है। वह तो उससे विवाह करने को आतुर हो रही है।"

"तो मैं उसका अभिनन्दन करता हूं। क्यों न वे परस्पर दम्पति बन जाएं?"

"आह, पर मुझे आपत्ति है, स्वामिन्!"

"क्यों प्रिये, यदि हमारी बहिन सूर्पनखा विद्युज्जिह्व को प्यार करती है, तो हमें क्यों इस सम्बन्ध में आपत्ति होनी चाहिए?"

"क्या रक्षेन्द्र ने उसे देखा है?"

"नहीं, तुमने?"

"मैंने भी नहीं, वह सदैव छिपकर गुप्त रूप से मिलता है।"

"तो न सही हम उससे परिचित। सूर्पनखा तो उससे भली-भांति परिचित है और यह उसीका विषय भी है।"

"यही तो बात है।"

"क्या सूर्पनखा से तुम्हारी इस सम्बन्ध में कुछ बात हुई है?"

"बस इतनी ही कि वह उसे प्यार करती है।"

"तो प्रिये, तुम क्या चाहती हो?"

"केवल यही कि रक्षेन्द्र इस विषय पर ध्यान दें। इस विषय को अल्पवयस्क तरुणों के ऊपर छोड़ देना खेदजनक हो सकता है। मेरा मन कहता है, हमें यह सम्बन्ध रोकना चाहिए। यह मुझे श्रेयस्कर नहीं दीख रहा है। असंभव नहीं, एक दिन योग्य पात्र हम उसके लिए पा जाएं।"

"परन्तु उसका प्रेम?"

"बचपन का अज्ञान है।"

"प्रेम और जीवन के तथ्य का उसे अनुभव होना चाहिए। इसके लिए एक युक्ति यह हो सकती है कि एक ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति हमें ढूंढ़ना चाहिए, जिसके साथ, बिना ही विवाह किए, वह भाग जाए। प्रेम और जीवन का जब उसे अनुभव हो जाएगा, वह स्वयं अपना पति चुन सकने में समर्थ होगी। ऐसे किसी एक पुरुष पर दृष्टि करो प्रिये, मैं भी देखूंगा।"

और वह एक बार फिर मन्दोदरी को आलिंगन कर तेज़ी से चला गया।

खूब घने काले बाल, चमकती हुई काली आंखें, एक निराला-सा व्यक्तित्व, गहन अहम्मन्यता से भरपूर। रानी के समान गरिमा, पिघले हुए स्वर्ण-सा रंग, आदर्श सुन्दरी न होने पर भी एक भव्य आकर्षण से ओतप्रोत। आंखों में झांकती हुई स्थिर दृढ़-संकल्प-प्रतिमा, कटाक्ष में तैरती हुई तीखी प्रतिभा और उत्फुल्ल होंठों में विलास करती हुई दुर्दम्य लालसा—यह सूर्पनखा का व्यक्तित्व था। प्रतिक्रिया के लिए सदैव उद्यत और अपने पर ही निर्भर। लम्बी, तन्वंगी, सतर और अचंचल!

राक्षसेन्द्र रावण के सामने आकर उसने शालीनता से कहा—"जयतु देवः! जयत्वार्यः! मेरे लिए रक्षेन्द्र का कुछ आदेश है?"

"तेरे ही कल्याण के लिए। तू रक्षेन्द्र की प्राणाधिका इकलौती बहिन है।"

"कुछ विशेष बात है ?"

"हां बहिन, तुझसे महिषी मन्दोदरी ने कुछ कहा है ?"

"यही कि रक्षेन्द्र..."

"अच्छा, बैठ और बता, विद्युज्जिह्व कौन है ?"

"वह एक प्रियदर्शी तरुण दानवकुमार है।"

"तू उसे प्यार करती है ?"

"करती हूं।"

"तो लजाती क्यों है ? तेरा चरित्र निर्मल है। प्यार न अपराध है, न पाप। जो सत्य है, वह कह। क्या वह तुझसे बहुधा मिलता रहता है ?"

"बहुधा आता है, पर मुझसे कभी-कभी मिलना होता है।"

"ऐसा क्यों ?"

"महिषी और मातामह को यह रुचिकर नहीं है।"

"क्यों भला ?"

"महिषी प्यार को स्वप्न कहती हैं और सदैव मुझे डराती हैं। उनका कहना है कि किसी पुरुष को प्यार करने से जीवन का प्यार नष्ट हो सकता है।"

"किन्तु तू क्या समझती है ?"

"मैं तो कुछ नहीं समझती, परन्तु मातामह की बात कुछ और है।"

"वह क्या है ?"

"उनकी विवाह करने की आयु बीत चुकी है, वे कहते हैं—प्रेम एक धोखा है।"

"अच्छा, क्या विद्युज्जिह्व से विवाह करना चाहती है ?"

"निस्सन्देह। मैं चाहती हूं कि मैंने जो निर्णय किया है, उसमें रक्षेन्द्र बाधा न डालें।"

"बाधा नहीं डालना चाहता। मैं यह देखना चाहता हूं कि तू अपने जीवन को क्या वास्तव में प्यार करती भी है। तू विद्युज्जिह्व को प्यार करती है तो तू उससे विवाह कर; किन्तु वह उपयुक्त पुरुष है—यह अवश्य देख।"

"रक्षेन्द्र क्या कहना चाहते हैं ?"

"सुन, क्या तू किसी पुरुष के साथ भाग जाना पसन्द करेगी ?"

"किसीके साथ मैं क्यों भागूंगी ! मैं विद्युज्जिह्व के साथ विवाह करूंगी।"

"विवाह के लिए जल्दी क्या है ? अभी तू किसी पुरुष के साथ भाग जा।"

'क्यों भला ?"

"स्त्रियां प्राय: किसी प्रेमी के साथ भाग जाया करती हैं। कोई विवाह के पहले भागती है, कोई पीछे। मेरा विचार है, पीछे भागने की अपेक्षा पहले ही भाग जाना अच्छा है।"

"वाह !"

"प्रजंघ को देखा है तूने ?"

"कौन है वह ?"

"मेरी सेना का एक तरुण गुल्मपति है। तेजस्वी और मेधावी—चीते की भांति चंचल। वह उर नगर के अभिजात दैत्य-कुल का है।"

"तो उससे मुझे क्या ?"

"तू उसके साथ कुछ दिन के लिए भाग जा। इससे तुझे लाभ होगा। दुनिया की ऊंच-नीच का ज्ञान हो जाएगा। तेरा मस्तिष्क और हृदय विस्तृत हो जाएगा। यह भी संभव है कि तू उसे ही प्यार करने लगे और उसीसे विवाह कर ले।"

"परन्तु मैं तो विद्युज्जिह्व को प्यार करती हूं।"

"उसके पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में तू कुछ नहीं जानती !"

"इतना ही जानती हूं कि उसका पिता चिरप्रवासी है। घर नहीं लौटा है—और उसकी माता ने एक दुश्चरित्र और जुआरी दैत्य को घर में डाल लिया है। अब वे दोनों उसके वैरी हैं। उन्हें भय है कि अब वह समर्थ होकर उनसे अपने पिता की संपत्ति न छीन ले। वे उसे खपा डालने पर तुले हैं। इसीसे वह भागकर लंका में आ छिपा है। वह एक उपेक्षित और अनादृत पुत्र और निराश्रय तरुण है।"

"वह किस वंश का है ?"

"कालिकेयों के वंश का।"

"अरे, वे तो हमारे शत्रु हैं।"

"परन्तु वह तुम्हारा बान्धव है, चिर अनुगत।"

"कब से तू उसे जानती है ?"

"अब यह वर्ष समाप्त होता है।"

"मैं स्वीकार करता हूं कि तू उस आयु को पहुंच चुकी है कि दाम्पत्य सुख को ग्रहण करे। मैं अवश्य तेरा विवाह करके प्रसन्न होऊंगा। विद्युज्जिह्व के विरुद्ध भी मुझे कुछ कहना नहीं है, पर मैं

यह अवश्य चाहता हूं कि तू एक निरापद और आनन्दमय जीवन का आश्रय ले।"

"यह सब व्यर्थ है। मैंने विद्युज्जिह्व से ही विवाह करने का निश्चय कर लिया है।"

"बहिन, मैं तेरे प्रेम का अभिनन्दन करता हूं।"

"तो भाभी से कह दिया जाए, वह क्यों विद्युज्जिह्व को तेल में होकर देखती हैं?"

"बहिन, वह केवल तेरी भाभी ही तो नहीं, राजमहिषी हैं—तेरी अभिभावक भी हैं।"

"आप भी तो राक्षसेन्द्र हैं, सारी ही रक्ष-जाति के अभिभावक, सो आप क्या मेरे जीवन पर अपना अनुशासन रखेंगे?"

"नहीं बहिन, नहीं।"

"तो महिषी से भी कह दीजिए। वे आ रही हैं, अभी कह दीजिए।"

मन्दोदरी ने आकर पूछा—"क्या मुझसे तुम्हें कुछ कहना है?"

"मैं महिषी और रक्षेन्द्र से यही निवेदन करना चाहती हूं कि मेरे जीवन पर किसीका अनुशासन नहीं है।"

"राक्षसों की संस्कृति ही स्वतंत्र भावनामूलक है। राक्षसों का प्रत्येक जन अपने जीवन में स्वतंत्र है।"

"तो मैं विद्युज्जिह्व को प्यार करती हूं। उससे मैं विवाह करना चाहती हूं।"

"और मेरा यह कहना है कि प्यार-प्रीति के अनुभव लेने के लिए क्यों न सूर्पनखा किसी तरुण के साथ भाग जाए, पीछे विद्युज्जिह्व या उस तरुण से जो उसे रुचे, ब्याह कर ले।" रावण ने मन्दोदरी को लक्ष्य करके कहा।

"तो भागना ही है तो विद्युज्जिह्व ही क्या बुरा है?"

"हम कैसे कहें! हमने तो उसे देखा नहीं।" रावण ने कहा, "क्यों न उसे बुलाकर उसे अपनी योग्यता प्रमाणित करने का अवसर दिया जाए। बहिन सूर्पनखा, क्या तू उसे एक सन्देश नहीं भेज सकती?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"वह छिपकर रहता है। कहां रहता है, मैं नहीं जानती। वह अपनी सुविधानुसार आता है। वह जब तक आए—हमें प्रतीक्षा करनी

होगी।"

"क्या वह तुझपर विश्वास नहीं करता ? अपने भेद छिपाता है ?"

"उसने अपना गुप्त स्थान मुझे बताना चाहा था, पर मैंने ही उसे रोक दिया। उसे अपने सौतेले बाप का भय है, जो उसे मारकर अपनी राह का कंटक दूर करना चाहता है। फिर लंका में कालिकेयों का कौन मित्र है ? कालिकेय तो राक्षसों के शत्रु हैं ही। उसने अपनी कुछ गुप्त बातें मुझे बताई हैं। एक प्रकार से उन्हींपर उसका जीवन-मरण निर्भर है। मैंने ही उसका गुप्तवास नहीं जानना चाहा।"

"तब तो उसके आने तक हमें रुकना ही होगा।"

"किन्तु क्या रक्षेन्द्र उसका मणिमहालय में स्वागत करेंगे ?"

"अवश्य बहिन, क्यों नहीं ?"

"और महिषी ?"

"मैं भी बहिन। हम दोनों ही रक्षराज-नन्दिनी के कल्याण-अभिलाषी हैं।"

"उपकृत हूं ! आप्यायित हूं। आप दोनों मेरे माता-पिता हैं। मैं आपकी शरण हूं !"

१८

विद्युज्जिह्व एक प्रतिभासम्पन्न और वीर तरुण था। उसमें साहस की भी कमी न थी। अपने अदम्य साहस और उत्साह के कारण ही वह कालिकेयों का सरदार बन गया था। अपने असाधारण विक्रम से उसने वह द्वीप जय किया था और हर बार राक्षसों को उससे हार खाकर भागना पड़ता था। परन्तु उसने अभी लंका में यह प्रकट नहीं किया था कि वही कालिकेयों का सरदार है। सूर्पनखा उसे एक कुलीन दानव-तरुण ही समझती थी। उसकी उठान बड़ी सुन्दर थी, घुंघराले काले बाल तथा भरी हुई गर्दन। रंग काला था, पर दांत हीरे के समान उज्ज्वल और चमकदार थे। उसका हास्य बड़ा निर्मल था। उसका विशाल वक्ष, प्रचंड बाहु, पुष्ट जघन और तीखी दृष्टि उसके व्यक्तित्व को आकर्षक बना देते थे। वह शब्दभेदी था। धनुष भी उसका खूब बड़ा था। बाणों का तूणीर सदैव ही उसके कन्धे पर पड़ा रहता था। इसके अतिरिक्त एक विशाल शूल भी वह हाथ में रखता था। सूर्पनखा से तथा अन्यत्र भी मित्रों से उसने यही कहा था कि वह आखेट के लिए

लंका के वनों में शौक से घूम रहा है। सूर्पनखा के अतिरिक्त यह कोई नहीं जानता था कि वह कालिकेय दानव है।

सन्ध्या का अन्धकार गहरा होता जा रहा था। इसी समय विद्युज्जिह्व लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ लंका की वीथियों में तेजी से आगे बढ़ता जा रहा था। वीथिका में अन्धकार था। वह नगर का बूचड़ मुहल्ला था, जहां नर मांस से लेकर सब पशुओं का मांस मिलता था। यहां व्याघ्र का मांस भी बिक रहा था, जिसे लोग शौर्य-वृद्धि के लिए खाना रुचिकर समझते थे।

विद्युज्जिह्व के कन्धे पर एक भारी हरिण का भार था। जो बाण उसके हृदय में पार हो गया था, वह अभी उसके शरीर में अटका हुआ था। उसमें से अभी तक रक्त टपक रहा था। उसके झोले में और भी कुछ पक्षी थे, जिनका उसने शिकार किया था। परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसका स्नायुजाल लोहे का बना हो। वह दूर से आ रहा था और उसके पास काफी बोझा था, परन्तु वह बिल्कुल तरोताजा था।

एक जीर्ण किन्तु विशाल घर के फाटक पर आकर वह तनिक ठिठका। फिर वह भीतर घुस गया। उस समय घर के विशाल प्रांगण में अंधेरा छाया था। कोई पुरुष भी वहां न था। वह दालान पार कर भीतर चला गया, जहां बहुत-से राक्षस, दैत्य, दानव, नर, नारी, बालक बैठे खा-पी रहे थे। सबके हाथों में बड़े-बड़े भुने हुए मांसखण्ड थे और मद्य के भरे भाण्ड उनके आगे धरे थे। वह उनपर भेड़ियों की भांति जल्दी-जल्दी तीखे दांतों का प्रहार कर रहे थे तथा मद्य पी रहे थे। विद्युज्जिह्व ने कन्धे का भार एक ओर सहन में पटक दिया, फिर उसने इधर-उधर देखकर एक राक्षस-लड़की को संकेत से निकट बुलाकर कहा—"अरी सरमा, इन पक्षियों को मेरे लिए झट-पट अभी भून ला।"

सरमा गई और पक्षी भून लाई। पश्चात् सरमा ने उसे एक भाण्ड मद्य दिया। विद्युज्जिह्व ने उसे पान कर लिया तो सरमा ने पूछा—"एक भाण्ड मद्य और दूं?"

"नहीं!" विद्युज्जिह्व ने लापरवाही से कहा और पीठ पर तरकस बांधा।

"तो विश्राम कर, मैंने व्याघ्र-चर्म शिलाफलक पर बिछा दिया है।"

"नहीं, अभी मुझे जाना होगा, तू सो रह। अब रात को मेरा

आना सम्भव नहीं है।" बालिका ने आकुल नेत्रों से तरुण को देखा। वह उदास हो गई। पर विद्युज्जिह्व ने इसपर ध्यान नहीं दिया। वह अपना शूल हाथों में तौल रहा था। बालिका ने कुछ भयभीत होकर कहा—"मत जा, विश्राम कर।"

"जाना होगा!"

"कहां?"

"द्वीप के दक्षिणांचल में। पितृचरण बहुत दिन बाद घर आए हैं। अभिनन्दन करूंगा।"

"तो अभिनन्दन करके रात को आ, न हो प्रभात में जा।"

"बहुत दूर है, रात में लौट न सकूंगा। प्रभात तक ठहर नहीं सकता—पितृचरण पर संकट आ सकता है।"

"कैसा संकट?"

"वह राक्षसों का पुर है, जहां मातृचरण का निवास है। वह पुरुष भी राक्षस है, जिसे मातृचरण ने घर में डाल लिया है। संवादवाहक ने कहा है कि पितृचरण पर संकट आ सकता है।"

"तो मैं तेरे साथ चलती हूं।"

विद्युज्जिह्व हंस दिया। उसने कहा—"तू क्या मुझसे अधिक लक्ष्यवेध करती है? जा, सो रह। परन्तु ठहर, मुर की स्त्री और बालक को तूने खिलाया-पिलाया कुछ?"

"एक शूकर उसे दे दिया है और एक मद्यभाण्ड।"

"तो ये स्वर्ण-मुद्राएं भी उसे दे दे, कदाचित् उसे इनकी आवश्यकता है।"

उसने मुट्ठी-भर स्वर्ण-मुद्राएं अपने चर्मबन्ध से निकाल बालिका की हथेली पर रख दीं। इसी समय एक वृद्ध दानव हांफता हुआ आया। उसने कहा—"विद्युज्जिह्व, उसने तेरे पिता का वध कर दिया।"

"किसने?"

"तेरी माता ने।"

"तूने देखा?"

"मैंने उसे घर के द्वार पर आते देखा। द्वार पर तेरी माता ने उसकी अभ्यर्थना की और वह उसे भीतर ले गई। ज्योंही उसने शस्त्र खोलकर रखे, उसने उसका वध कर डाला और शव खींचकर चतुष्पथ पर डाल दिया।"

"क्या वह उसका राक्षस पति भी वहीं था?"

"नहीं।"

"तो अकेली उसीने पितृचरण का वध किया ?"

"ऐसा ही मैं समझता हूं।"

"तो द्वीप में जाकर सब कालिकेयों को शस्त्रवद्ध कर, जहां मृत पितृचरण हैं, वहां ले आ।"

यह कहकर विद्युज्जिह्व तीर की भांति वहां से चल दिया। इस समय चारों दिशाओं में अन्धकार फैल गया था। विद्युज्जिह्व अंधेरी और सूनी गलियों को पार करता हुआ सीधा समुद्र-तीर की ओर जा रहा था। उसकी चाल तेज थी और उसका मस्तिष्क विभिन्न विचारों से गरम हो रहा था। नगर का प्रांत-भाग आ गया और अब वह विजन वन में प्रविष्ट हुआ। यहां भी कहीं-कहीं समुद्र में मछली मारने-वालों की झोंपड़ियां थीं।

विद्युज्जिह्व को जैसे इन झोंपड़ों और वहां रहनेवालों से कुछ सरोकार ही न था; वह तेजी से अपने गन्तव्य पर बढ़ा जा रहा था। सामने ही एक पर्वत की उपत्यका थी, वह उसी ओर बढ़ रहा था। अन्ततः वह अपने गन्तव्य पर पहुंच गया। यहां आकर उसने अपनी गति धीमी कर ली। यहां से पर्वत-शृंखला शुरू होती थी। शीघ्र ही वह पर्वत के नीचे जा खड़ा हुआ। सामने समुद्र गरज रहा था। हवा तेज़ चल रही थी और जब वह पहाड़ से टकराती थी तो मेघ-गर्जन के समान शब्द होता था। अब उसने सावधानी से चारों ओर देखा और बिल्ली की भांति निश्शब्द पर्वत की तंग राह पर चढ़ने लगा। थोड़ी ही दूर पर उसे कुछ गुफाएं नज़र आने लगीं। छोटी-बड़ी अनेक गुफाएं थीं। उन सबमें राक्षसों और दैत्यों के परिवार रहते थे। किसी-किसी गुफा में से शोर आ रहा था। किसीमें से मांस भूनने की गन्ध आ रही थी। वह पार्श्व में घूमकर उस बड़ी गुफा के द्वार के सामने पहुंचा, जिसके डेढ़ सौ फुट नीचे नदी बह रही थी। इसके दोनों ओर आठ सौ गज़ के विस्तार में और अनेक छोटी-बड़ी गुफाएं थीं। द्वार के सामने आकर वह कुछ ठिठका। उसने देखा, सामने ही काली-काली कोई वस्तु बीच राह में पड़ी है। वही उसके पिता का मृत शरीर था। बहुत दिन से उसने अपने पिता को देखा नहीं था, परन्तु उसने कल्पनाओं और अनुमान से समझ लिया कि यही उसके पिता का शरीर है। उसने झुककर उसे देखा और घुटनों के बल उसके पास बैठ गया। फिर उसने एक लम्बी सांस ली और सिर उठाकर गुफा की ओर देखा।

वह गुफा के भीतर प्रविष्ट हुआ। द्वार के भीतर दालान में एक बूढ़ा राक्षस ऊंघ रहा था। वह बिना उसे जगाए आगे बढ़ गया। यहां प्रकाश था। चर्बी का दीप जल रहा था। सामने छोटी-बड़ी अनेक कोठरियां थीं। बीच में बड़ा हॉल था, जो अष्टभुज स्तंभों पर आधारित था। इसके सामने स्तंभोंवाला एक लम्बा दालान था। वह उसी दालान में अग्रसर हुआ। स्तंभों पर हाथी और सिंह के चित्र बने थे तथा उनपर उभरी हुई नक्काशी हो रही थी। अन्त में वह उस प्रमुख गुफा के द्वार पर पहुंच गया जिसके सामने खंभोंवाला बहुत बड़ा ओसारा था। यहां उसे एक राक्षस ने टोका। राक्षस एक अधेड़ वय का था। उसके हाथ में धनुष-बाण था। परन्तु अभी उसके मुंह से स्वर फूटा भी न था कि विद्युज्जिह्व का शूल उसकी पसलियों को पार कर कलेजे को चीर गया। वह घूर्णित हो वहीं गिर गया। इसके बाद वह रंगमहल में प्रविष्ट हुआ। द्वार पर महीन पर्दे पड़े थे। भीतर सुगन्धित द्रव्य जल रहे थे और वहीं उसकी माता बहुत-सी राक्षसी दासियों के बीच पलंग पर सो रही थी। विद्युज्जिह्व की माता का नाम विज्जला था। उसकी आयु चालीस को पार कर गई थी, परन्तु अभी उसका अंग-सौष्ठव और यौवन वैसा ही भव्य और आकर्षक था कि कोई भी तरुण उसपर मोहित हो सकता था।

कुछ देर विद्युज्जिह्व चुपचाप खड़ा अपनी माता के इस भव्य रूप को देखता रहा। फिर उसने उसका पैर पकड़कर खींचा। एकाएक नींद से चौंककर उसने यमदूत के समान विद्युज्जिह्व को सामने हाथ में विकराल शूल लिए देखा।

यद्यपि उसने बहुत दिन बाद पुत्र को देखा था, पर उसने उसे तुरन्त ही पहचान लिया। वह हड़बड़ाकर पलंग से उठ खड़ी हुई। उसने धड़कते हुए हृदय पर हाथ रखकर कहा—"जात, तू इस असमय में किस अभिप्राय से आया है?"

"मातः, मैं पितृचरण के दर्शन करने आया हूं।"

"तेरे पिता दो हैं।"

"मुझे एक ही चाहिए।"

'यदि तेरा अभिप्राय हतभाग्य मुचुकुन्द दानव से है तो उसका शव उस चतुष्पथ पर पड़ा है।"

"उसीसे अभिप्राय है मातः!"

"तो वहीं जा, यहां क्यों आया है?"

"तुझे वहीं ले जाने के लिए।"

"मेरा उससे क्या सम्बन्ध रहा ?"

"इसपर मैं विवाद नहीं करता।"

"तो कह, तेरा मैं क्या प्रिय करूं ?"

"केवल वह शस्त्र हाथ में ले, जिससे तूने उसका वध किया है।"

"किसलिए ?"

"उसीसे मेरा भी वध कर।"

"मैं तेरा वध नहीं करना चाहती जात !"

"पर मैं तेरा वध करने आया हूं मातः !"

"तेरा ऐसा धृष्ट आचरण ?"

"क्रोध करने से लाभ न होगा मातः ! शस्त्र ले और तनिक उधर खुले स्थान में चल।"

"क्यों ?"

"यहां शस्त्र-प्रयोग के योग्य स्थान नहीं है।"

"तू क्या मुझसे युद्ध करना चाहता है ?"

"तुझे वध करने से पूर्व मैं तुझे आत्मरक्षा का अवसर देना चाहता हूं।"

"अरे कालिकेय, तुझे क्या राक्षसों का भय नहीं है, जो तू यहां निर्भय चला आया ? जा, अभी भाग जा।"

विज्जला भय और क्रोध से चीख उठी। चीख सुनकर सब प्रहरी राक्षसियां जाग उठीं। वे सब शस्त्र लेकर स्वामिनी की आज्ञा की बाट जोहने लगीं।

विद्युज्जिह्व ने कहा—"अरी चेटियो, यह माता और पुत्र का विग्रह है। चली जाओ यहां से। यहां तुम्हारा कुछ काम नहीं है।"

उसने हाथ का शूल दूर फेंक दिया और सिंह की भांति उछलकर विज्जला को कण्ठ से पकड़कर भूमि पर गिरा दिया। विज्जला ने छूटने की बहुत चेष्टा की, बहुत छटपटाई, पर विद्युज्जिह्व उसे उसी प्रकार घसीटकर अलिन्द के एक एकान्त स्थल में ले गया, जैसे बाघ अपने शिकार को ले जाता है। फिर उसने उसके सिर के सब बाल नोच डाले। उसके मुंह में हाथ डालकर मुंह चीर दिया। रक्त की धार बह चली। विज्जला छूटने को बहुत छटपटाई, पर विद्युज्जिह्व के लौहदण्ड से वह पार न पा सकी। अलिन्द में वह उसे कभी इधर से कभी उधर घसीटता, कभी उठाकर पत्थर पर इस प्रकार पटकता जैसे धोबी कपड़ा पटकता है और कभी सिर से ऊपर उठाकर दूर फेंक देता। फिर भी विज्जला के कठिन प्राण नहीं निकले। वह आर्त्तनाद करती रही।

अन्त में विद्युज्जिह्व ने अपना चरण उसके वक्ष पर रख ज़ोर से दबा दिया। पसलियां चर्राकर टूट गईं और एक बार रक्त-वमन करके वह पतिहत्यारी सुन्दरी दानवी ठण्डी हो गई। परन्तु विद्युज्जिह्व का क्रोध तो अभी भी शान्त न हुआ। उसने उस मृत माता का एक चरण पैर से दाब, दूसरे को हाथों में उठा बलपूर्वक उसे दो खण्डों में चीरकर दोनों खण्ड द्वार के बाहर दोनों दिशाओं में बलि-मांस की भांति फेंक दिए।

चेटियां यह घोर कृत्य देख, भय से चीखती हुई भाग खड़ी हुईं, परन्तु इसी समय बहुत-से सशस्त्र राक्षसों के साथ सुकेतु राक्षस ने उसे घेर लिया। विद्युज्जिह्व ने उछलकर अपना शूल घुमाया। अब उस अकेले का अनेकों से तुमुल संग्राम होने लगा। राक्षसों की सेना कोलाहल करती बढ़ती ही चली गई, परन्तु विद्युज्जिह्व के विकराल शूल के सामने राक्षस ठहर न सके। इसी समय सहस्रों कालिकेयों ने राक्षसों को चारों ओर से घेरकर काटना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते सब राक्षस काट डाले गए। सुकेतु का विद्युज्जिह्व से तुमुल द्वन्द्व युद्ध हुआ। अन्त में विद्युज्जिह्व का शूल उसके वक्ष को पार कर गया। अब उसका सिर काट और अपने पिता का शव कन्धे पर रख विद्युज्जिह्व अपने कालिकेय योद्धाओं के साथ समुद्र-तीर की ओर लौटा, जहां उनकी नौकाएं उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

"विद्युज्जिह्व ने अपनी मां को मार डाला है।"—रावण ने उत्तेजित स्वर में कहा।

"नहीं, यह संभव नहीं है।"—सूर्पनखा ने और भी उत्तेजित होकर उत्तर दिया।

"उसने उसे मार डाला है।"

'अपनी सगी मां को ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हुआ।"

"उसने उसे मार डाला।"

"विद्युज्जिह्व ने ?"

"बहिन, यह अच्छा नहीं हुआ। बड़ी भयानक बात है।"

"किन्तु..."

"उसने सुकेतु को भी मार डाला है और उसके सब राक्षसों को भी।"

"किन्तु रक्षेन्द्र...।"

"उसे न देवता क्षमा कर सकते हैं, न मैं।"

"तो मैं रक्षेन्द्र को दोष न दूंगी, परन्तु मैं विद्युज्जिह्व के साथ

हूं यह न भूलना।"

"किन्तु मातृवध कितना जघन्य है!"

"पुरुष पर कर्तव्य का भी कुछ भार है।"

"परन्तु मैं उसे अब सम्बन्धी स्वीकार नहीं कर सकता। सुकेतु हमारा वीर सेनापति ही न था, परिजन भी था।" रावण ने महिषी मन्दोदरी की ओर देखा। मन्दोदरी ने भग्न मन से कहा—

"मैं भी। विज्जला मेरी मौसेरी बहिन थी।"

"अपने सम्बन्धी और परिजन के हत्यारे का हम कैसे स्वागत कर सकते हैं?"

"यह तो बड़ी ही खराब बात हो गई, सूर्पनखा! उसने अपनी सगी मां को मार डाला। हम उसका मणिमहालय में स्वागत नहीं कर सकते।"

"मां, मैं नहीं चाहती कि वह यहां आए, मुझे ही उसके पास जाना होगा।"

"कहां?"

"अपने प्रियतम के पास।"

"तो मुझे उससे युद्ध करना होगा।"

"रक्षेन्द्र, उसके पास भी शस्त्र हैं।"

"तो तू रक्षेन्द्र को चुनौती देती है?"

"चुनौती रक्षेन्द्र अपनी बहिन को देता है, जो उसका व्यापार नहीं है।"

"किन्तु"—मन्दोदरी ने कहा—"मैं एक बार विद्युज्जिह्व से बात करूंगी।"

"मैं उसे मणिमहालय की ड्योढ़ी न लांघने दूंगा।"

"तो अब मैं चली, अभिवादन करती हूं भाई!"

"आह, यह दुस्सह है बहिन!"

"अभिवादन करती हूं भाभी!"

"किन्तु तू हमें छोड़कर जा रही है?"

"तुम्हारा आशीर्वाद लेकर।"

"फिर कब आएगी सूर्पनखा?"

"कभी नहीं।"

"अस्तु! जो मणि, रत्न, स्वर्ण, तुझे चाहिए, मणिमहालय से ले जा और कुछ सैनिक भी।"

"नहीं ले जा सकती।"

"क्यों?"

"विद्युज्जिह्व मेरे लिए यथेष्ट है।"

"वह तो स्वयं विपन्न है।"

"फिर भी मैं रक्षेन्द्र का दहेज नहीं स्वीकार कर सकती।"

"क्या मेरे अनुरोध से भी नहीं, सूर्पनखा ?"

"नहीं, जब तक रक्षेन्द्र मेरे पति को, अपना बहनोई स्वीकार कर मणिमहालय में उसका स्वागत न करें।"

"यह तो कभी नहीं होने का।"

"तो भाई, विदा!"

"बहिन, क्या यह यथेष्ट नहीं कि तू उससे ब्याह कर रही है ? मुझे भी उसे स्नेह करना होगा ?"

"और आदर भी। तुम जब तक उसे बहनोई और निरपराध कर्तव्यनिष्ठ पुत्र नहीं समझते, हमारी राह जुदी है—तुम्हारी जुदी।"

"ओह सूर्पनखा, मुझे उससे युद्ध करना ही पड़ेगा, यह मेरी कुल-प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

"तो भाई, हम सब कालिकेय लोग अश्मपुरी में तेरा स्वागत करेंगे।"

१९

लंका-द्वीप के पूर्वी अंचल में कुछ अश्म-द्वीप-पुंज थे। ये द्वीप बहुत छोटे-छोटे थे और इनमें से अनेकों में मनुष्यों की आबादी नहीं थी। कुछ द्वीप तो ऐसे थे, जिनका पता ही नाविकों को न था। पर कुछ ऐसे भी थे, जहां जाते हुए अच्छे साहसी नाविक भी डरते थे। क्योंकि ये सभी द्वीप-पुंज चुम्बक पत्थर के द्वीप थे, इसीसे ये सब अश्म-द्वीप-पुंज के नाम से प्रसिद्ध थे। बहुत कम नाविक वहां जाने का साहस कर पाते थे। द्वीपों के पास जाते ही नौकाओं के अंशफलक बिखर जाते थे। इन्हीं द्वीप-पुंजों में से एक में अश्मपुरी बसी थी। पहले यह पुरी राक्षसों ही की थी, परन्तु प्राचीन काल से उसमें दैत्य-दानव ही रहते थे। विद्युज्जिह्व जब कालिकेयों का नेता बना, तो उसने पुरी को कुछ समृद्ध बनाया। इस समय अश्मपुरी में बीस सहस्र कालिकेय बस रहे थे और इन सबका नेता विद्युज्जिह्व था। अश्मपुरी समुद्र के जिस अंचल में बसी थी, उसके आसपास का समुद्र बहुत गहरा था और वहां समुद्र में जल-दानव बहुत थे। उनके भय से भी बहुत कम नाविक वहां आने का साहस करते थे। यह जल-दानव बड़ा शक्तिशाली प्राणी

था। इसकी आकृति विलक्षण और भयानक होती थी। इस जीव के आठ पैर उसके सिर पर होते थे।

दूसरी विशेषता इस द्वीप की, वन-मनुष्यों की थी। ये जाति के गुरिल्ले ही थे। इन वनमानुषों का आकार दो गज से भी अधिक होता था और इनका शरीर इतना सुगठित और मोटा-ताज़ा होता था कि देखने पर ये बिल्कुल भयानक दैत्य लगते थे।

विद्युज्जिह्व ने कौशलपूर्वक तरणी को अश्म-द्वीप के तट पर लगाया। वह प्रथम स्वयं उछलकर उतरा और फिर उसने दोनों हाथों में सूर्पनखा को उठाकर तट पर रख दिया। धीरे-धीरे दोनों ही द्वीप की ऊबड़-खाबड़ पथरीली राह पर बढ़ने लगे।

सूर्पनखा ने पूछा—"अब क्या हम सुरक्षित हैं?"

"मैं समझता हूं, अश्मपुरी में हम सुरक्षित हैं।"

"किन्तु रक्षेन्द्र से कह आई हूं कि अश्मपुरी में हम उसका स्वागत करेंगे।"

"सो तो ठीक ही कहा।"

"क्या हमारा बल इतना है?"

"बीस सहस्र कालिकेय मेरे अधीन हैं।"

दोनों आगे बढ़ चले। अश्मपुरी की पौर पर कालिकेयों ने दम्पती का भव्य अभिनन्दन किया। नगर-भर में नृत्योत्सव हुआ। दीपावली हुई। रात्रि को मद्यभोज हुआ, जहां विद्युज्जिह्व ने सूर्पनखा सहित स्वर्ण-सिंहासन पर बैठ सबकी अभ्यर्थना स्वीकार की।

लंका में विद्युज्जिह्व छद्म वेश में एक शिकारी के रूप में रहता था। उसने एक प्रकार से अपने वैभव और सामर्थ्य का ठीक-ठीक अनुमान सूर्पनखा को भी न दिया था। वह उसे एक विपदग्रस्त तरुण दानव-कुमार समझती थी। उसकी शालीनता और उसका साहसिक जीवन उसे बहुत पसन्द था। इसीसे वह उसपर इतनी मोहित थी। उसकी विपन्नावस्था, पारिवारिक कलंक और स्वयं विद्युज्जिह्व के हाथों माता का वध होने पर भी वह उसे त्याग न सकी। इतने बड़े साम्राज्य के अधिपति की इकलौती प्यारी बहिन, भाइयों और भाभी के परम अनुरोध को भी न मानकर एकाकी उसके साथ चल दी। परन्तु जब उसने यहां आकर अश्मपुरी में उसकी सामर्थ्य और वैभव देखा, तो उसने जाना कि उसका पति एक छोटा-सा राजा ही है। वह अपने कुल का अधिपति और एक द्वीप का स्वामी है।

चलते समय रावण ने प्रिय बहिन को कहा था कि संकटग्रस्त होने

पर वह उसकी शरण आ सकती है, परन्तु उसने अपने घमण्ड और आत्मसम्मान के आवेश में रावण का दिया उपानय भी स्वीकार नहीं किया था। अत: अब भला वह कैसे उसकी शरणापन्न हो सकती थी! उसने उसका एक भी अनुरोध नहीं माना था, तो अब वह कैसे अनुरोध कर सकती थी!

परन्तु मधुयामिनी तो सम्पन्न हुई हो नहीं और संकट का काल आ पहुंचा। रावण के सोलह सौ युद्ध-पोतों ने अश्मद्वीप को घेर लिया।

विद्युज्जिह्व सूचना पा तुरन्त ही युद्ध को सन्नद्ध हो गया।

समुद्र-तट से दक्षिण दिशा में विराट् समतल मैदान था। वहीं रावण ने महासूचि-व्यूह बनाकर अपनी सेना को अवस्थित किया था। व्यूह के प्रान्त भाग में उसने अपने सभी मामाओं को नियुक्त कर मध्य में कुम्भकर्ण को रखा, तथा सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा स्वयं अपने अधीन की। विद्युज्जिह्व ने अर्धचक्र-व्यूह रचा। मध्य में वह स्वयं रहा तथा प्रांत में कुंजर और सनीथ कालिकेय सेनानायकों को नियुक्त किया।

दोनों ओर से रण-वाद्य बजे तथा सेनाएं जय-जयकार का तुमुल-नाद करतीं शस्त्र चमकातीं परस्पर गुंथ गईं। देखते ही देखते बाणों से दिशाएं व्याप्त हो गईं। शीघ्र योद्धा कट-कटकर भूमि पर गिरने लगे। लोथों के ढेर लग गए। इसी समय विद्युज्जिह्व रावण के समक्ष पहुंचा, "रक्षेन्द्र, मेरी पत्नी और तेरी भगिनी सूर्पनखा ने मुझसे अश्मपुरी में तेरा स्वागत करने को कहा था।"

"वह तुझे याद है।"

"तो मैं अश्मद्वीप में तेरा स्वागत करता हूं।"

"शरणापन्न होकर?"

"नहीं, अश्मपुरी का अधिपति और तेरा भगिनीपति होने के नाते।"

"तू किस भांति स्वागत करना चाहता है भगिनीपति?"

"यदि तू शस्त्र भूमि पर रख दे, जैसे मैंने रख दिया है, तो तेरा चिरकिंकर होकर; नहीं तो तू मुझे अपने साथ द्वन्द्व युद्ध की प्रतिष्ठा दे।"

और फिर ये दोनों अप्रतिम योद्धा संग्राम में भिड़ गए।

विद्युज्जिह्व पहले तो रावण के परशु का करारा घाव खा चुका था। अब वह बारम्बार रुधिर बहने से अशक्त हो सुस्त हो गया। कई घाव खा गया। रावण ने कहा—"विद्युज्जिह्व, शस्त्र रख दे और

रणापन्न हो।"

"रक्षेन्द्र, जब शस्त्र-धारण में मैं समर्थ न रहूं, तब तू ही मेरे शस्त्र को ग्रहण करके मुझे सम्मानित करना।" इतना कहकर उसने एक विकट वार रावण पर किया। पर रावण ने उछलकर खड्ग का एक जनेऊ हाथ दिया, जिससे विद्युज्जिह्व का सिर कटकर भूमि पर जा गिरा। विद्युज्जिह्व का कबंध ढाई घड़ी लड़ता रहा।

इसपर सब कालिकेय क्रुद्ध हो एकबारगी ही राक्षसों पर टूट पड़े, पर रावण ने युद्ध रोक दिया। उसने कहा—"अब युद्ध का कुछ प्रयोजन नहीं रहा।" विद्युज्जिह्व के सेनापति भयंकर ने कहा—"हम भद्र विद्युज्जिह्व का शरीर लेकर अश्मपुरी जाते हैं। रक्षेन्द्र अश्मपुरी के द्वार पर आएं। वहां कालिकेयों की रानी सूर्पनखा उनका स्वागत करेंगी।"

कालिकेय अतिरिथी विद्युज्जिह्व के शरीर को लेकर लौट गए। उनके पीछे रावण निरस्त्र हो मंत्रियों-सहित अश्मपुरी को चला, उसके पीछे सब राक्षस-सैन्य शस्त्र नीचे किए हुए। अश्मपुरी में विद्युज्जिह्व की चिता नगर के बाहर रची गई और सूर्पनखा ने चितारोहण की तैयारी की। सब कालिकेय निराहार रह, समुद्र-स्नान कर, चिता की परिक्रमा कर नीरव खड़े हो गए। तभी कालिकेयों की रानी सद्य विधवा सूर्पनखा शृंगारित हो, चितारोहण के लिए आई। पहले उसने चिता की परिक्रमा की। फिर उसने रावण के निकट आकर कहा—"स्वागत भाई, अश्मपुरी में तेरा स्वागत है। परन्तु तू मुझे क्षमा कर रक्षेन्द्र, मैं अधिक विलम्ब नहीं कर सकती, तेरा कल्याण हो!"

रावण की आंखों में आंसू भर आए। उसने कहा—"बहिन, यह तू क्या कहती है। मैं तुझे लंका ले जाने के लिए यहां आया हूं।"

"परन्तु वीर, मेरा पथ तुझे मालूम है। तूने अपनी मर्यादा रखी—कुल-मर्यादा, राज मर्यादा। मैंने अपनी मर्यादा रखी—स्त्री-मर्यादा के लिए वहां जा रही हूं, अज्ञात लोक में। भाई, रक्षेन्द्र, तू महाप्रतापी सत्त्व है, तेरे अनुग्रह से मैंने केवल एक रात का सुहाग भोग लिया। मैंने दोनों कुलों को धन्य कर दिया। तेरे रक्ष-कुल को भी और अपने कालिकेय-कुल को भी। अब तेरी-मेरी राहें दो हैं। तू अपनी राह जा और मैं अपनी।"

"यह न होगा बहिन, तुझे हम सभी भाइयों ने अपनी नेत्र-ज्योति समझा। कुल-मर्यादा का पालन न करने से कुल-क्षय होता है। इसी से मुझे यहां आना पड़ा। पर विद्युज्जिह्व सुप्रतिष्ठित है। उसके स

विवाह करके तूने रक्ष-कुल कलंकित नहीं किया । मैं सन्तुष्ट हूं, पर खेद है विद्युज्जिह्व ने मुझसे तुझे नहीं मांगा। अब तो बहिन, जो होना था सो हो गया । अब तू यह भयंकर इरादा त्याग, शोक को भी मन से निकाल बाहर कर।"

रावण ने आगे बढ़कर प्रिय बहिन का हाथ पकड़ लिया, कुम्भकर्ण ने उसे अपनी प्रलम्ब बाहुओं में उठा लिया। सूर्पनखा ने रोते हुए कहा—"तो भाई, मैं कालिकेयों को नहीं छोड़ सकती।"

"ठीक है। जा तू अपने सब कालिकेयों के साथ—दण्डकारण्य में रह, दण्डकारण्य मैंने तुझे दिया बहिन ! तू वहां रह चुकी है, वह प्रदेश तुझे प्रिय है। अब से तू ही वहां की स्वामिनी है। पर कालिकेय भी सब राक्षस-धर्म ग्रहण करें।"

"कालिकेय राक्षस-धर्म स्वीकार करेंगे।"

"मैं खर को आदेश दे दूंगा कि दण्डकारण्य की स्वामिनी सूर्पनखा है, वह सूर्पनखा का अनुगत होकर रहे।"

सूर्पनखा ने स्वीकार किया । विद्युज्जिह्व की चिता में अग्नि दी गई। रावण ने प्रथम घृत की, फिर दूध की धार से चिता को सींचा। पीछे सब राक्षसों ने, कालिकेयों ने भांति-भांति के पशुओं का आखेट करके चिता को बलि दी ।

२०

सब बातों पर भली-भांति विचार-परामर्श करके, लंका का सारा राज्य-भार विभीषण को सौंप, राक्षसों की चतुरंग चमू ले; महाबली और विचक्षण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक्र, सारण और धूम्राक्ष इन छः महामात्यों को साथ ले रावण ने लंका से दिक्प्रस्थान किया। वह समुद्र-पार उतर धनुष्कोटि की राह भारत में घुसा । भारत के सम्पूर्ण समुद्र-तट को उसने सुरक्षित-सुव्यवस्थित किया । फिर भाई खर को उसका सचिव और दूषण को सेनापति बनाया। सब कालिकेयों सहित, जो राक्षस होने की शपथ ले चुके थे, चौदह सहस्र राक्षस भट दण्डकारण्य की रक्षा को नियत किए। दण्डकारण्य में ठौर-ठौर पर सूर्पनखा ने सैनिक-सन्निवेश स्थापित किए। वहां आर्यों का प्राबल्य न होने पाए, इस सम्बन्ध में उसे बहुत-से महत्त्वपूर्ण आदेश दे वह नदी, नगर, पर्वत, वन, उपवन, पार करता हुआ माहिष्मती नगरी के निकट आ पहुंचा ।

नर्मदा-तट पर उसने अपना सैनिक-सन्निवेश स्थापित कर, निर्द्वन्द्व जल-विहार और मृगया का आनन्द-लाभ किया। दैवयोग से जहां रावण ने अपना सन्निवेश स्थापित किया था, वहीं दुर्मद हैहय अर्जुन चक्रवर्ती अपने अवरोध के साथ जल-विहार कर रहा था। उसके अवरोध में सहस्रों स्त्रियां थीं जो देश-देशान्तर से एकत्र की गई थीं। रावण को पता चल गया कि निकट ही चक्रवर्ती जल-विहार कर रहा है। उसने अपने मंत्रियों से सम्मति ली कि इस अवसर पर क्या करना उचित है। मंत्रियों ने कहा—"यह चक्रवर्ती माहिष्मती-नरेश अर्जुन महातेजस्वी है। इससे यह यहीं घेरकर बन्दी बना लिया जाए तो उत्तम है। इससे द्वन्द्व युद्ध किया जाए या इसे मार ही डाला जाए। इस समय यह अरक्षित है।" परन्तु रावण को यह मत न रुचा। उसने कहा—"यह तो मेरी प्रतिष्ठा के सर्वथा विरुद्ध बात होगी फिर, हमें तो धर्म-विजय भी करनी है। यदि चक्रवर्ती हमारी रक्ष-संस्कृति स्वीकार कर लेता है, तो विग्रह का प्रयोजन क्या है? हम उसके मित्र हैं।"

उसने ऋषि-कुमार का वेश धारण किया। कमर में रक्त कौशेय पर व्याघ्रचर्म बांधा, वक्ष पर स्वर्ण-वर्म धारण किया और कन्धे पर अपना परशु धर वह एकाकी ही वहां जा पहुंचा, जहां चक्रवर्ती अपने अवरोध के साथ जल-विहार कर रहा था। नर्मदा-तीर पहुंचकर उसने चक्रवर्ती को सूचित किया कि मैं पौलस्त्य रावण, धनपति दिक्पति कुबेर का अनुज, रक्ष-संस्कृति का संस्थापक हूं। चक्रवर्ती से मैत्री-लाभ चाहता हूं। चक्रवर्ती इस समय स्नानोत्तर यजन कर रहा था, उसने उसी समय रावण को सन्मुख बुलाकर उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—

'स्वास्ति पौलस्त्य, माहिष्मती में तेरा स्वागत है मित्र, मैं तेरा क्या प्रिय करूं?"

"मेरी रक्ष-संस्कृति को स्वीकार कर।"

"किसलिए?"

"जिससे आर्य-अनार्य का भेद नष्ट हो, नृवंश एक सांस्कृतिक सूत्र में बंध जाए, वेद ही हमारा सांस्कृतिक केन्द्रबिन्दु हो।"

"सो तो अच्छा है। पर आर्यावर्त से तो मेरा ही विग्रह है, आर्य तो हमें ही बहिष्कृत समझते हैं।"

"पर मैं तो पृथ्वी पर धर्म- जय करने को निकला हूं।"

"यह तो कुछ युद्ध घोषणा-सी है।"

"जो मेरी रक्ष-संस्कृति स्वीकार नहीं करता, उसपर मेरा यह

परशु है।"

"चक्रवर्ती ने हंसकर कहा—"तेरी बातों से तो तेरे परशु ही पर मेरा अधिक लोभ है। मैं तेरी तरह ऋषि-कुमार नहीं हूं, क्षत्र हूं।"

"तब तो फिर परशु ही है। युद्धं देहि!"

"मैं तेरे आह्वान पर प्रसन्न हूं। परन्तु अभी तू मेरा अतिथि होकर माहिष्मती में विश्राम कर। फिर मैं तेरी अभिलाषा-पूर्ति करूंगा।"

रावण अपने शिविर में लौट आया।

दोनों ओर सैन्य की तैयारियां होने लगीं। राक्षसों की सेना दुर्जय थी तथा रावण का तेज असह्य था, परन्तु चक्रवर्ती कार्तवीर्य भी अप्रतिहत था। उसकी सेना में तुण्डिकेरा, शर्यात, हैहय और अवन्तिपति वीतिहव्य की चतुरंगिणी चमू थी। चक्रवर्ती का सेनापति रुरु एक विलक्षण और साहसी सेनानी था। नर्मदा-तट पर यह प्रागैतिहासिक युद्ध हुआ। इस युद्ध में व्यक्ति-विशेष का महत्त्व था। चक्रवर्ती बाज की भांति राक्षसों पर टूट पड़ा। बहुधा दोनों वीरों के शस्त्र परस्पर टकरा जाते। उनमें वज्र-गर्जन होता। अंत में रावण की कमर पकड़ उसे अधर हवा में उठाकर चक्रवर्ती ने भूमि पर पछाड़ दिया। रावण मूच्छित हो गया। चक्रवर्ती ने उसे कांख में दाव अपना मुंह मोडा।

यह देख राक्षस-दल में हाहाकार मच गया। चक्रवर्ती ने उसे बांध कर कारागार में डाल दिया।

दुर्जय परंतप रावण को बांधकर बन्दी बनाने से चक्रवर्ती हैहय कार्तवीर्य अर्जुन का यश दिग्दिगन्त में फैल गया। आर्यावर्त और भरत-खण्ड-भर में उसका आतंक छा गया। राक्षसों के सेनापति और मंत्री प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर धूम्राक्ष आदि भारी बहुमूल्य, उपानय साथ ले चक्रवर्ती की सेवा में उपस्थित हुए। उपानय सम्मुख धर उन्होंने कहा—"हे तेजस्वी हैहय, आपकी जय हो। आपने महापराक्रमी रक्षराज रावण को जय करके अपना सुयश पृथ्वी पर विस्तीर्ण कर दिया। आपका पराक्रम अतुलित है और आप पृथ्वी के सब वीरों में श्रेष्ठ हैं। किन्तु हे यशस्वी महाराज, अब आप उसे छोड़ दीजिए। आपका यह कार्य बन्दी बनाने से भी अधिक यशस्वी होगा। यह धन-रत्न-राशि उपानय की भांति तथा दण्डस्वरूप हम आपकी भेंट में

उपस्थित कर रहे हैं।"

राक्षस-मंत्रियों के ये वचन सुन, प्रसन्न हो चक्रवर्ती ने हंसकर रावण को तुरन्त सभा-भवन में ले आने की आज्ञा दी। सभा में आने पर उसने उठकर स्वयं उसे बन्धनमुक्त किया, उसे दिव्यालंकार धारण कराए, और अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क देकर कहा—"हे राक्षसराज, मैंने तो तेरा पहले भी माहिष्मती में मित्र की भांति स्वागत करना चाहा था, परन्तु तूने संधि नहीं—विग्रह मांगा, मैत्री नहीं—युद्ध-याचना की। सो मुझे समरांगण में तेरा शस्त्र से सत्कार करना पड़ा। पर इससे मैंने तेरा समर-कौशल और तेरी अजेय शक्ति देख ली। मैं तेरे शौर्य से सन्तुष्ट हूं। सो हे प्रतापी पौलस्त्य, यदि तेरी इच्छा हो तो हम-तुम दोनों आज से अग्नि की साक्षी में समान मित्र होने की शपथ ले लें।"

रावण ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"चक्रवर्ती ने तो मुझे युद्ध भिक्षा देकर पहले ही यथेष्ट गौरव प्रदान कर दिया था। अब मैत्री से सम्पन्न करके मुझे कृतकृत्य कर दिया। अग्न्याधान कर चक्रवर्ती! आज से हम जीवन में, मरण में, सुख में, दुःख में एक हैं।"

चक्रवर्ती हैहय ने तुरन्त अग्नि की साक्षी में मैत्री-स्थापना की और रावण को हृदय से लगाकर कहा—"हे पौलत्स्य, तू ऋषिकुमार तथा वेदों का उद्गाता है। संस्कृति का संस्थापक है। राक्षसों का स्वामी और सप्त द्वीपों का अधिपति है। तूने मुझसे अपनी रक्ष-संस्कृति की बात कही थी। उस समय तू परशुहस्त था। इससे शस्त्र ने शास्त्र नहीं सुनने दिया। अब तू स्नेहसिक्त है, हमारा अभिन्न मित्र है, अपनी संस्कृति का बखान कर। उसे सुनकर मैं प्रसन्न होऊंगा।"

रावण ने कहा—"चक्रवर्ती राजन्, यह मेरी लोकैषणा है। इसमें लोकहित निहित है; सुन, इस समय पृथ्वी पर देव, दैत्य, दानव, असुर, आर्य, व्रात्य, नाग, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष रक्ष आदि अनेक नृवंश विस्तार पा रहे हैं जो सब परस्पर दायाद बांधव हैं, किन्तु परस्पर विग्रह करते हैं। बारह दारुण देवासुर-संग्राम हो चुके। ये संग्राम आर्थिक कम और सांस्कृतिक अधिक थे। आचारों की भिन्नता ही नृवंश की इस विग्रह-भावना का मूल कारण है। पृथ्वी तो बहुत विस्तृत है और नृवंश अभी अधिक विस्तार नहीं पा सका है। फिर भी युद्ध होते हैं। जो भूमि स्वच्छन्द है वहां लोग नहीं बसते—दूसरों की अधिकृत भूमि छीनना चाहते हैं। इसका मूल कारण आचारों की भिन्नता ही है। नृवंश के आचारों का मूल उद्गम वेद हैं। परन्तु आर्यों ने

वशिष्ठ के नेतृत्व में वैदिक विधि-परम्परा कुछ दूसरी ही स्थापित की है। उधर नारद की वाम-परम्परा देवों और दैत्यों में भी प्रचलित है। भृगु पृथक् ही आथर्वणी परम्परा प्रचलित कर रहे हैं। फिर आर्यों को बड़ा गर्व है, वे तनिक विधि भंग होने पर ही आर्यजनों को बहिष्कृत कर देते हैं। देखो, ऐसे कितने बहिष्कृत आर्य व्रात्य दक्षिणारण्य तथा आसपास के द्वीपसमूहों में बस गए हैं। अब यदि इन सबको सांस्कृतिक रीति से एक वेद के अधीन नहीं किया जाता है, तो नृवंश अपने ही विग्रहों में विनष्ट हो जाएगा। इसलिए महाराज कार्तवीर्य सहस्रबाहु, मैंने यह रक्ष-संस्कृति स्थापित की है। वयं रक्षामः—हमारा मूल मंत्र है और समूचे नृवंश को समान वैदिक संस्कृति में दीक्षित करना ही हमारा धर्म है। इसीसे मैंने वेदों में समूचे नृवंश के आचारों का समावेश किया है और अब मैंने घमण्डी आर्यों और देवों को जय करने की भावना से लंका त्यागी है। मैं केवल यही चाहता हूं कि वैदिक धर्म में समुचे नृवंश का समन्वय रहे।"

"साधु! साधु! अच्छा है पौलस्त्य रावण, तेरा उद्देश्य स्तुत्य है। जहां तक आर्यों के गर्व-भंजन का प्रश्न है, मैं तेरे साथ हूं। अनुमति देता हूं, तू मेरी प्रजा में अपने समन्वयमूलक धर्म का प्रचार कर। परन्तु मैं तेरे धर्म में दीक्षित नहीं हो सकता! हां, मेरी सहानुभूति तुझीसे है। स्वस्ति रक्षःपते! स्वस्ति पौलस्त्य! जब कभी तू परशुरहित निरस्त्र माहिष्मती में आएगा, तभी तेरा स्वागत होगा। अब तू जा, अपना अभीष्ट सिद्ध कर और कह—मैं तेरा और क्या प्रिय करूं?" तुझे छुट्टी है—मित्र, माहिष्मती में जो वस्तु तुझे प्रिय है—स्वेच्छा से ले जा।"

"बस मित्र, तेरी मित्रता से मैं सम्पन्न हुआ। तेरी जय हो चक्रवर्ती! पौलस्त्य रावण तेरे लिए जब माहिष्मती में आएगा—इस परशु के साथ और जब अपने लिए आएगा—निरस्त्र।"

इतना कहकर रावण उठा। चक्रवर्ती ने उठकर उसे हृदय से लगाया और तब पौलस्त्य रावण माहिष्मती के राजपथ पर रत्न बिखेरता हुआ तथा वहां की कुल-वधूटियों में कौतूहल बढ़ाता हुआ अपनी सेना में लौट आया।

२१

रावण ने नर्मदा में स्नान कर, जम्बूनद की बालुका में लिंग स्थापना कर सुगन्धित पुष्पों से पूजन किया। फिर वहां से प्रस्था

कर वन, पर्वत नद-नदी पार करता हुआ मधुपुरी की सीमा में मुकाम किया। आजकल जो प्राचीन पुरी मथुरा के नाम से प्रसिद्ध है, इसीका नाम प्रारम्भ में मधुपुरी था। रावण के आने का समाचार सुन मधु भयभीत होकर अपने दुर्ग में छिप गया और दुर्ग के सब द्वार बन्द कर लिए। रावण ने मधुपुरी को घेर लिया और राक्षसों ने चारों ओर से बाण वर्षा करनी आरम्भ कर दी। दुर्ग पर से मधु ने भी प्रतिकार किया। पर उसका वल यथेष्ट न था। शीघ्र ही दुर्ग भंग हो गया। रावण अकेला ही कन्धे पर परशु रख मधु-मधु गरजता हुआ मधु असुरपति के अन्तःपुर में घुस गया। अन्तःपुर की दास चेटी, किन्नरी भयभीत जड़ हो गईं। राक्षसों की सेना महल को घेरकर शोर मचाने लगी। तब कुम्भीनसी ने बाहर आ अर्घ्य, पाद्य मधुपर्क से रावण का सत्कार किया, पूजन किया और वह रोती-रोती रावण के चरणों पर गिरकर गिड़गिडाकर कहने लगी—"हे वीरबाहु भाई, मेरी रक्षा कर, सूर्पनखा की भांति मुझे विधवा न कर। वैधव्य बड़ा भारी दुःख है। यदि तू मेरा कहना नहीं सुनेगा तो तेरा भला न होगा।"

रावण ने उसे सान्त्वना देकर कुशल पूछा और कहा—"तू निर्भय होकर अपना अभिप्राय कह, तेरी सब इच्छाएं मैं पूर्ण करूंगा।"

कुम्भीनसी ने कहा—"रक्षेन्द्र, मेरा पति मधु मुझसे प्रेम करता है, मैं भी उससे प्रेम करती हूं। मैं इस राज्य की महिषी हूं तथा मेरा पुत्र उसका उत्तराधिकारी है। यह सत्य है कि उसने बलात् मेरा हरण किया था, पर यह तो राक्षसों की मर्यादा तूने स्थापित की है। फिर यहां लाकर उसने वेद-विधि से अग्नि की साक्षी में विवाह किया है और मेरा सत्कार भी करता है। इसलिए तू मधु को मेरे लिए क्षमा कर दे। तेरा ऐश्वर्य बढ़े, तू प्रसन्न रह। तू मधु को अभयदान दे!"

अपनी बहिन कुम्भीनसी के ये दीन वचन सुन रावण द्रवित हो गया। उसने कन्धे का परशु धरती पर टेककर कहा—"तू डर मत, मधु को मैं तेरे कहने से अभय देता हूं। अब उसे सम्मुख उपस्थित कर मैं उसे साथ लेकर आर्यों और देवों से युद्ध करने जाऊंगा।"

रावण के इस वचन से आश्वस्त हो कुम्भीनसी मधु को ले रावण के सम्मुख आई। मधु ने रावण का अभिवादन किया। रावण ने उसका आलिंगन कर कुशल पूछा। फिर मधु ने रावण की मधुपुरी

में बड़ी ठाठ की पहुनाई की । पान, भोज, नृत्य, दीपोत्सव हुआ। गोष्ठी हुई, फिर रावण एक रात मधुपुरी में रह, मधु और उसकी चमू को ले आर्यावर्त में प्रविष्ट हुआ।

२२

क्षिप्र गति से रावण की राक्षस सैन्य ने आर्यावर्त में प्रवेश किया और वह नैमिषारण्य में जा पहुंची। पाठक जानते हैं कि नैमिषारण्य में रावण का एक सैनिक-सन्निवेश स्थापित था, जिसकी रक्षार्थ ताड़का राक्षसी तथा उसके दो पुत्र सुबाहु और मारीच बहुत-सी राक्षस-सैन्य सहित वहां रहते थे। उसे आशा थी कि नैमिषारण्य में उसका ताड़का और उसके पुत्रों द्वारा अच्छा सत्कार होगा । परन्तु यहां आने पर जब उसने अपने सन्निवेश को उजड़ा हुआ और नष्ट-भ्रष्ट देखा तो वह आश्चर्य-चकित रह गया। उसने मंत्रियों से कहा—"यह तो बड़ी अद्भुत बात है, भला मेरे सेनापति मारीच, सुबाहु और सब राक्षस-सेना कहां गई ? ताड़का तो बड़ी विकट स्त्री थी, किसने उसका पराभव किया ?"

मंत्रियों ने दूतों के द्वारा बड़ी खोज के बाद मारीच को किसी गिरि-कन्दरा से खोज निकाला, जहां वह प्राण-भय से छिपा बैठा था। वह बहुत दुर्बल, बूढ़ा-सा हो रहा था तथा घावों से उसका शरीर भरा था। वह बहुत दुःखी और निराश था। रावण ने उसे बहुत-बहुत तसल्ली दी और उससे इस दुर्दशा का कारण पूछा। मारीच ने कहा—"हे स्वामी, अपनी विपत्ति कैसे कहूं। बस, संक्षेप में यही सुन लीजिए कि राक्षसों में केवल मैं ही अकेला जीवित बचा हूं। अन्य सब तो काल-कवलित हुए।"

"किन्तु यह विपत्ति राक्षसों पर आई कैसे ?"

"कोई राम-लक्ष्मण नामक दो मानव-कुमार हैं। उन्होंने हम सब राक्षसों को मार भगाया।"

"कौन हैं वे मानव-कुमार ?"

"सुना है, कोशल राज्य के राजकुमार हैं।"

"यहां नैमिषारण्य में क्या उनकी भूमि है ?"

"नहीं, विश्वामित्र उन्हें अपनी सहायता के लिए ले आए थे।"

"किसके पुत्र हैं वे ?"

"अयोध्यापति दशरथ के।"

"परन्तु वे बालक मानव क्या बहुत सेना अयोध्या से लाए थे ?"

" नहीं एकाकी ही थे। विश्वामित्र उनके साथ थे।"

"इतना शौर्य है उन बालकों में ?"

"उन्होंने बात की बात में एक ही बाण से माता ताड़का को सौ धनुष दूर फेंक दिया और वह रक्त-वमन करके मर गई। इसपर जब मैंने और सुबाहु ने राक्षसों की सेना लेकर उनपर आक्रमण किया तो उन्होंने बड़े ही हस्तलाघव से सारे राक्षसों को काट डाला। सुबाहु भी उसी युद्ध में खेत रहा। मेरे ये अधम प्राण किसी भांति बच रहे। सो मैं असहाय पर्वत कन्दराओं में वन्य पशु की भांति छिपकर दिन काटता रहा और आपके आगमन की राह ताकता रहा।"

"अद्भुत है, अकल्पित है, श्लाघनीय है ! अभिनन्दन करता हूं उन मानव-बालकों का ! अब कहां हैं वे किशोर ?"

"मिथिला के सीरध्वज ने जनकपुर में अपनी पुत्री सीता का स्वयंवर रचा है। विश्वामित्र के साथ दोनों कुमार वहीं गए हैं।"

"तेरे वचनों से मेरी अभिलाषा उन दोनों मानव-बालकों तथा उस सीता को भी देखने को उदग्र हो उठी है।"

"आकर्षण का एक विषय भी है।"

"वह क्या ?"

"वहां एक पिनाक धनुष है। सीरध्वज का प्रण है कि जो कोई उसे चढ़ाकर बाणसंयुक्त कर सकेगा, उसीको वह त्रैलोक्यसुन्दरी पुत्री देगा।"

"वहां क्या बहुत राजा आए हैं ?"

"आर्यावर्त और भरत-खण्ड के प्रायः सभी राजा गए हैं। पिनाकपाणि के विशेष अनुरोध से दैत्येन्द्र बाण महाकाल भी आया है, ऐसा सुना है।"

"ठीक है, अच्छा संयोग है। मैं भी जाता हूं और तू मारीच मातुल, शीघ्र आरोग्य-लाभ कर और अपने बिखरे हुए बल को एकत्र कर, फिर राक्षस-सैन्य को साथ ले गन्धमादन पर पहुंच, जहां मेरा वीर पुत्र मेघनाद और मातामह सुमाली तथा भाई कुम्भकर्ण कुबेर की अलका को अक्रान्त करने छद्मवेश में पहुंच चुके हैं। सब ज्ञातव्य बातों को जान और देवाधिदेव रुद्र से परामर्श कर अलका को अक्रान्त करने को तैयार रह। तब तक मैं आता हूं।"

उसने अपने मंत्रियों और सेनापतियों को भी आवश्यक आदेश दिए और कुछ सेना वहां नैमिषारण्य में रख, शेष को आगे बढ़ने का

आदेश दे, उसने जनकपुरी की ओर एकाकी ही कंधे पर परशु रख-कर प्रस्थान किया।

मिथिला के राजा सीरध्वज जनक ने यह प्रण किया था कि जो पुरुष जनकपुर के पिनाक धनुष को चढ़ाकर बाणसंयुक्त कर देगा, उसे ही वह अपनी कन्या सीता को दे देंगे। इस धनुष-यज्ञ का निमंत्रण पृथ्वी के सब राजाओं को भेजा गया और पृथ्वी-मंडलस्थ राज-कुल के मुकुटधारी छत्रधारी राजा-महाराजा जनक की विश्व-मोहिनी सीता को जय करने जनकपुर में आ पहुंचे। इस समय इन सब छत्रधारियों की चतुरंगिणी सेनाओं की चहल-पहल और हाथियों, घोड़ों, रथों और अन्य वाहनों की भीड़-भाड़ से जनकपुरी भर गई थी। देश-देशान्तरों से वेद-वेत्ता ऋषि भी आए थे।

बहुत राजा लोग भारी-भारी सेना लिए बड़ी तड़क-भड़क और धम-धाम से आए थे। सबके ठाट एक से एक निराले थे, परन्तु सबसे निराला ठाठ रक्षपति रावण का था। यह महाप्राण पुरुष अकेला ही पांव-प्यादे कंधे पर परशु रखे सिंह की भांति धीर-मन्थर गति से वहां जा पहुंचा था। उसे न किसीको परिचय देने की आवश्यकता थी, न किसीको उससे पूछने की चिन्ता थी। बहुतों ने उसे देखा और किसी छत्रधारी राजा का सामन्त समझा। किसीने एकाध बात की भी, तो उसने उसे उत्तर ही नहीं दिया, एक हुंकृति कर आगे बढ़ गया।

यज्ञस्थली में पृथ्वी-मंडल के राजा उपस्थित थे। उनके मुकुट-मणि सूर्य के प्रकाश में जगमगा रहे थे। रावण ने कमर में रक्त कौशेय, वक्ष में व्याघ्र-चर्म, कंठ में उपवीत, भुजाओं में वलय, कमर में रत्न-कटि बन्ध और पैरों में लाल उपानत् धारण किए। मुख पर लिपटी हुई चमकीली काली छोटी-सी दाढ़ी, खड़ी हुई मूंछें, उसपर उभरी नाक और पानीदार गहरी काली आंखें। सिंह जैसी उठान और वृषभ जैसी चाल, अभय दृष्टि। वह सब राजाओं की रत्नमणियों को घूरता हुआ, उनकी उपस्थिति से कुछ भी प्रभावित हुए बिना, धीर गति से यज्ञ-भूमि में आगे बढ़कर वहां पहुंचा, जहां स्वर्ण के मणिजटित सिंहासन पर महातेज दैत्येन्द्र बैठा था। रावण ने भी आसन ग्रहण किया।

इसी समय सब बाजे एकाएक ज़ोर से बज उठे। जनक व्यस्त भाव से यज्ञ-भूमि में चले गए।

दूसरे ही क्षण कुमारिकाओं से घिरी हुई, मांगलिक उपचारों

सहित जनक-नंदनी सीता ने विजयमाल लिए यज्ञ-भूमि में पदार्पण किया। शुभ्र परिधान-धारिणी, लज्जावनता, जनकराज-नन्दिनी सीता पुष्पभारनमित वृन्त की सी शोभा का विस्तार कर रही थी। सारी सभा उस सुषमा को देख चित्रलिखित-सी रह गई।

इसी समय मंत्रिगण सैकड़ों मनुष्यों द्वारा उस आठ पहियों वाले शकट को खिंचवाकर यज्ञ-भूमि में लाए, जिसपर वह दिव्य पिनाकी धनुष रखा था। कंचुकी ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा :

"हे द्वीप-द्वीपान्तर के राजाओ! यह प्रसिद्ध धनुष मिथिला-राजवंशके पास देवताओं की पवित्र धरोहर के रूप में है। राजर्षि जनक ने एक बार कृषि-यज्ञ करते हुए भौमी कन्या प्राप्त की थी और उसका लालन-पालन पुत्री के समान किया था। उसका नाम सीता है। अब वह राजनन्दिनी विवाह-योग्य वयःसंधि प्राप्त है। राजर्षि जनक का यह प्रण है कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर इसपर बाण-संधान करेगा, उसको राजर्षि सीरध्वज अपनी पुत्री देंगे। अब हे नृपति-गण, आप अपने बल और सौभाग्य की परीक्षा करें।"

यह सुनकर छत्रधारी नृपति उठ-उठकर धनुष को उठाने लगे। प्रथम उन्होंने एक-एक करके ज़ोर लगाया—फिर सबने मिलकर चेष्टा की, परन्तु वे धनुष को हिला भी न सके। वे सब विफल-मनोरथ हो खीझकर रह गए और जब उन्होंने देखा कि बिना प्रण पूरा किए राजर्षि जनक किसीको पुत्री नहीं ब्याहेंगे, तो वे सब क्रुद्ध हो, शस्त्र ले-लेकर युद्ध करने को सन्नद्ध हो गए। सीरध्वज ने भी ऐसे समय के लिए चतुरंगिणी सेना तैयार रखी थी। उसने देखते ही देखते सब राजाओं को घेर लिया।

इसी समय यज्ञ-भूमि में राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र मुनि ने प्रवेश किया।

जनक के संकेत से वेत्रवती और कंचुकियों ने मार्ग-प्रदर्शन किया। विश्वामित्र और राम को वे धनुष के निकट ले गए। भटों ने पुकार-कर कहा—"यही वह धनुष है, जिसे निमिवंश की धरोहर देवों ने धरा है। मिथिला का निमि-राजवंश इसकी पूजा करता रहा है। इस धनुष को असुर, गन्धर्व, देव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, और बड़े-बड़े उरग भी आक्रान्त नहीं कर सके।"

विश्वामित्र ने कहा—"वत्स राम, धनुः पश्य।"

इतना सुनते ही राम ने हज़ारों राजाओं के देखते-देखते धनुष को दृढ़ हाथों में पकड़कर अधर में उठा लिया। फिर ज्योंही उसकी

प्रत्यंचा को चढ़ाने लगे, वह वज्रपात की भांति घोर शब्द करके बीच से टूट गया। सारी ही यज्ञ-भूमिस्थ सभा यह चमत्कार देख जड़-चकित रह गई।

सीता ने जयमाल राम के कंठ में डाल दी। बन्दीजन विरुद बखानने लगे। रावण स्तम्भित हो यह चमत्कार देख रहा था। उसे सब कुछ चमत्कारपूर्ण लग रहा था। राम का किशोर वय, लावण्य, रूप और अतिविक्रम देख वह स्तम्भित हो गया था। जब धनुष टूट गया तो वह आश्चर्यचकित हुआ और जब जनक ने घोषणा की कि उसने वीर्यशुल्का कन्या को राम को प्रदान कर दिया, तो वह कुछ विकल हुआ। कहीं एक अज्ञात टीस उसने अनुभव की। फिर उसने अपना परशु कन्धे पर रखा। वह धीर-मन्द गति से वहां पहुंचा, जहां खण्डित धनुष पड़ा था और राम को जो जयमाल सीता ने पहनाई थी उसके एकाध पुष्प वहीं पृथ्वी पर सीता के चरणचिह्न के समीप पड़े थे। उसने झुककर उस चरणचिह्न की मृत्तिका ज़रा-सी उंगलियों के पोर में छूकर हृदय से लगाई। पुष्प की उन पंखुड़ियों को यत्न से उठाया और बिना इधर-उधर देखे राजाओं, मण्डलीकों, धनुर्धरों, व्रात्यों, ब्रह्मचारियों और ऋषियों के बीच होता हुआ अपने मार्ग चला—हृदय में राम की किसलय-कोमल मूर्ति और सीता की अमल छवि को रक्त की प्रत्येक बूंद में भरकर।

२३

मिथिला के धनुष-यज्ञ से लौटकर रावण ने शीघ्रतापूर्वक अपना सार्वभौम प्रस्थान किया। उसके शत-सहस्र राक्षस छद्मवेश में हिमशैल की उपत्यकाओं में कुम्भकर्ण और सुमाली के नेतृत्व में उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, जहां उसके धर्मगुरु और शस्त्र-गुरु रुद्र महादेव की उनपर छत्रच्छाया थी। उसने मारीच को खूब आगा पीछा समझाकर तैयारी करने का आदेश दिया था। नैमिषारण्य से मारीच राक्षसों की सैन्य लिए गंधमादन की ओर प्रस्थान कर चुका था, अतः रावण ने अविलम्ब वहां से कूच बोल दिया और उत्तर कोशलराज्य की सीमा में जा घुसा, जहां महाप्रतापी अनरण्य राज्य कर रहा था। अनरण्य ने रावण को भारी राक्षस-सैन्य लिए अपनी राज्य-सीमा में प्रविष्ट होता देखा तो वह दस सहस्र अश्व और बहुत-से रथ, हाथियों से सज्जित सैन्य ले रणांगण में उतरा। घनघोर युद्ध हुआ। राक्षसों ने प्रबल पराक्रम से

अनरण्य की सेना को काट डाला। अन्त में अनरण्य को भी समाप्त कर दिया।

महाराज अनरण्य का निधन होने पर रावण ने हिमवन्त की ओर बाग मोड़ी, जहां उसके भाई कुम्भकर्ण, नाना सुमाली तथा महावीर पुत्र मेघनाद तथा सहस्रों राक्षस उसकी बाट जोह रहे थे। रावण की वह वीर- वाहिनी उनसे इस प्रकार जा मिली, जैसे नदियां समुद्र में मिलती हैं। राक्षसों की इस सैन्य का आगमन सुनकर यक्ष भयभीत होकर भागने लगे। कुबेर ने जब सुना तो उसने क्रुद्ध होकर रावण के सम्मुख युद्ध करने अपनी चतुरंग चमू को भेजा। यक्षों ने राक्षसों के धुरें उड़ा दिए। राक्षस और सेनापति इधर-उधर भागने लगे। यह देख रावण ने ललकारकर कहा—अरे राक्षस भटो, निर्भय युद्ध करो और देखोकि मैं अकेला ही युद्ध-स्थली में कैसा चमत्कार दिखाता हूं।" इतना कह वह अपना परशु घुमाता हुआ यक्षों के समूह में घुस गया। देखते ही देखते यक्षों के कट-कटकर ढेर होने लगे।

यक्षों की यह दुर्दशा देख कुबेर वैश्रवण ने अपने सेनापति सुयोध कटंक यक्ष की बहुत-सी नयी सेना लेकर भेजा। इस नयी सेना को देख विकराल कुम्भकर्ण दोनों बाहु फैलाकर दौड़ा। दूसरी ओर से मारीच ने यक्षों को दबाया। दोनों दलों में जब इस प्रकार विकट संग्राम हो रहा था, तब अवसर पा रावण अपना परशु घुमाता हुआ अलका के सिंहद्वार पर जा पहुंचा। उसके साथ ही दैत्य सुमाली शक्ति हाथ में लिए चला। द्वार-रक्षकों के अध्यक्ष सूर्यभान यक्ष को युद्ध में मारकर वह सुमाली-सहित अलकापुरी में घुस गया।

कुबेर ने जब यह समाचार सुना तो मणिभद्र यक्ष को रावण का वध करने भेजा। चार हज़ार यक्ष लेकर मणिभद्र ने रावण को चारों ओर से घेर लिया। उसपर गदा, मुशल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुद्गर की वर्षा होने लगी। इसी समय प्रहस्त, अकम्पन और मारीच बहुत सी राक्षस सेना ले वहां पहुंच गए। भीषण युद्ध हुआ। मणिभद्र मूर्च्छित हो गया। उसे रथ पर डाल यक्ष कैलाश की ओर ले भागे।

मणिभद्र के पराभव का समाचार सुनते ही यक्षों की सेना में हाहाकार मच गया। अलकापुरी के सब आबालवृद्ध आर्तनाद करने लगे। यह देख शुक्र, प्रोष्ठपद और पद्मशंख नामक तीन महाविक्रम महारथियों के साथ स्वयं कुबेर धनेश ने पुष्पक विमान में बैठकर यक्षों की सेना-सहित युद्ध-भूमि में प्रवेश किया। कुबेर धनेश को सम्मुख आते देख रावण परशु उठा आगे बढ़ा। उसे देख कुबेर ने कहा—

"अरे दुर्बुद्धि रावण, तू मेरा निवारण भी नहीं मानता। अरे, जो माता-पिता और गुरुजनों का अपमान करता है, वह तो महाअधर्मी है। परन्तु अब इन बातों से क्या? अब तू अपने कर्मों का फल भोग।" इतना कह उसनेरावण पर गदा से वार किया। रावण ने भी प्रहार किया। अब दोनों भाइयों में भयंकर युद्ध होने लगा। अन्त में रावण का गहरा आघात मस्तक पर खाकर कुबेर मूच्छित होकर भूमि पर गिर गया। यह देख उसके सेवक उसे उठाकर रथ में बैठाकर ले भागे। रावण कुबेर के पुष्पक विमान पर अधिकार कर लिया। इस पुष्पक का वेग मन के समान था। यह विमान त्वष्ट्रा विश्वकर्मा ने कुबेर के लिए बनवाया था। रावण ने विमान को प्राप्त कर तीनों लोकों को जय किया समझा और वह तेजी से हिमालय को लांघकर देवाधिदेव रुद्र के निकेतन कैलाश-शिखर पर जा चढ़ा।

कैलाशी ने प्रसन्नवदन हो रावण की अभ्यर्थना की। रावण ने कैलाशी रुद्र के चरणों पर मस्तक रख उन्हें प्रणिपात किया और बद्धांजलि हो अनुग्रह-याचना की। रुद्र ने कहा—"भद्र वैश्रवण, तेरे पुत्र मेघनाद को हमने अपने सब दिव्यास्त्र दे दिए हैं। अब वह देव-दैत्य सभी से अजेय है। अब कह, तेरा और क्या प्रिय करूं?"

रावण कृतकृत्य हो गया। इसी समय मेघनाद ने पिता के चरण छुए। रावण ने पुत्र को छाती से लगा, स्नेह से सिर सूंघा; फिर वह पुत्र को साथ ले, रुद्र की अनुमति ले तीव्र गति से कैलाश के नीचे उतरा

परन्तु कैलाश ही के मार्ग में उसकी भेंट नारद वामदेव से हो गई नारद को देख रावण ने उन्हें प्रणिपात किया और अपना मन्तव्य सुनाकर कहा—"देवर्षि, कहो कैसे मेरा मनोरथ पूरा होगा?"

नारद ने कहा—"सुन विश्रवा मुनि के पुत्र, तेरे पराक्रम, साहस और भावना से मैं प्रसन्न हूं। पर तू यहां आर्यावर्त में क्या कर रहा है? तू देव, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व सभी को पराजित करने की सामर्थ्य रखता है, तू अपवर्त जा। वहां यम, वारुणेय, इन्द्र, देवराट् हैं, उन्हें जय कर। फिर नागों को पाताल में विजय कर। तब तेरा मनोरथ फलेगा।"

रावण ने हंसकर कहा—"देवर्षि, मैं ऐसा ही करूंगा।"

इतना कह नारद अपनी राह लगे और रावण ने भी अपवर्त की राह पकड़ी। अब वह मित्रावसु गन्धर्व की पुरी में पहुंचा, जहां उसका भव्य स्वागत हुआ। चिरविरहिणी चित्रांगदा से मिलकर हृदय-ग्रंथि

खोली, मान-मनौवल हुआ। चित्रांगदा के मनोरथ पूर्ण कर तथा शीघ्र लौटने का वचन दे, अपने श्वसुर मित्रावसु से गन्धर्वों की सेना सहायतार्थ ले, रावण अपवर्त की ओर अग्रसर हुआ। अनरण्य का युद्ध में निधन तथा बालि, वानरेन्द्र और माहिष्मती के सहस्रार्जुन की कथा रावण ने श्वसुर को कह सुनाई थी। इसपर मित्रावसु ने उसे अनेक सत्परामर्श दिए। चतुरंग चमू के साथ बहुत स्वर्ण, मणि और दिव्यास्त्र भी दिए।

अब रावण का यह राक्षस-सैन्य अपरिसीम था। रौद्र शक्ति से सम्पन्न और गन्धर्वों से संयुक्त तथा अजेय मेघनाद, कुम्भकर्ण और सुमाली से सुरक्षित उसकी सेना एक ओर थी और दूसरी ओर उसका अपना विकराल परशु था।

चलते-चलते राक्षसों की यह चतुरंग चमू 'आर्यवीर्यवान्' क्षेत्र में आ पहुंची, जहां इन्द्रसखा मरुत संवर्त ब्रह्मर्षि के नेतृत्व में यज्ञ कर रहे थे। मरुतों के इस यज्ञ में देवेन्द्र-सहित सभी देवता उपस्थित थे। दुर्जय रावण परशु कन्धे पर रख निर्भय एकाकी ही यज्ञ-भूमि में जा धमका और बोला—"मैं सप्तद्वीपों का अधीश्वर पौलस्त्य रावण हूं। नृवंश में एक वैदिक रक्ष-संस्कृति की स्थापना करने के लिए मैंने सार्वभौम अभियान किया है। अब जो कोई मेरी रक्ष-संस्कृति को स्वीकार करता है, उसे अभय; जो नहीं स्वीकार करता है उसके मस्तक पर मेरा यह परशु है।" रावण के ऐसे गर्व-भरे अकल्पित, अतर्कित वचन सुनकर सभी मरुद्गण और देवगण स्तम्भित रह गए। रावण की दुर्धर्ष चतुरंग चमू की सूचना उन्हें मिल गई थी। इससे उन्हें भीति भी हुई। इसके अतिरिक्त यह यज्ञ का काल था।

रावण के वचन सुनकर मरुतों के प्रमुख ने कहा—

"अरे पौलस्त्य, तू विज्ञ दीखता है, पर अभिमानी पुरुष की भांति बातें करता है। क्या विश्व में तू ही एक वीर पुरुष है?"

"इसका निर्णय तो यह परशु करता है। अभी मैंने अपने बड़े भाई कुबेर धनपति का इसीसे पराभव किया है तथा इक्ष्वाकु अनरण्य का इसी परशु से शिरच्छेद किया है, जिसका रक्त भी अभी सूखा नहीं है।"

मरुतों के प्रमुख ने कहा—"शांतं पापम्! बड़े भाई का पराभव और वृद्ध मानव अनरण्य का वध! अरे वैश्रवण, तू तो अधर्म करता आ रहा है, क्या संसार में अधर्म करके भी कोई यशभागी बना है? परन्तु इस प्रलाप से क्या? तू यदि हम मरुद्गणों से युद्ध ही चाहता

है तो खड़ा रह, मैं तुझे यहां से जीवित नहीं जाने दूंगा।"

यह कहकर मरुतों का स्वामी खड्गहस्त यज्ञोपवीत पहने हुए ही यज्ञासन से उठ खड़ा हुआ। अन्य मरुद्गणों ने भी खड्ग खींच लिए। देवों ने भी धनुषों पर बाण-संधान किए। रावण हुंकारकर परशु घुमाने लगा, परन्तु इसी समय महर्षि संवर्त ने उसके निकट आकर स्नेह से रावण के सिर पर हाथ रखा और कहा—"आयुष्मान् रावण, मैं तेरे पिता विश्रवा मुनि का गुरुभाई और सखा हूं। तुझे देखकर सम्प्रहर्षित हूं, मरुद्गण इस समय माहेश्वर यज्ञ में दीक्षित हैं, तू भी तो माहेश्वर है। सो पुत्र, इस समय धर्म-क्षण में यह विग्रह ठीक नहीं। इसमें देव-अवज्ञा होगी।" फिर उसने मरुतों के प्रमुख से कहा—"यज्ञ की दीक्षा में प्रविष्ट पुरुष को युद्ध और क्रोध से दूर ही रहना उचित है, इसलिए रावण के पराक्रम और यज्ञ के भार को समझकर आप भी शस्त्र त्याग दें तथा मरुत् और देव शान्त हो जाएं।"

इसी समय रावण के मंत्री शुक ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा—"मैं राक्षसों का मंत्री शुक पुकारकर घोषित करता हूं—यहां बैठे सब मरुद्गण और देवगण सुनें कि वैश्रवण पौलस्त्य रावण—सप्त द्वीपों का अधिपति लंकेश—यहां उपस्थित है। मैं उसकी विजय-घोषणा करता हूं, जिसे विरोध हो, वह शस्त्र ले!"

परन्तु ऋषिवर संवर्त के संकेत से सब मरुद्गण और देवेन्द्र सहित देवगण चुपचाप बैठे रहे। रावण उसी प्रकार यज्ञ-स्थल से चला गया।

शीघ्र ही स्वयं वह अपवर्त में जा पहुंचा। यमराज महिषों की सैन्य ले तोमर, शूल, प्रास, परिघ, मुद्गर और शक्ति ले युद्धस्थल में आ पहुंचे। क्रोध से लाल-लाल आंखें किए यम ने अपने सारथी से कहा—"सूत, मेरा रथ इस वैश्रवण के पास ले चल।" सूत ने काल-दण्ड हाथ में ले, रथ आगे बढ़ा दिया। यम ने भयानक वेग से महास्त्रों का प्रयोग किया, जिससे दशों दिशाएं जलने लगीं। राक्षसों की सेना हाहाकार करती भाग खड़ी हुई। पर रावण ने घोर गर्जना करके यमराज को बाणों से छा दिया। यमराज ने कहा—"अरे, यह विश्रवा मुनि का पुत्र तो हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, धूमकेतु, बलि, वैरोचन, वर्त्र, राजर्षि, गन्धर्व, उरग सभीसे प्रबल ज्वलन्त सत्त्व प्रतीत होता है।" यह कहकर यमराज ने युद्ध-क्षेत्र त्याग दिया। यमराज को पराङ्मुख देख रावण विजय का डंका बजाता हुआ अपवर्त से वरुणलोक की ओर चल पड़ा।"

शीघ्र ही उसकी चतुरंग चमू वरुणलोक में जा पहुंची तथा वारु-

णेयों से उसका घमासान युद्ध ठन गया। रावण ने परशु हवा में घुमा-कर प्रलयमेघ के समान गर्जना की। इसपर सब वारुणेयों से कहा—"हे वारुणेय, तुमने मय दानव की पत्नी हेमा मानक अप्सरा को हरण किया है, उसे वापस करो तथा उरनगर मय दानव को दो, तो मैं तुम्हें क्षमा करूंगा। नहीं तो मैं समूचे वरुणालय को भस्म कर ढेर कर दूंगा।" इसपर इन्द्रद्युम्न वारुणेय ने आगे बढ़कर खड्ग हवा में हिलाते हुए कहा—"हेमा मेरी प्रेयसी है, उसपर जिसकी दृष्टि है, उसका मैं इसी क्षण वध करूंगा।" मय दानव अब अपनी विकराल शक्ति ले आगे आया। उसने कहा—"अरे पराई स्त्री को चुरानेवाले चोर ठहर! आज तू मेरे हाथ से बच नहीं सकता।" इसके बाद दोनों वीर गुंथ गए और इन्द्रद्युम्न छाती में शक्ति खा रक्त वमन करता हुआ मर गया।

वारुणेयों ने अछता-पछताकर हेमा रावण को सौंप दी। उर नगर भी उसके हवाले किया। इस प्रकार वारुणेयों से युद्ध में कृतकृत्य हो, अपनी प्रिय मन्दोदरी की अभिलाषा पूर्ण कर, अपनी सास हेमा अप्सरा को साथ ले रावण ने दलबल सहित उरनगर में डेरा डाला और सब राक्षस-सैन्य को विश्राम करने की आज्ञा दी।

२४

उन दिनों उरपुर देवलोक में अत्यन्त सम्पन्न नगर था। वहां अनेक देव, अप्सराएं और उरग-जन रहते थे। इसकी सुषमा अमरावती से कम न थी। यह नगर काकेशस उपत्यकाओं में आज भी बसा हुआ है। यहां की अप्सराएं देवलोक में सबसे अधिक सुन्दर हुआ करती थीं और वे उर्वशी कहाती थीं। काकेशस या कोहकाफ का यह अंचल अत्यन्त आरोग्यप्रद है। पर्शियन कथाकारों ने इन अप्सराओं को कोहा-काफ की परी कहकर इनका परिचय दिया है। यहां पारिजात नाम का क अम्लान, श्वेत स्थलकमल होता था जो देवलोक-भर में प्रसिद्ध था। इसकी गन्ध-माधुरी एक योजन तक वातावरण को सुरभित करती थी और देवराट् इन्द्र प्रतिदिन इसी पारिजात का अम्लान माल्य धारण करते थे। आज भी संसार-भर में इस प्रान्त का यह स्थल-गुलाब प्रसिद्ध है।

रावण ने वारुणेयों से हेमा अप्सरा के साथ बहुत-से रत्न, मणि, सुवर्ण भी क्षतिपूर्ति के रूप में लिए थे तथा हेमा को उसने वन्दिनी के

रूप में पृथक् एक स्थान में रखा था। हेमा इसी उरपुर की निवासिनी थी। वह असाधारण सुन्दरी और मोहक थी। उसके कटीले नयनों के कटाक्ष और उन्नत उरोजों का आकर्षण विलक्षण था। इस बृहद् अभियान में रावण के साथ उसका श्वसुर मय दानव और उनके दोनों पुत्र मायावी और दुन्दुभि भी थे। भली भांति सैनिक-सन्निवेश स्थापित कर चुकने के बाद रावण ने अपने श्वसुर मय दानव को बुलाया तथा अपने सब मंत्रियों के समक्ष उससे कहा—'हे महाभाग, सुम्बाद्वीप में मैंने आपकी कन्या ग्रहण करने के समय शुल्क-रूप में जो वचन दिए थे उन्हें मैंने अब पूरा कर दिया। वारुणेयों से दारुण युद्ध करके आपने अपने शत्रु का हनन किया तथा आपकी स्त्री हेमा अप्सरा का मैंने उद्धार कर दिया। अब वह बन्दिनी यहां उपस्थित है। स्वेच्छा से अकारण अपने पुरुष को त्यागकर जो स्त्री चली जाए और दूसरे से रमण करे वह दण्डनीय है। यह खड्ग है, लीजिए और उस कुलत्यागिनी कुलटा स्त्री का शिरच्छेद कर अपने प्रतिष्ठित कुल की प्रतिष्ठा सुरक्षित कीजिए, जिससे लोक में उदाहरण रहे।"

मय ने कहा—"हे सौम्य, तूने अच्छी धर्म-मर्यादा कही। मैं भी यही ठीक समझता हूं और अभी उस कुलटा कुलत्यागिनी का हृदय इस खड्ग से निकालकर भक्षण करूं। अब उसके कलंकित जीवन से मुझे क्या!" इतना कहकर मय दानव खड्गहस्त उस कारागार में गया, जहां उसकी पत्नी हेमा अप्सरा बन्दिनी थी, जिसके वियोग में वह अपना राज्य, नगर त्याग चौदह वर्ष वन-वन और देश-देश की खाक छानता रहा था।

परन्तु जब वह नग्न खड्ग हाथ में लिए उसके सम्मुख पहुंचा, तो उसने देखा कि वह अविचल भाव से स्थिर खड़ी है। मय ने देखा, उसका सौन्दर्य और आकर्षण इन चौदह वर्षों में तनिक भी म्लान नहीं हुआ है। वैसे ही उसका उठा हुआ यौवन है, वैसा ही तपाए सोने का सा स्वर्णगात है, वैसी ही नीलमणि-सी उसकी देह-यष्टि है।

अपने पति को चौदह वर्ष बाद इस प्रकार खड्गहस्त खड़ा देखकर वह तनिक भी विचलित नहीं हुई, न उसने अपने बचाव की ही कुछ चेष्टा की।

हाथ में खड्ग लिए मय देर तक एकटक हेमा को देखता रहा। फिर उसने पूछा—"अब तू क्या चाहती है?"

"जो तुम चाहो।"

"तू क्या करेगी?"

"जो तुम कहो।'
"कहां रहेगी ?"
"जहां तुम रखोगे।"
"यदि मैं तुझे मुक्त कर दूं ?"
"अब, इस अभियान के बाद ?"
"तू जहां चाहे चली जा, मुझसे तुझे क्या ?"
"फिर इतना रक्त क्यों बहाया !"
"यह तो ठीक ही किया।"
"तो अब फिर मैं कहां जाऊं ?"
"क्या इन्द्रद्युम्न तुझे मेरे हर्म्य से भगा ले गया था ?"
"नहीं, मैं स्वेच्छा से उसके साथ गई थी।"
"इसमें दोष किसका है, तेरा या इन्द्रद्युम्न का ?"
"किसीका भी नहीं।"
"तो तू अपने उस गर्हित कार्य के लिए लज्जित नहीं ?"
"लज्जित नहीं हूं।"
"क्या मैं तुझे प्यार नहीं करता था ?"
"करते थे।"
"और तू ?"
"मैं भी।"
"फिर भागी क्यों ?"
"इसलिए कि मैं अपने को भी प्यार करती थी।"
"तूने मेरा विचार नहीं किया ?"
"बहुत किया।"
"फिर भी तू मुझे छोड़कर भाग गई ?"
"हां।"
"किसलिए ?"
"तुम्हारे साथ रह नहीं सकती थी।"
"यदि में तेरा वध करूं ?"
"करो।"
"और प्यार ?"
"करो।"
"तू भयभीत नहीं है।"
"क्या तुमसे ?"
"नहीं, इस खड्ग से ?"

"नहीं।"

"क्यों भला ?"

"तुम तो मेरे निकट हो। तुम्हारे निकट रहते मुझे भय क्या !"

मय की आंखों से अश्रुधारा बह चली। खड्ग की नोंक भूमि में गड़ाकर वह पृथ्वी पर झुक गया।

हेमा ने आकर उसका सिर अपने वक्ष में ले लिया।

बहुत देर बाद मय ने कहा—

"घर चल हेमा !"

"चलो !"

और दोनों उस बन्दीगृह से बाहर आए। रावण ने सब बातें जानीं, पर उसने सास की अभ्यर्थना नहीं की। फिर भी वह उसके अदैन्य पर चकित था।

उसने कहा—"मातः, मैं तेरी अभ्यर्थना नहीं कर सकता।"

"कैसे कर सकता है पुत्र, मुझसे घृणा करने का तुझे अधिकार है।"

मैं तुझसे घृणा नहीं करता मातः, परन्तु तूने अपराध तो किया है।"

"इसका विचार तू नहीं कर सकता पुत्र, तेरी पत्नी का पिता—मेरा पति—कर सकता है, सो उसने कर लिया है।"

"तो मातः, तेरा अब मैं क्या प्रिय करूं ?"

"इस उरपुर में हमारा अभिनन्दन ग्रहण करके मुझे संप्रहर्षित कर।"

"यह उरपुर तो मैंने अपने श्वसुर महाभाग मय को दे दिया है।"

"तो उसकी पत्नी मैं यहां की स्वामिनी हूं; तेरा अभिनन्दन करती हूं, तू हमारा जामाता है, पूजार्ह है, अतिथि है, अभिनन्दनीय है, मेरे पति पर तेरा उपकार है।"

रावण ने स्वीकार किया और तब मय दानव और उसकी पुनरागता पत्नी हेमा अप्सरा ने उरपुर में रावण और राक्षस सैन्य के सत्कार का आयोजन धूमधाम से किया।

उरपुर से श्वसुर तथा सास से सुपूजित होकर रावण अपनी चतुरंगिणी सेना ले अमरावती की ओर बढ़ा। अब तक रावण ने मेघनाद को युद्ध से विरत कर रखा था। उसने कहा था—"पुत्र, तू केवल

देखता रह, युद्ध न कर। मैं देवराट् इन्द्र के साथ तेरा प्रथम युद्ध देखना चाहता हूं।" सो अब जब अमरावती के स्वर्णकलश रावण ने देखे, तो पुत्र मेघनाद को छाती से लगाकर उसने कहा—"पुत्र, यह अमरावती है, जहां हमारे राक्षस-धर्म के परम विरोधी देव आदित्य रहते हैं। अब तेरा यह कार्य है कि इस देवराट् को रस्सियों से बांध ला। आज तू ही इस देवाभियान का नेतृत्व कर, पुत्र! हम सब तेरे अनुगत रहकर तेरी पृष्ठ-रक्षा करेंगे।"

पिता के वचन सुन मेघनाद ने रावण की परिक्रमा कर प्रणाम किया और कहा—"तात, आप मेरा कौतुक देखें कि किस प्रकार देवराट् को बांधकर आपके चरणों में ला डालता हूं।"

इतना कहकर मेघनाद ने वर्म पहना, शस्त्र धारण किए और श्यामकर्ण सोलह घोड़ों के रथ में बैठ समूचे रक्षबल का वज्र-व्यूह रच, धौंसा बजाता हुआ अमरावती की ओर अग्रसर हुआ। राक्षसों की इस महती वीरवाहिनी को देखकर देवतागण घबरा गए। देवराट् ने अपने पुत्र जयन्त को मेघनाद से लोहा लेने को भेजा और पुर के सब राह-बाट पर उसने धनुर्धर देवों को सन्नद्ध किया।

दोनों ओर से रणवाद्य बजते ही दोनों सेनाएं भिड़ गईं। जयन्त के संरक्षण में देव-सैन्य ने मेघनाद पर भीषण प्रहार करने आरम्भ किए। मेघनाद ने अनायास ही जयन्त के सभी बाणों को काट डाला, तथा एकबारगी ही बाणों के जाल से उसे ढांप दिया। यह एक अभूतपूर्व धनुर्युद्ध था, जिसमें एक ओर एकाकी मेघनाद—रुद्र-किंकर, विद्युत्-प्रवाह की भांति बाण-वर्षा कर रहा था, दूसरी ओर जयन्त देवराट्-सुत दिव्य रथ पर सवार, जिसमें स्वर्णाभरण पहने सोलह श्वेत अश्व जुते थे, अपना अमोघ लाघव दिखा रहा था। आवेशित हो मेघनाद ने माया-चक्र रच युद्ध-भूमि में घोर अन्धकार फैला दिया और फिर चारों ओर से प्रास, मुशल, शतघ्नियों के प्रहार से देव-कुल को आतंकित कर दिया। ऐसा अद्भुत और भयानक युद्ध देख देव हाहाकार कर भागने लगे। किसीको भी अपने-पराये का ज्ञान न रहा। युद्ध का सारा क्रम ही भंग हो गया।

अब मायावी मेघनाद जयन्त पर अन्तक के समान प्रहार करने लगा। जयन्त पर घोर आपत्ति आई देख, उसके नाना भीम-विक्रम दानवेन्द्र पुलोमा ने व्यूह में बलात् घुसकर रथ पर से जयन्त को उठा लिया और उसे कांख में दबा, जलस्तम्भनी विद्या द्वारा समुद्र-जल में घुसा। जब देवों ने जयन्त के रथ को खाली तथा मातुलि को मूर्च्छित

देखा, तो जयन्त को मरा समझ रणस्थली से भाग निकले।

इसी समय मातुलि की मूर्छा भंग हुई और वह रथ दौड़ाकर व्याकुल भाव से देवराट् इन्द्र के पास पहुंचा। अपने पुत्र को रणक्षेत्र से इस प्रकार गायब सुन देवराट् इन्द्र वज्रहस्त हो स्वयं रथ में बैठ युद्ध-स्थली में पहुंचा। शत-सहस्र मेघों की गर्जना के समान ध्वनित उस रथ को हेम-पर्वत की भांति अबाध गति से आता देख राक्षस भय से चीखने-चिल्लाने लगे। सब रुद्र, वसु, आदित्य और मरुद्गण इन्द्र की रक्षा करते हुए उसे चारों ओर से घेरकर चले। यह देख रावण मय दैत्य द्वारा निर्मित अपने विशाल रथ पर आरूढ़ हो आगे बढ़ा। रावण ने मेघनाद को युद्ध से विरक्त करके कहा—"तू तनिक विश्राम कर पुत्र, तब तक मैं इस ब्रह्मा देवराट् को देखूं।" कुम्भकर्ण रथ के आगे तथा शुक, सारण-दाएं-बाएं और भीम-पराक्रम सुमाली दैत्य रावण की पृष्ठ-रक्षा पर सन्नद्ध हो चले। चारों ओर राक्षसों का कटक। क्षण-भर ही में घमासान मच गया। कुम्भकर्ण को अपना-पराया कुछ न सूझ पड़ता था। वह जिसको भी सामने पाता, अपने दांतों, भुजाओं और लातों से मसल डालता। शस्त्र ग्रहण करने का उसे विचार ही न आता था। वह देवों को बीच से चीर-चीरकर इधर-उधर फेंकने लगा। उसका बीभत्स कार्य देख देव "त्राहि माम्—त्राहि माम्" करने और इधर-उधर भागने लगे। अब पराक्रमी मेघनाद रुद्रों से भिड़ गया। रुद्रों ने उसे चारों ओर से लिपटकर उसके अंग विदीर्ण कर डाले। उनमें से रक्त झरने लगा। उधर मरुद्गणों ने राक्षसों को मार-मारकर बिछा दिया। युद्ध-भूमि मरों और अध-मरों से पट गई। अनेक राक्षस अपने वाहनों पर मरकर गिर गए। वहां रक्त की नदी बह चली। उसमें तैरती हुई लोथें जलचर-सी दिखाई देने लगीं। आकाश में चील, गिद्ध और कौए उड़ने लगे। बड़ा ही बीभत्स दृश्य उपस्थित हो गया। रावण ने जब यह दशा देखी तो वह अपना रथ बढ़ाकर इन्द्र को ललकारता तथा बाणों की वर्षा करता आगे बढ़ा। इन्द्र ने भी अपने धनुष को टंकार कर शरसंधान किया। अब रावण और इन्द्र का ऐसा घनघोर युद्ध हुआ कि जैसा न किसीने देखा, न सुना होगा।

इसी समय मेघनाद रथ पर बैठ बिजली की भांति इन्द्र पर टूट पड़ा। छूटते ही उसने शक्ति का इन्द्र के वक्ष पर प्रहार किया। साथ ही दस बाणों से सारथी मातुलि और दस बाणों से उसके घोड़ों को बींध डाला। फिर उसने माया-विस्तार करके अन्धकार कर दिया।

सब देव व्याकुल हो गए। तब मेघनाद निश्शंक इन्द्र के रथ पर चढ़ गया और उसे जकड़कर रस्सियों से बांध, पीठ पर उठा, गर्जना करता हुआ राक्षसों की सेना में लौट आया।

जब प्रकाश हुआ और देवों ने इन्द्र को रथ पर नहीं देखा, तो वे बड़े घबराए। न उन्हें मेघनाद ही दिखाई दिया, न इन्द्र। उन्होंने खीझकर रावण पर प्रचण्ड आक्रमण किया। आदित्यों और वसुओं ने उसपर अविरत प्रहार कर उसे जर्जर कर दिया। इसी समय अदृष्ट रह मेघनाद ने आकाशवाणी से पुकारा—"हे पिता,अब युद्ध का क्या प्रयोजन है, हम विजयी हो गए हैं। त्रिलोकी के स्वामी इन्द्र को हमने बन्दी बना लिया है। अब इन क्षुद्र देवताओं को मारने से क्या लाभ है ? चलिए,लंका को लौट चलिए और त्रिलोकी का राज्य भोगिए।"

अपनी विजय से गर्वित रावण ने हर्षित हो इन्द्रजयी पुत्र को छाती से लगाकर कहा—"अरे पुत्र, तू आज से त्रैलोक्य में इन्द्रजीत के नाम से विख्यात हो। तूने आज इन्द्र को बन्दी बनाकर हमारे कुल के ऐश्वर्य को बढ़ाया है। अब इन्द्र को लेकर अभी लंका को प्रस्थान कर। पीछे मैं भी आता हूं।" इतना कह रावण ने उसी क्षण सुरक्षा के लिए बहुत-सी सैन्य दे, बन्दी इन्द्र के साथ इन्द्रजयी मेघनाद को लंका भेज दिया।

२५

अब हर्षित, तृप्तमनोरथ, अप्रतिरथ, चक्रवर्ती त्रैलोक्य-विजयी रावण लौटा। उसने देवलोक से एक सहस्र कुमारिकाएं हरण कीं। गन्धर्व-लोक पहुंच मित्रावसु गन्धर्व की वन्दना की, प्रियतमा चित्रांगदा को हृदय से लगाया। वहां से प्रियतमा चित्रांगदा को संग ले तथा मित्रावसु से बहुत धन-उपानय ले, वह लंका की ओर चला। मार्ग में नागों, यक्षों, मनुष्यों, देवों, दानवों और राजर्षियों के जो-जो जनपद पड़े, सभीमें अपनी विजय-वैजयन्ती फहराता, अपनी रक्ष-संस्कृति का डंका पीटता और जनपदों की सुन्दरी कन्याओं का हरण करता, विरोधियों का वध कर उनके अवरोध की बहू-बेटियों को बलपूर्वक समेटता, अपने पुष्पक विमान पर बैठ, आगे बढ़ता चला गया। अन्त में वह लंका पहुंचा। विजय-डंका बजाते हुए उसने लंका में प्रवेश किया। नगरनिवासियों ने उसका जय-जयकार किया।

अभी लंका में विजयोत्सव, पान-गोष्ठियां, नृत्य-विलास, दीपावलियां हो ही रही थीं कि अकस्मात् रंग में भंग हो गया, जिससे सारी लंका में विषाद और क्रोध की भावना फैल गई। नाच-रंग, पान-गोष्ठियां तुरन्त रोक दी गईं। नगर और मणिमहल, सर्वत्र हा शोक छा गया।

कोई एक तपस्वी बहिष्कृत राज्यच्युत आर्य राजकुमार दण्डकारण्य में आए हैं, जो धनुष-बाण धारण करते हैं। उनसे दण्डकारण्य की रानी सूर्पनखा का विग्रह हो गया है। उन्होंने धृष्टतापूर्वक राक्षस-राज-नन्दिनी सूर्पनखा का अंग-भंग कर दिया है, उसकी नाक काट ली है और जनस्थान के रक्षक चौदह हज़ार राक्षसों को खरदूषण सहित मार डाला है। अब सूर्पनखा रोती-कलपती, विलाप करती लंका में रक्षेन्द्र रावण की शरणापन्न हुई है।

जगज्जयी महातेज रावण अपने मणिमहालय के सतखंडे की छत पर स्वर्ण-सिंहासन पर अति उद्विग्न बैठा था। देवों के युद्ध में उसके अंग पर जो वज्र प्रहार हुए थे, उसकी चोटें अभी उसके शरीर पर ताज़ा थीं।

उसकी बहिन सूर्पनखा उसके सम्मुख खड़ी कह रही थी—"भाई, मेरी इस दुर्दशा को देख। तू अमिताभ यदि इसे सहन करेगा, तो तू भी उस निष्कासित के हाथों अछूता न बचा रहेगा।"

रावण ने विपन्न बहिन को खिन्न नेत्रों से देखा, फिर कहा—"बहिन, धैर्य रख, रावण को क्रुद्ध करके यमराज भी सुख से नहीं जी सकता। तू विस्तार से उस आर्य राजपुत्र का बखान कर। क्या वह सम्पूर्ण देवताओं और यम, कुबेर, दिक्पालों-सहित जनस्थान में आया है?"

"वह दाशरथि राम कहाता है। उसके साथ केवल उसकी पत्नी सीता और एक भाई है। उसने मुनि का वेश धारण किया है, परन्तु है वह धनुर्धारी और प्रचण्ड योद्धा। उसने अकेले ही बात की बात में खर-दूषण सहित हमारे चौदह हज़ार राक्षसों को मार डाला है।"

"दाशरथि राम! श्याम गात, सघन कृष्ण काकपक्ष, विशाल-वक्ष, प्रलम्बबाहु?"

"वही है, वही है, उसके कन्धे बैल के समान पुष्ट हैं। भुजाएं गोल और घुटनों तक लम्बी हैं, सुदर्शना कमनीय कान्ति है। उसे दिव्यास्त्रों का महाज्ञान है।"

"तो उसके साथ सीता भी वही है—सीरध्वज की आयोनिजा

शुल्क वीर्या !'' रावण के नेत्रों में जनकपुरी के यज्ञ में धनुर्भंग का चित्र घूम गया। उसने कहा—''वह स्त्री चम्पकवर्णी, भीरु और अति कोमलकान्त-प्रभा है न ?''

''ऐसा ही है। क्या तूने उसे देखा है ?''

''ऐसा ही मैं समझता हूं, दाशरथि राम ही है वह, परन्तु वह राज्यभ्रष्ट—राज्यबहिष्कृत हो, कैसे दण्डकारण्य में घूम रहा है ?''

''पिता की आज्ञा से।''

''क्या एकाकी ही ?''

''बस, वह, स्त्री और भाई, तीन ही हैं।''

''तीनों ही ने मेरी प्रबल राक्षस सेना को मार डाला—खर को भी, दूषण को भी ! बड़े आश्चर्य की बात है।''

''चमत्कार ही कहना चाहिए।''

''कदाचित् ! उसका एक चमत्कार मैंने देखा है—ऐसा मुझे स्मरण होता है। परन्तु यह विग्रह हुआ क्यों ?''

'' अकारण ही भाई, मुझे सूचना मिली—वहां जनस्थान में एक नया तरुण तपस्वी आया है और एक नया आश्रम बनाकर रहने लगा है। तेरा आदेश था कि ऐसा न होने दिया जाए। सो मैं स्वयं ही उसे देखने गई। वहां मैंने उसे देवताओं के समान रूपवान पाया। उसका मुख तेजस्वी, भुजाएं विशाल और नेत्र कमल के समान थे। उसे देख मैं सकामा हो गई। मैंने उससे पूछा—'हे सुन्दर पुरुष, तपस्वी के वेष में सिर पर जटा धारण किए और संग में स्त्री लिए, धनुष-बाण से सुशोभित, तू कौन है और यहां मेरे इस जनस्थान में किस प्रयोजन से आ बसा है ?' तब उस पुरुष ने कहा—'सुन्दरी, मैं पराक्रमी महात्मा दशरथ का पुत्र राम हूं। मेरे साथ मेरी पतिव्रता पत्नी सीता और आज्ञाकारी भाई लक्ष्मण है। हम लोग माता-पिता की आज्ञा से प्रेरित हो धर्मपालनार्थ यहां दण्डकवन में निवास करने आए हैं। अब तुम भी अपना परिचय दो !''

'' उस पुरुष के वचन सुनकर मैंने कहा—'मैं विश्रवा मुनि के पुत्र रावण त्रिलोकपति की बहिन सूर्पनखा हूं। प्रबल कुम्भकर्ण और धर्मात्मा विभीषण मेरे भाई हैं। इस दण्डकारण्य की स्वामिनी मैं ही हूं।' तब उस पुरुष ने कहा—'जानकर प्रसन्न हुआ। अब यहां आने का कारण कहो !' तब मैंने अपना अभिप्राय उससे कहा कि मैं प्रतिष्ठित रक्षवंश की राजपुत्री हूं; तुझपर मेरा काम-भाव है, तू मुझे पत्नीभाव से ग्रहण कर।' परन्तु उस पुरुष ने कहा—'मेरी पत्नी

मेरे साथ मौजूद है और तुझ जैसी सुलक्षणा और स्वाधीनभर्तृका के लिए सौत का होना दुःख का कारण हो सकता है। इससे अच्छा तो यह होगा कि यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। इसके साथ स्त्री नहीं है, तू इसीसे विवाह कर ले।'

मैंने देखा कि वह पुरुष भी कमनीय है। मैंने उसके निकट जाकर उससे कहा—'अरे पुरुष, तू भी मेरे ही समान रूपवान है, गुणवान् है, मुझे तेरी भार्या बनना स्वीकार है।' परन्तु उसने कहा—'मैं तो दास हूं। मेरी भार्या बनकर तो तुझे दासी ही बनना पड़ेगा।' इसपर मुझे क्रोध आ गया और मैंने कहा—'इस मानुषी स्त्री के ऊपर तुम लोग मेरा तिरस्कार करते हो? मुझसे ठट्ठा करते हो? ठहरो, मैं अभी इसे खा डालती हूं।' जब मैं उस स्त्री पर झपटी तो उस दाशरथि के संकेत से उसके दुष्ट भाई ने पकड़कर निर्लज्जतापूर्वक मेरा अंग-भंग कर दिया—मेरी नाक काट डाली।"

मंत्रियों के समक्ष बहिन सूर्पनखा के ऐसे मर्मान्तिक वचन सुनकर रक्षेन्द्र रावण वज्र-गर्जना कर उठा—"सूर्पनखा तू विषाद न कर, मैं अभी जनस्थान जाता हूं। उस पुरुष का हृत्खंड तुझे खाने को और गर्म रक्त पीने को दूंगा, चिन्ता न कर!"

इसपर अकम्पन ने बद्धांजलि होकर कहा—

"रक्षेन्द्र प्रसन्न हों। आज्ञा पाऊं तो निवेदन करूं। उस बहिष्कृत राजकुमार के साथ जो स्त्री है, वह विश्व की अनिन्द्य सुन्दरी है। अभी उसने यौवन की देहरी में पैर ही रखा है। उसके सब अंग-प्रत्यंग सुघड़ और सलोने हैं। वह संसार की सब स्त्रियों में अमूल्य रत्न है। सो मुझ दास का तो निवेदन है कि आप छल-बल से उस रमणीय रमणी को हरण कर लाइए। इससे बहिन सूर्पनखा का बदला भी चुक जाएगा और वह हतभाग्य तपस्वी मानव-कुमार उसके वियोग में रो-रोकर आप ही मर-खप जाएगा।"

मंत्री अकम्पन की यह युक्ति रावण को जंच गई। उसने संतुष्ट होकर कहा—"ऐसा ही होगा। मेरा रथ तैयार करो। प्रभात होते ही मैं जनस्थान को जाऊंगा।"

२६

धनुष्कोटि के निकट, समुद्र-तीर से कुछ हटकर एक रमणीय वन था। वन में एक निर्मल सरोवर था। सरोवर के तट पर एक विराट्

सुभद्र वट था। वट के चारों ओर रम्य पर्वत-श्रेणियां थीं। सम्मुख ही नील नीरधि का अनन्त विस्तार था। जिस भूमि-भाग पर यह मनोरम सरोवर और महावट था, वह बहुत दूर तक समुद्र में धंसा हुआ था। निकट ही पुर एवं नगर था। नगर बड़ा सम्पन्न था। उसके नागरिक हाथियों, घोड़ों, रथों आदि पर सवार हो अपने कामों से राजपथ पर आ-जा रहे थे। सब मिलाकर इस स्थान की शोभा अतुलनीय थी।

सुभद्र वट की प्रतिष्ठा तो बहुत पुरानी थी ही, परन्तु इस समय यहां एक परम ज्ञानी और वीतराग तपस्वी तप कर रहा था। वह सब एषणाओं से रहित, एकान्तवासी हो मूक-मौन सर्वभूत-दयारत निरीह भाव से रहता था। वह बूढ़ा और तेजस्वी था। दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी और लोग उसे राजर्षि की भांति सुपूजित मानते थे। प्रसिद्ध था कि वह कोई भारी राजा था। वास्तव में वह वृद्ध तपस्वी और कोई नहीं, राक्षस मारीच था।

अकस्मात् रावण ने इस शान्त आश्रम में प्रवेश किया।

मारीच ने अपने साथी तपस्वी राक्षसों और वेदपाठी दैत्यों, नाग-कुमारों के साथ रावण की भारी अभ्यर्थना की। और पूछा—"हे राक्षसराज, लंका में कुशल तो है! यहां किस अभिप्राय से आना हुआ? क्या मुझ अकिंचन दास से कुछ प्रयोजन आ उपस्थित हुआ? वह सब विस्तार से कहिए।"

रावण ने चतुराई से मारीच की प्रशंसा करते हुए कहा—"तात मारीच, मैं तुमसे क्या कहूं! मैं इस समय अत्यन्त दुःखी हूं।" और उसने आदि से अंत तक तमाम कथा सुनाकर कहा—'इस-लिए मैं भी बदला लेने के विचार से उसकी देवबाला-सी सुरूपा-सुलक्षणा स्त्री को चुपचाप चुरा ले जाने का मनोरथ करके निकला हूं। अब तुम इस काम में मेरी सहायता करो। मैंने एक उत्तम योजना बनाई है कि तुम स्वर्ण-मृग का रूप धारण कर उस हतभाग्य तपस्वी की स्त्री की दृष्टि में आओ। वह जरूर ही अपने पति से मृग को पकड़ लाने को कहेगी। बस, दोनों भाई मृग का पीछा करेंगे। उन्हें तुम भटकाकर जरा दूर ले जाना। इसी बीच मैं अवसर पाकर उस स्त्री को चुराकर चल दूंगा। फिर तो दाशरथि राम उसके वियोग में दुःखी होकर दुर्बल हो जाएगा। तब मैं सहज ही में उसे मार डालूंगा।"

रावण की इन बातों को सुनकर वृद्ध मारीच भयभीत हो रावण के मुख की ओर ताकने लगा। उसका कण्ठ सूख गया, उसके मुख से

बात न निकली। फिर उसने नम्रतापूर्वक रावण से कहा—"हे रक्षेन्द्र अभी आपने उस राम को पहचाना नहीं है, तभी आप ऐसा कहते हैं। निश्चय जानिए कि यदि आपने ऐसा किया, तो आपकी लंकापुरी, जो स्वर्ण, धन और वैभव में अमरावती से बढ़-चढ़कर है, मिट्टी में मिल जाएगी। मो राजन्, मैं आपके हित की बात कहता हूं कि आप आग को पल्ले में मत बांधिए। चुपचाप लंका लौटकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कीजिए!"

मारीच के ये वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे राक्षसकुल-कलंक, कायर, तु मुझे उस पतित एकाकी बहिष्कृत राम दाशरथि से भयभीत करता है? अवश्य उसकी स्त्री का हरण करूंगा। मैंने तुझसे सम्मति नहीं मांगी—अब तू मेरा सचिव नहीं है। अरे, मैं तुझसे अपने कर्तव्य के गुण-दोष नहीं पूछता, केवल सहायता चाहता हूं। यदि तू मेरी आज्ञा का पालन न करेगा तो मैं अवश्य ही तेरा वध करूंगा।"

रावण के ये क्रोधपूर्ण वचन सुनकर मारीच ने कहा—"मैं बूढ़ा हुआ और अब तपस्वी का जीवन व्यतीत करता हूं। इन प्रपंचों से भला मेरा क्या सम्बन्ध है! खेद है कि आपके मंत्री आपको अच्छी सीख नहीं देते और आपकी बुद्धि भी मोह ने कुंठित कर दी है। इस काम में मेरी तो निश्चय ही मृत्यु है, परन्तु आप यदि सीता का हरण करने में सफल भी हो गए तो न आप बचेंगे, न आपकी लंका। आपकी सारी ही श्री-सम्पदा चली जाएगी। आपकी स्थापित रक्ष-संस्कृति की भी समाप्ति हो जाएगी। परन्तु अब इन बातों से क्या? आप यह घोर कर्म करने पर तुले ही बैठे हैं तो चलिए, मेरे द्वारा आपका कोई प्रिय कार्य हो तो मैं प्राण देकर भी करूंगा।"

मारीच के ये वचन सुनकर रावण प्रसन्न हो गया।

२७

आर्यावर्त में इस समय सूर्य वंश की पांच शाखाएं स्थापित थीं। एक—उत्तर कोशल राज्यवंश, दूसरा—दक्षिण कोशल राज्यवंश, तीसरा—शर्यात आनर्त राज्यवंश, चौथा—मैथिल राज्यवंश और पांचवां—वैशाली राज्यवंश। उत्तरकोशल राज्यवंश की ३९वीं पीढ़ी में राम का जन्म हुआ।

इस वंश में अब तक मनु, इक्ष्वाकु, युवनाश्व, बृहदश्व, मान्धाता,

त्रसदस्यु, अम्बरीष, दिलीप, रघु और दशरथ विश्रुत पुरुष हो चुके थे। इस समय उत्तरकोशल राज्य के उत्तराधिकारी राम वनवास कर रहे थे। दशरथ की मृत्यु हो चुकी थी।

दशरथ महारथी योद्धा और प्रतिष्ठित राजा थे। देवराज इन्द्रसे उनके मैत्री-सम्बन्ध थे। वे नीतिवान् और सत्यप्रतिज्ञ थे। उनकी तीन महिषियां थीं—प्रथम कौशल्या—दक्षिण कोशलाधिपति भानुमान् की पुत्री, द्वितीय सुमित्रा—मगधराज पुत्री, तृतीय कैकेयी—उत्तर पश्चिमी आनवनरेश केकय की पुत्री। दशरथ ने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोशल, मगध, अंग, वंग, कलिंग और द्रविड़-नरेशों को जय किया था तथा अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में उत्तर पांचाल दिवोदास की सहायता की थी तथा वैजयन्ती के कुलीतर के वंशधर तिमिध्वज शम्बर असुर को मारा था। अंग-नरेश लोमपाद इनके मित्र थे।

दशरथ को वृद्धावस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई, वार्धक्य में चार पुत्र हुए। दशरथ की तीनों पत्नियों में बड़ी कौशल्या तो कोशल-वंश की ही कन्या थी। वह दक्षिण कोशलाधिपति भानुमान् की पुत्री थी। इसलिए यह वंश आर्य भी था, मानव भी था, सूर्यवंश भी था। इसके सब आचार-विचार अनुकूल थे। दूसरी मगध के राजा की पुत्री थी, जो कदाचित् दशरथ का करद राजा था। परन्तु कैकेयी की बात इन सबसे पृथक् थी। वह उत्तर-पश्चिमी आनवनरेश की लड़की थी।

परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण और कठिनाई की एक बात थी। जब वृद्धावस्था होने पर भी दोनों रानियों से दशरथ के कोई सन्तान नहीं हुई, तब उन्होंने केकय राजा की पुत्री मांगी। केकय राजा ने इस शर्त पर पुत्री देना स्वीकार किया कि दशरथ से उत्पन्न कैकेयी का पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होगा। दशरथ ने उस समय केकय महाराज की बात स्वीकार कर ली। कुछ इस विचार से भी कि पूर्व पत्नियों से सन्तान न होने ही से यह विवाह किया जा रहा है। इसलिए यह तो होगा ही कि उसीका पुत्र उत्तराधिकारी होगा। कुछ कैकेयी का रूप वैभव, उसके पिता का वरिष्ठ कुल भी काम कर गया। दशरथ ऐसी ही प्रतिज्ञा करके कैकेयी को व्याह लाए।

परन्तु दैव-प्रभाव से जब सन्तान हुई तो तीनों रानियों को हुई और ज्येष्ठ राम थे—जो ज्येष्ठा रानी के पेट से पैदा हुए थे। बड़े होने पर राम रूप-गुण-शील और शौर्य में भी सब भाइयों में श्रेष्ठ रहे। धीरे-धीरे दशरथ का सबसे अधिक मोह राम पर ही रहा और अब

दशरथ को कैकेयी से की हुई वह प्रतिज्ञा खलने लगी। वह मन ही मन राम ही को राज्य का उत्तराधिकार देने की बात सोचने लगे। राम के ऊपर विशेष प्रीति तो इसका कारण थी ही— और भी बातें थीं। राजा बाहरी वंश की लड़की के लड़के को कोशल का राज्य नहीं देना चाहते थे।

जब जनकपुर में धनुष-यज्ञ के बाद चारों भाइयों के विवाह सम्पन्न हो गए, तब ताड़कावध, धनुर्भंग और भार्गव परशुराम के पराभव के वृत्तान्त ने राम के महत्त्व और गौरव को बहुत बढ़ा दिया। अब दशरथ ने यह दृढ़ धारणा बना ली कि जैसे बने, राम को उत्तराधिकार दिया जाए। विवाह के कुछ दिन बाद राम सीता-सहित अपनी ससुराल जनकपुर चले आए और कई वर्ष वहीं रहे। इसके बाद जब राम अयोध्या लौटे तो भरत के मामा युधाजित् भरत, शत्रुघ्न और उनकी वधुओं को लेकर उनकी ननिहाल केकय ले गए तथा वे बहुत दिन तक वहीं रहे। यही अवसर दशरथ ने अपनी मनोकामना पूरी करने को ठीक समझा। उन्होंने सब अधीन राजाओं, रईसों, छत्रधारी नरपतियों को अयोध्या में निमन्त्रित किया। अनेक ऋषिगणों को बुलाया, केवल भरत के मामा-नाना को यह खबर नहीं भेजी। न जनक ही को सूचना दी। जब राजा और राजवर्गी पुरुष—ऋषि और विद्वान् एकत्र हो गए तो दशरथ ने उनके समक्ष अपना प्रस्ताव रखा।

दशरथ ने अपना प्रस्ताव बड़ी युक्ति और गंभीरता से उपस्थित किया था। राम के श्रेष्ठ गुणों का बखान करने के साथ ही उनके ज्येष्ठ होने की ओर भी संकेत किया था। फिर इस सम्बन्ध में वशिष्ठ, वामदेव और विश्वामित्र जैसों की स्वीकृति तथा संकेत था। इस कारण सभी राजाओं ने रामराज्याभिषेक का सोल्लास समर्थन किया। निस्सन्देह राम के विरोध का कोई कारण भी न था। दशरथ की प्रतिज्ञा सब पर विदित न थी। अब सुमन्त्र के द्वारा राम को बुलाकर महाराज दशरथ ने कहा—"रामचन्द्र, तुम मेरे तथा अपनी माता के प्रिय हो, समस्त प्रजा के प्राणाधार हो। कल पुष्य नक्षत्र में मैं तुम्हें युवराज्य-विभूषित करना चाहता हूं। सभी राजा-राजवर्गी इसमें सहमत हैं। मैं तुम्हें तुम्हारे हित की सीख देता हूं। तुम सदैव जितेन्द्रिय रहना, बुरे व्यसनों से दूर रहना, समुचित रीति से प्रजा का न्याय करना, सेना को संतुष्ट रखना, कोष में सदैव स्वर्ण-रत्न भरपूर रखना, अपने कर्मचारियों, भृत्यों, दासों, सेवकों और दासियों को सुखी रखना।"

इतना कहकर राजा प्रेमाश्रु बहाने लगे। फिर पुत्र को छाती से लगाकर बोले—"आज रात तुम और वधू सीता उपवास करो तथा शय्या पर कुश बिछाकर शयन करो। रक्षकगण पूर्णतः सतर्क और सचेत रहें तथा सुमंत्र रात-भर जागकर स्वयं तुम्हारी रक्षा करें। मैं जानता हूं, शुभ कार्यों में बहुत विघ्न आते रहते हैं। तुम्हारे भाई ननिहाल गए हैं। मेरी इच्छा है कि उनके आने से पूर्व ही तुम्हें युवराज बना दूं। यद्यपि भरत तुम्हारा अनुयायी है, फिर भी मनुष्य स्वभाव चंचल है।'

पिता की यह सीख सिर धार, राम उनके चरणों में सिर झुका अपने आवास को चल दिए।

देखते ही देखते यह समाचार अयोध्या में व्याप गया। यह सूचना पा विकलांगी दासी मन्थरा क्रोध से थर-थर कांपने लगी। वह कैकेयी के पित्रालय की पुरानी दासी थी। कैकेयी को उसने गोद खिलाया था, दूध पिलाया था। वह कैकेयी के शयनागार में पहुंची। रानी कैकेयी अभी सो ही रही थी। वहां जाकर उसने रानी से कहा—"अरी रानी! क्या आज तेरी निंद्रा भंग न होगी? क्या तू नहीं जानती कि तेरा भविष्य आज अन्धकार में डूब रहा है? तू धोखा खाएगी।"

मंथरा की ऐसी कटु व्यंग्योक्ति सुनकर रानी कैकेयी हंस दी। उसने हंसकर कहा—"अम्ब, आज क्या बात है, भोर ही में तू बक-झक कर रही है?"

कैकेयी की ऐसी मीठी वाणी सुनकर उसने कहा—"अमंगल और कैसा होता है भला! आज राम को यौवराज्य-अभिषेक हो रहा है और तू बेखबर सो रही है। तू समझती है, राजा तुझे बहुत प्यार करता है, पर आज तो वह कौशल्या को राज्यलक्ष्मी प्रदान कर रहा है। अब समझी मैं, इसलिए उसने भरत को ननिहाल भेज दिया था। सोच तो, यदि राम राजा बन गया तो तेरा क्या हाल होगा? हाय-हाय, मैं तो इसी सोच में मरी जाती हूं। पर तू भी तो कुछ अपना बुरा-भला सोच, अपने पुत्र के हित के लिए अब भी सचेत हो—समय रहते सचेत हो!"

उसने बूढ़ी धाय मंथरा के ऐसे वचन सुन नर्मी से कहा—"धातृमात तू स्नेह से ऐसा कहती है। परन्तु राम तो यौवराज्य के सर्वथा योग्य है। वह धर्मात्मा है, उदार, सत्यवादी और प्रजापालक है। वह तो मुझे ही अपनी माता समझता है, फिर भला भरत और राम में क्य

अन्तर है ?"

रानी के ये वचन सुनकर मन्थरा ने कहा—"ठीक ही है। अभी तू नहीं समझेगी। पर जब राम का पुत्र गद्दी का अधिकारी होगा और भरत और उसके पुत्रों को कोई स्थान न मिलेगा तब तक सब कुछ तेरी समझ में आ जाएगा।"

मन्थरा के इस विष-वमन से कैकेयी का मन फट गया। धीरे-धीरे उसे उसकी सभी बातें ठीक प्रतीत होने लगीं। उसने धीरे से कहा—"तो अम्ब, तू क्या कहती है कि भरत का हित किस बात में है ? मैं क्या करूं ?"

"बस, राम वन को जाए और भरत सिंहासन पर बैठे, यही तू कर। इसीमें तेरा और भरत तथा उसकी संतान का हित है। राजा ने यही वचन देकर तुझे ब्याहा था कि तेरा पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। सो यदि राजा को अपने वचन की चिन्ता नहीं है, तो तेरा भाई आनवनरेश युधाजित् खडगहस्त है। राजा अपने को सत्यप्रतिज्ञ समझता है। वचन-भंग का लांछन सहन नहीं करेगा। यदि करेगा तो उसके सिर पर युधाजित का खड़ग है ही।

सुन्दरी रानी कैकेयी ने यही किया। मलिन वस्त्र पहन, बाल बिखेर, निराभरण हो, कोप-भवन में जाकर भूमि पर लेट गई।

राजा दशरथ प्रसन्न थे। क्षण-क्षण पर वे आदेश दे रहे थे। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि ऋषि अभिषेक-सामग्री जुटा रहे थे। राज-प्रासाद की पौर पर दुन्दुभि बज रही थी। रनवास में अन्न-वस्त्र, धन-रत्न दान किया जा रहा था। तभी राजा को संदेश मिला कि छोटी रानी कोप-भवन में चली गई हैं।

राजा ने वहां जा कोप-भवन में पड़ी रानी को देखा और दुःखी होकर कहा—"प्रिये, किसने तेरा अहित किया, तुझे क्या दुःख है ? क्या मैं तेरा कुछ प्रिय कर तुझे प्रसन्न कर सकता हूं ? तूने यह अपनी ऐसी दुर्दशा क्यों कर रखी है ? कह, मैं तुझे प्रसन्न करने के लिए क्या करूं ?" इतना कह राजा उंगलियों से उसके केशपाश सहलाने लगा।

तब रानी कैकेयी ने कहा—"देव, मुझे किसीने न क्रोधित किया है, न अपमानित। मैं आपसे केवल अपना प्राप्तव्य मांगना चाहती हूं। मेरे हृदय में कुछ मनोरथ है, संकल्प है। मेरी कुछ अभिलाषा है, मैं चाहती हूं, आप वचन दें—प्रतिज्ञा करें। मैं तभी अपना मनोरथ आपसे कहूं।"

रानी के ये वचन सुन राजा ने हंसकर उसके बाल सहलाते हुए कहा—"तू तो जानती ही है कि तू मुझे कितनी प्रिय है। राम के बाद यदि कोई मेरा प्रिय हो सकता है तो वह तू ही है, अतः मैं राम की शपथ खाकर कहता हूं कि तू अपना मनोरथ कह, मैं अवश्य पूर्ण करूंगा। रघुवंशी कभी अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टलते हैं, सो तू जान।"

कैकेयी राजा के वचन सुनकर बोली—"आप प्रतापी इक्ष्वाकु वंश के शिरोमणि नरपति हैं और आपका वचन अभंग है। ऐसा ही आपने कहा है, तो मैं आपको स्मरण दिलाती हूं कि आपने मेरे साथ यह शर्त करके विवाह किया था कि मेरा ही पुत्र आपकी गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त देवासुर-संग्राम में आपने मुझे जो वचन दिए थे, वे भी आपके पास धरोहर हैं। अतः अब इस प्रकार आप अपने वचन से उऋण हो जाएं कि मेरा पुत्र भरत राजा हो और राम आज ही वन जाएं और वहां चौदह वर्ष वनवासियों का जीवन व्यतीत करें।"

राजा दशरथ कैकेयी के ये वचन सुनते ही मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गए। चेतना आने पर धिक्कार-धिक्कार उच्चारण करते हुए फिर मूर्च्छित हो गए। परन्तु चैतन्य होकर फिर बोले—'अरी कुलनाशिनी, तूने यह क्या किया? तू मेरे मनोरथ को फूलते-फलते देख उसे समूल नष्ट कर रही है। अरी, राम ने तो अपनी मात से भी अधिक सदा तेरी सेवा की है। मैंने तेरे वचन पर विश्वास किया, यह मेरा ही दोष है। देख, मैं दीन की भांति तेरे चरणों पर गिरकर तुझसे भीख मांगता हूं कि तू इस भयानक निश्चय को बदल दे।"

राजा की ऐसी कातरोक्ति सुनकर रानी ने प्रचण्ड क्रोध करके कहा—"महाराज, आपको यदि वचन देकर उसका पालन करने में दुःख होता है, तो जाने दीजिए। पर अब तुम पृथ्वी पर धर्मात्मा और सत्यवादी नहीं कहलाओगे। अब तुम्हीं सोच लो कि कैसे इस लज्जा के भार को सहन करोगे? मैं विषपान कर प्राण दे दूंगी और मेरा समर्थ भाई तुमसे मेरा भरपूर शुल्क लेगा। मैं भरत की शपथ खाकर कहती हूं कि मैं किसी भांति और दूसरे उपाय से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। सो तुम समझ लो।"

२८

अन्ततः पूर्वदत्त वचनों के बल पर कैकेयी ने चौदह वर्ष के लिए राम-वनवास और भरत के लिए राज्य-भोग लिया। राम को वन जाना पड़ा। सीता और लक्ष्मण प्रेम-वश उनके साथ गए। दुःख, क्षोभ और ग्लानि से दशरथ ने प्राण त्यागा। भरत ने राम को लौटाने के बहुत प्रयत्न किए, पर सफल न हुए। तब वे राम के प्रतिनिधि-रूप हो राज्य करने लगे। राम दस मास चित्रकूट में रहकर दण्डकारण्य चले गए तथा वहां बारह वर्ष पंचवटी में रहे।

दण्डकारण्य में रहते हुए राम को सर्वप्रथम विराध राक्षस का विकट साम्मुख्य करना पड़ा। ऋषियों ने उन्हें इस तेजस्वी राक्षस से सावधान कर दिया था। यह विराध पहले गन्धर्व था और इसका नाम तुम्बुरु था। यह लंका में कुबेर का कोई सेनानायक था। बाद में कुबेर से बिगड़कर यह रावण के प्रभाव में आ राक्षस हो गया था एक बार वन में मृगया करते हुए अचानक ही राम की भेंट इस राक्षस से हो गई। यह राक्षस उस समय व्याघ्रचर्म कमर में लपेट अपना आखेट कर एक शूल में व्याघ्र, हरिण और सिंह का सिर लटकाए लौट रहा था। उसके आतंक और गर्जन से वन आतंकित हो रहा था। ज्योंही उसने राम, सीता और लक्ष्मण को सम्मुख आते देखा तो सहसा रुककर कहा—"अरे, तुम कौन नवागन्तुक यहां दण्डक वन में निर्भय घूम रहे हो? तुम्हें तो मैं यहां प्रथम बार ही देख रहा हूं। यह क्या बात है—तुम्हारे सिर पर तो तपस्वियों के समान जटाजूट है, पर कन्धे पर धनुष और साथ में स्त्री क्यों है? स्त्री-सहित तपस्वियों का इस प्रकार घूमना बड़े कलंक की बात है। मुझे तो तुम लोग कोई कपटी तपस्वी प्रतीत होते हो। मैं विराध राक्षस हूं और तुम जैसे पाखण्डी तपस्वियों का आखेट करना ही मेरा कार्य है। आज मैं तुम दोनों पापिष्ठों का रक्तपान करूंगा और यह सुन्दरी मेरी स्त्री बनेगी।"

यह कहकर उसने लपककर सीता को अपनी बगल में दबोच लिया और अपना शूल हवा में घुमाता तथा चीत्कार करता हुआ वन की ओर चल दिया। सीता उसके अंक में जाते ही भय से मूर्च्छित हो गई। यह देख राम एकदम व्याकुल और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए।

लक्ष्मण ने वीर-दर्प से कहा—"आर्य, कातर न हों, मैं अभी इस दुरात्मा को मार गिराता हूं।" इतना कह उन्होंने तीखे बाणों से विराध पर निरन्तर प्रहार करने आरम्भ किए। लक्ष्मण के बाणों से

विद्ध हो वेदना से व्याकुल वह राक्षस क्रोध से सीता को भूमि पर पटक लक्ष्मण की ओर झपटा। इसपर राम ने बाणों की वर्षा करके उसका अंग छलनी कर दिया। तब वह अपना तेजोमय शूल लेकर इन दोनों भाइयों पर टूट पड़ा और दोनों भाइयों को कमर से पकड़कर कांख में दबा चल दिया। उधर लक्ष्मण ने उसकी बाईं भुजा उखाड़ ली। भुजा टूटते ही लक्ष्मण उसकी पकड़ से छूट गए और तलवार से उसपर वार करने लगे। इसी समय अवसर पाकर राम ने भी अपना छुटकारा कर उसे गढ़े में धकेल दिया तथा उसके कण्ठ पर पैर रखकर खड़े हो गए। लक्ष्मण जल्दी-जल्दी गढ़े को पत्थर और मिट्टी से भरने लगे और उन्होंने उस दुर्दान्त राक्षस को जीवित ही धरती में गाड़ दिया।

इस स्थान के निकट ही शरभंग ऋषि का उपनिवेश था। आवाज़ सुनकर शरभंग ऋषि बहुत-से तपस्वियों को लेकर आ गए तथा राम-सीता को अपने आश्रम मे ले गए।

इसी वन में एक और तेजस्वी ऋषि सुतीक्ष्ण रहते थे। उनका आश्रम मन्दाकिनी नदी के तट पर था। सुतीक्ष्ण का आश्रम बहुत बड़ा था। वे बड़े प्रभावशाली थे। वहां से वे राम को अपने आश्रम में ले गए। राम को उनसे बहुत सहायता मिली। उन्होंने उन्हें कुछ अच्छे शस्त्र भी दिए तथा पंचवटी में आश्रम बनाकर रहने की सम्मति दी और वहीं सब तपस्वियों-ऋषियों ने मिलकर दण्डकारण्य से राक्षसों के उन्मूलन की योजना बनाई।

इस प्रकार राम कभी इस ऋषि के आश्रम में कुछ दिन रहते—कभी उस ऋषि के आश्रम में। कभी पचवटी में अपने आश्रम में आ रहते। इस तरह रहते हुए उन्हें दस वर्ष व्यतीत हो गए। इसी समय सूर्पनखा से उनकी भेंट हुई और खर-दूषण से विग्रह हुआ। अगस्त्य के कारण राक्षस बहुत कुछ दबे हुए रहते थे तथा अवसर पाकर अगस्त्य उनपर आक्रमण करते ही रहते थे। अगस्त्य का राक्षसों पर आतंक भी बहुत था। अगस्त्य का आश्रम एक अच्छा-खासा सैनिक-सन्निवेश था। बहुत देव, गन्धर्व, ऋषि अगस्त्य की सेवा में उनके उपनिवेश में रहते, उनकी पूजा करते और उनकी आज्ञा मानते थे। राम के आने से उन्हें अपूर्व बल मिला। अब, जब सूर्पनखा से उनका विग्रह हुआ और खर-दूषण से युद्ध हुआ तो अगस्त्य और सुतीक्ष्ण ऋषि के नेतृत्व में जन-स्थान के सभी ऋषियों ने राम की सहायता के लिए युद्ध किया था। राम ने उनकी सहायता ही से जनस्थान को राक्षसों से रहित कर दिया था। उन्हींके भय से रावण ने राम पर आक्रमण करने का साहस

नहीं किया—चोर की भांति सीता को हर ले जाने की योजना बनाई।

वास्तव में सभी ऋषिगण सशस्त्र रहते तथा युद्ध में धीरतापूर्वक लड़ते थे। आत्म-रक्षा में समर्थ हुए बिना जनस्थान तथा दण्डकारण्य में वे रह भी नहीं सकते थे। उनके उपनिवेश भी एक प्रकार के छोटे-से जनपद ही थे जहां प्रमुख ऋषि का शासन राजा ही की भांति माना जाता था और उन्हें कुलपति समझा जाता था।

पंचवटी के निकट विनता के पुत्र—गरुड़ के भाई—जटायु का छोटा-सा उपनिवेश था। जटायु दशरथ के मित्र थे। जब उन्होंने सुना कि राम दशरथ के पुत्र हैं तो उन्हें राम से बड़ा स्नेह हुआ और उन्होंने उनकी बहुत सेवा-सहायता की। सीता ने अपने श्रम-सीकर से सींचकर इस आश्रम को अत्यन्त मृदु-मनोहर बनाया था। राम-लक्ष्मण गोदावरी में स्नान करते, मृगया-आखेट करते—तापस जनों, ऋषियों एवं जनस्थल निवासियों की सब भांति सहायता करते—सबके साथ कौटुम्बिक की भांति रह रहे थे। सभी उन्हें उच्चकुलीन, धीर-वीर, सज्जन और हितैषी मानकर उनका आदर-सत्कार करते थे। सीता पत्र-पुष्प, फल-मूल से आगत-समागत सभी जनों का सत्कार और अभ्यर्थना करती—तपस्वियों की स्त्रियों के साथ हिल-मिलकर रहती थी। सीता बड़ी भावुक, कोमल और मृदुल स्वभाव की स्त्री थी। सभी तापसियां उससे प्रसन्न और संतुष्ट रहती थीं।

सीता आश्रम के पौधों में जल सींच रही थी।

इसी समय किसीने बाहर से पुकारा—"अहमतिथिः। कोऽत्र भोः!"

राम ने सुनकर कहा—"स्वागतमतिथये!"

उन्होंने द्वार पर जाकर देखा—एक तपस्वी मृगचर्म धारण किए दण्ड हाथ में लिए खड़ा है। दृष्टि उसकी सतेज है, सिर पर जटाजूट है।

राम ने कहा—"अये भगवन्! अभिवादये।"

"स्वस्ति। मेरा काश्यप गोत्र है। मैंने सांगोपांग वेद पढ़ा है। मैं धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और योगशास्त्र का भी ज्ञाता हूं।"

"भगवन्, यह आसन है, बैठिए।"

अतिथि के बैठने पर राम ने कहा—"मैथिलि, पाद्य लाओ, अर्घ्य लाओ, अतिथि का सत्कार करो।"

रावण ने बैठते हुए कहा—"सत्कृतोऽस्मि। पूजितोऽस्मि। अहा, हिमालय के सप्तम शृंग पर जो काचन-पार्श्व मृग मैंने देखा,

उसकी शोभा अकथनीय थी।"

"क्या वैसे मृग अन्यत्र नहीं होते ?"—सीता ने उत्सुकता से पूछा।

"वहीं हैं। वे मन्दाकिनी का गंगाजल पान करते हैं, वैदूर्य-मणि-सा श्याम उनका पृष्ठ है, पवन के समान वेग है। वे नीलग्रीव, रक्त-शीर्ष, कृष्णपाद और श्वेतच्छद-स्वरूप हैं।"

सीता ने चमत्कृत होकर कहा—"भाग्यवन्त हिमशैल-पार्श्ववर्ती देव ही उस रम्य हरिण को देख सकते हैं। आर्यपुत्र, क्यों न हम लोग भी चलकर वहीं रहें।"

राम ने हंसकर कहा—"प्रिये, तूने यहां जिन मृग-शावकों तथा गुल्मों को अपना पुत्र बनाया है और जिन लताओं को तू सखी के समान प्यार करती है, उनसे पूछ ले।"

रावण बोला—"अहा, हिमवन्त शैल के उस अंचल में जो ज्योतिरंतारण्य है, वह तो वहां कभी रात्रि का भान ही नहीं होने देता।"

"क्या भगवान् वहीं हिम शैल-शिखर पर रहते हैं ?"

"नहीं तो क्या ? किन्तु अरे, यह क्या चमत्कार है ! यह विद्युत् की सी चमक कैसी हुई। अरे ! वह देखो—कांचन-पार्श्व मृग है !"

"क्या सचमुच ?"

"देखो-देखो, वह भागा, यह मुड़ा !"

"सचमुच ! सचमुच ! प्रिये, लक्ष्मण से कह—उसे पकड़े।"

"सौमित्र तो तीर्थयात्रा से लौटे हुए कुलपति की अभ्यर्थना करने आपकी आज्ञा से गए हैं।"

"तो मैं ही जाता हूं—मेरा धनुष ला—बाण दे।"

"आर्यपुत्र, मैं क्या करूं ?"

"इन महात्मा का सत्कार कर !"

इतना कह राम धनुष पर बाण का सन्धान कर उस कांचनमृग के पीछे दौड़ पड़े। उन्हें दृष्टि से ओझल हुआ देख सीता ने कहा—"अरे, बिना आर्यपुत्र के यहां अकेली को तो मुझे बड़ा भय लगने लगा, मैं तो कुटी में जाकर बैठती हूं।"

उसे उठकर जाते देख रावण ने कठोर स्वर से कहा—"सीते, ठहर ! ठहर !"

"अरे तुम कौन हो ?"

"सुन्दरी, तेरी कान्ति स्वर्ण के समान है, यह पीताम्बर तेरे स्वर्ण-गात पर खूब खिल रहा है। तू नारी है, स्त्री है, कान्ति है, कीर्ति है, अप्सरा है अथवा स्वच्छन्द-विहारिणी रति है। अरी, तुझे तो मणि-

प्रासादों में, पुष्पों से सुरभित वाटिकाओं में, समृद्ध नगरों में रहना चाहिए। तू यहां हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण वन मे कहां आ फंसी है ?"

छद्मवेशी अतिथि से ऐसे अश्रुत वचन सुन भयभीत होकर सीता ने कहा—"यह तो अतिथियों का सदाचार नहीं है। तुम कोई छद्म-वेशी, दुराचारी, तस्कर तो नहीं हो ?"

"अरी क्या तू नहीं जानती ? जिसने देवराट्-सहित सब देव, यम, कुबेर और पृथ्वी के नृपतियों को जय करके त्रिविक्रम पद प्राप्त किया है, जिसके भय से सब देव, दैत्य, असुर, नाग थर-थर कांपते हैं, मैं वही जगज्जयी रक्षेन्द्र रावण हूं, जिसकी बहिन सूर्पनखा का तेरे इस वनवासी पति ने अंग-भंग किया है तथा जिसके चौदह सहस्र भटों को मार डाला है।"

"क्या रावण ?"

"हूं, अब तू मेरे हाथ से बचकर कहां जाती है ?"

वह उसे पकड़ने को आगे बढ़ा। सीता ने चीत्कार करके कहा—"आर्यपुत्र, रक्षा करो ! सौमित्र रक्षा करो !"

"अरी सुन, अब तू उस बहिष्कृत राजभ्रष्ट भिखारी राम का ध्यान छोड़ और मुझीको आर्यपुत्र समझ। मैं तुझे अपनी रानियों में सर्वोपरि स्थान दूंगा। मेरी स्वर्ण-लंका में—जो समुद्र के मध्य में बसी है तथा जिसकी अतुलनीय शोभा त्रिलोकविश्रुत है—चलकर मेरे स्वर्णिम प्रासादों में तू रह। वहां मेरे अन्तःपुर की सैकड़ों दासियां तेरी सेवा करेंगी और तू यथेष्ट सुख-भोग करेगी।

सीता ने यह सुनकर क्रोध से कहा—"अरे पतित, कुटिल, चोर, तेरा सर्वनाश उपस्थित है। जब तक आर्यपुत्र नहीं आते हैं, तू यहां से भाग जा।"

"तो अब तो तुझे लेकर ही जाऊंगा।" इतना कह उसने आगे बढ़कर सीता को बाहुओं में उठा लिया और कुकरी की भांति विलाप करती हुई तथा "आर्यपुत्र, रक्षा करो ! सौमित्र, रक्षा करो !" पुकारती हुई सीता को रथ में डाल रावण भाग चला। चलते-चलते उसने पुकारकर कहा—'अरे, जनस्थान में रहनेवाले तपस्वियो ! सुनो, यह मैं रक्षपति रावण लंका का अधिपति इस दाशरथि राम की भार्या सीता को हरण करता हूं। राम की यदि क्षात्रधर्म में रुचि हो तो इसकी रक्षा करें।"

इतना कहकर उसने वेग से रथ हांक दिया।

इसी समय किसीने वज्र-गर्जना की भांति कहा—

"ठहर रे पापिष्ठ तू पराई स्त्री को चुराकर कहां भाग रहा है ?"

रावण ने देखा—जटायु क्रोध में भरा दौड़ा चला आ रहा है। आकर उसने रावण के रथ की अश्वतरी की वल्गु एक झटके के साथ पकड़ ली। अश्वतरी हठात् रुक गई।

रावण ने क्रोध करके कहा—"तू निश्चय ही मरना चाहता है।"

"मैं अभी तुझे रथ से नीचे पटकता हूं, ले संभल !"

इतना कहकर जटायु ने टांग पकड़ रावण को रथ से नीचे खींच लिया। रथ से नीचे गिरकर क्रोध से लाल होकर रावण धनुष ले जटायु पर बाणों की वर्षा करने लगा। बाणों से घायल होने पर भी जटायु ने साहस नहीं छोड़ा। उसने निहत्था होने पर भी रावण को पकड़कर भूमि पर धर पटका। बहुत देर तक दोनों में घोर युद्ध होता रहा। वीरवर जटायु ने रावण का कवच फाड़ डाला, धनुष टुकड़े-टुकड़े कर दिया, रथ का छत्र भंग कर दिया और लात-घूंसों से रावण को व्याकुल कर दिया। इससे तिलमिलाकर रावण ने बड़े वेग से जटायु को भूमि पर पटक दिया और वीरों को अशोभनीय रीति से खड्ग निकालकर निश्शस्त्र जटायु पर आघात करने लगा। ऐसे करारे आघात खाकर जटायु लहू-लुहान हो भूमि पर गिरकर, छटपटाने और 'हा राम, हा राम' कहने लगा। अपने श्वसुर के मित्र जटायु की यह दुर्दशा देख सीता रथ से कूदकर जटायु से लिपटकर 'हा तात, हा तात' कहकर विलाप करने लगी। उस विलाप करती हुई सीता के बाल पकड़ घसीटता हुआ रावण फिर उसे रथ की ओर ले गया तथा जबरदस्ती रथ पर डाल फिर वहां से भाग चला। सभी ऋषि-कुमार, वटुक, तापसी स्त्रियां भीत-चकित हो 'हा राम ! हा राम !' कहते इधर से उधर दौड़ चले।

सीता के केश बिखर गए। वस्त्र फट गए। उसके जूड़े में लगे फूल झड़-झड़कर पृथ्वी पर बिखर गए। सीता—'हा सौमित्र, हा आर्यपुत्र' कहती जा रही थी। वह अपने अंग के आभूषण उतार-उतारकर पृथ्वी पर फेंकती जाती थी ; जिससे कदाचित् राम उन्हें देख उसके हरण की दिशा को पहचान लें।

इस प्रकार विलाप करती हुई सीता ने जाते-जाते राह में एक पर्वतकूट पर पांच वानरों को बैठे देख अपना पीत उत्तरीय उतारकर

फेंक दिया। उसमें कुछ गहने भी बांध दिए। वे नागर उस विलाप करती हुई सीता को एकटक देखते रहे।

अन्ततः वह दुर्धर्ष रावण सीता को लेकर निर्विघ्न लंका में जा पहुंचा। वह सीता को अन्तःपुर के द्वार के भीतर ले गया। रावण अपना महल सीता को दिखाने लगा। अनेक भवन, तालाब और बारहदरियां दिखाईं। फिर कहा—"हे सीते, मेरे अधीन असंख्य राक्षस हैं। अब मैं और मेरा यह सारा राज-पाट और वैभव तेरे अधीन है। तू मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। मेरे मणिमहल में हज़ारों सुन्दरियां हैं, उन सबके ऊपर मैं तुझे महारानी बनाना चाहता हूं। मैं तेरी आज्ञा के अधीन रहनेवाला रावण तेरा दास हूं।"

सीता ने तब तिनके की ओट करके कहा—"हे रक्षेन्द्र, आपका यह सब कथन और कार्य आपके लिए शोभनीय नहीं है। कैसे आश्चर्य की बात है कि आप प्रजापति के वंश से पुरुष तथा महावीर होकर ऐसा कायरतापूर्ण कुकर्म कर बैठे। मेरे पति रघुकुल-तिलक श्रीराम हैं, वे सत्यप्रतिज्ञ जगत् में विख्यात हैं। आप यदि जनस्थान में उनके सामने पड़ जाते तो अवश्य ही मारे जाते। आप चाहे मेरे इस अवश शरीर को बांधें या नष्ट कर दें, पर मैं आर्यपुत्र दाशरथि को छोड़ किसी अन्य पुरुष को नहीं छू सकती।"

तब रावण ने कहा—"मैथिलि, मैं आज से बारह मास की अवधि तक तेरी स्वीकृति की प्रतीक्षा करूंगा। यदि इतने दिनों में भी तू मुझे स्वीकार न करेगी, तो मैं तेरा वध करके भक्षण करूंगा, यह तू भली-भांति सोच ले।"

इतना कह उसने सीता को अशोक-वन में ले जाकर रहने की व्यवस्था कर दी, जहां उसके लिए सब सुख-साधन उपस्थित कर दिए गए।

२९

लंका के परकोटे के बाहर चार योजन भूमि में अशोक-वन था। इस अशोक-वन में एक लाख अशोक-वृक्ष थे। इस वन में बारहों मास वसन्त रहता था।

अशोक-कानन में एक ऊंची और मनोरम भूमि पर एक सुन्दर विशाल सौध था, जो कैलाश पर्वत के समान सफेद था। उसमें सहस्रों मणिजटित खम्भे लगे थे! इसकी सीढ़ियां मूंगों की और वेदियां स्वर्ण

की बनी थीं। वह स्वच्छ प्रासाद अपनी आभा से देदीप्यमान था। उसकी अट्टालिकाएं गगनचुम्बी थीं। इसी हर्म्य में अपहृता भगवती सीता को लाकर रावण ने रक्खा था। हर्म्य पर पांच सौ सशस्त्र राक्षसियों का पहरा था तथा उतनी ही राक्षसियां सीता की शुश्रूषा के लिए नियत थीं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण अशोक-वन की रखवाली दस सहस्त्र राक्षस सुभट कर रहे थे।

यद्यपि हर्म्य अति विशाल और भव्य तथा सुखोपभोग के सब साधनों से सुसज्जित था, परन्तु पतिवियुक्ता सीता को उस सब साज-शृंगार और सज्जा से कुछ भी प्रयोजन न था। वह हर्म्य का विलास-कक्ष छोड़, उसी विशाल अशोक वृक्ष के नीचे उदास, मलिन वेश में, अधोमुखी भूमि पर एक पर्णशय्या पर बैठी आंसू बहाती हुई शोक-चिन्ता और कातर भाव से विपन्न जीवन के कठिन क्षण व्यतीत कर रही थी।

जब सीता को अशोक-वन में रहते कुछ समय व्यतीत हो गया, तो एक दिन भोर ही में रावण अपने स्त्री-परिकर के साथ अशोक-वन में पहुंचा।

परंतप रक्षेन्द्र को आता देख सीता वायुवेग से कम्पित केले के पत्ते के समान कांपने लगी। उसने अपने अंगों को अपने ही में समेट लिया और अत्यन्त संकुचित हो, भय और शोकातिरेक से अभिभूत हो पृथ्वी पर बैठी रह गई।

रावण ने उसके सम्मुख पहुंचकर कहा—"प्रसीद! प्रसीद! भगवति सीते! इतना शोक न कर, अतीत की चिन्ता से क्या लाभ होगा अब? मैं तेरा अनुगत रक्षपति रावण तेरी प्रसन्नता और अनुकूलता चाहता हूं। पर तू इस तरह अपने अंगों को समेटे क्यों बैठी है? क्या तू अपने को नष्ट कर देना चाहती है? हे जनकनन्दिनी, मैं भी तेरे ही समान वरिष्ठ कुल का हूं। तुझे वैरी की पत्नी जानकर भी मैंने तुझपर बलात्कार नहीं किया। मैं तुझे अपने पर प्रसन्न देखना चाहता हूं। यह यौवन क्षणभंगुर है, इसका उपभोग मेरे साथ कर और जीवन के लोकोत्तर भोग भोग!"

रावण के ऐसे वचन सुनकर सीता ने अपने और रावण के बीच एक तिनके की ओट करके कहा—"महाराज लंकाधिपति, आपकी जय हो। आप त्रिलोकी के स्वामी और सब विद्याओं के भण्डार हैं। आपको ज्ञात है कि मैं वरिष्ठ कुल की कन्या और वधू हूं। उच्च कुल में मेरा जन्म हुआ है और उच्च कुल ही में ब्याही गई हूं। मैं आर्य कुलवधू हूं। फिर भला मैं लोकनिन्दित आचरण कैसे कर सकती हूं?

आप सद्धर्म का विचार कीजिए और सज्जनों के मार्ग का अनुसरण कीजिए। क्या आपको सत्परामर्श देनेवाले सत्पुरुष मंत्री नहीं हैं अथवा आपकी विपरीत बुद्धि ही उनका सत्परामर्श नहीं ग्रहण करती ? कहीं ऐसा न हो कि आपके ही अपराध से यह धनधान्य से परिपूर्ण लंकापुरी नष्ट हो जाए। हे रक्षेन्द्र, जैसे सूर्य से उसकी प्रभा भिन्न नहीं है, उसी प्रकार मैं भी राम से भिन्न नहीं हूं। मैं उन्हींकी भार्या हूं, आपके सर्वथा अयोग्य हूं। आपका श्रेय इसीमें है कि आप मुझे उनके पास पहुंचा दें और उनसे मित्रता-लाभ कर लें—शत्रुता से मित्रता अधिक लाभदायक है।"

सीता के वचन सुनकर रावण ने कहा—"भद्रे सीते, मैंने तेरे साथ कोई अधर्माचरण नहीं किया है। राक्षस धर्म की मर्यादा के अनुसार ही तेरा हरण किया है, क्योंकि तेरा पति मेरा वैरी है। उसने अकारण मेरी बहिन सूर्पनखा का अंग-भंग किया, इससे मैंने उसकी स्त्री का हरण कर लिया। इसमें दोष कहां है ? फिर मैं तो तुझपर अधिक सदय हूं। मैंने तुझसे बलात्कार नहीं किया; तुझसे दासी-कर्म नहीं कराया, तेरा वध भी नहीं किया, न तुझे विक्रय किया; अपितु इस महाहर्म्य में सादर सयत्न रानी की भांति रखा है और स्वयं मैं विजयी रावण तुझसे प्रणययाचना करता हूं। क्या तू यह भी नहीं सोचती ?"

सीता ने कहा—"क्या आपने मेरे पति को युद्ध मे जीतकर मेरा हरण किया है ? आपने तो छल करके, भिक्षुक बनकर, चोर की भांति मुझे चुराया है। आपने पुरुष-सिंह राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में मेरा हरण किया, आपका यह कार्य कितना कलंकित था ? आपका यह कार्य न धर्मसम्मत है, न वीरोचित। फिर मैं तो आपको स्वीकार करती ही नहीं। मेरे यशस्वी पति राज्य-भ्रष्ट नहीं हैं। उन्होंने तो स्वेच्छा से राज्य त्यागा है, अभी भी वे अवध के स्वामी हैं। अभी भी वे सात अक्षौहिणी सेना के अधिनायक हैं। परन्तु इससे भी क्या ? आर्यपुत्र का बल उनकी सेना में नहीं, उनकी भुजाओं में है। दण्डकारण्य में आपकी बहिन ने वह भुजबल देखा है। अब रक्षेन्द्र, यदि आपकी सुमति न जगी तो आप देखेंगे कि शत्रु-संहारी मेरे पति मेरे लिए लंका में अवश्य आएंगे। तब आप भले ही कुबेर की अलका में जाकर छिपें, चाहे और कहीं, कोई भी देव, दैत्य, नाग, यक्ष आपको उनके हाथों से बचा न सकेगा। आपकी निश्चय ही मृत्यु होगी।"

भगवती सीता के ऐसे कठोर वचन सुन रथीन्द्र रावण क्रुद्ध हो गया। उसके नेत्र लाल हो गए, नथुनों से बैल की भांति गर्म निःश्वास

छोड़ते हुए उसने कहा—"भद्रे सीते, तू शत्रु-भार्या है, मेरी हरण की हुई सम्पत्ति है, तूने मेरा ही तिरस्कार किया है। मैंने जो तुझ एक स्त्री को इतना मान दिया, इसपर तूने विचार नहीं किया। इस अपराध में तेरा तुरन्त वध होना चाहिए। परन्तु मैं तुझे एक वर्ष की अवधि देता हूं। इस बीच यदि तू अपना हठ त्याग मेरे अधीन न होगी तो मेरे रसोइए मेरे कलेवे के लिए तेरा वध करेंगे।" इतना कह और लाल-लाल आंखों से सीता को देखता हुआ रावण चला गया।

रावण के संकेत से राक्षसकुमारियों ने सीता को बहुत समझाया, प्रलोभन दिए। सीता ने इसपर नेत्रों में जल भरकर कहा—"सखियो, तुम अनुग्रह करके अभी मेरा भक्षण करके इस दुःख से मेरा परित्राण कर दो। हाय, मैं बड़ी ही अनार्या और असती हूं। मुझे धिक्कार है, जो मैं आर्यपुत्र से पृथक होकर भी अभी तक जीवित हूं!"

सीता के ऐसे पति-प्रेमपगे वचन सुनकर त्रिजटा राक्षसी ने कहा—"यह तो अत्यन्त आश्चर्यजनक और अद्भुत बात मैं देख रही हूं, जो यह स्त्री एक पुरुष पर ऐसा उत्कट मोह और आसक्ति प्रकट कर रही है। ऐसी तो देव, दैत्य, मानुष, आर्य, राक्षस कहीं भी मर्यादा नहीं है। इस मानुषी की मैं अभ्यर्थना करती हूं, वन्दना करती हूं, इसका पुरुषप्रेम धन्य है, श्लाघ्य है।"

३०

मारीच को मारकर जब राम पीछे लौटे तो उनके सम्मुख आ एक सियार ने मुंह उठाकर विकट रोदन किया। इस अपशकुन से आतंकित-आशंकित हो राम जल्दी-जल्दी आश्रम की ओर आने लगे। राह में उन्हें भगवान अगस्त्य के आश्रम से लौटते हुए लक्ष्मण मिले। उन्होंने कहा—"आर्य, आप भगवती सीता को अकेली छोड़ इधर कहां से आ रहे हैं?"

राम ने कहा—"मैं एक राक्षस के माया-जाल में फंस गया था। देखो, वह सियार ऊपर मुंह उठाए कैसा विकट शब्द कर रहा है! जल्दी चलो लक्ष्मण, कहीं अमंगल न हो गया हो।"

दोनों भाई द्रुत गति से लौट चले। आश्रम के निकट आने पर उन्होंने जटायु के आश्रम में बहुत-से तपस्वियों की भीड़ देखी। तपस्वी जनों ने उन्हें सीता-हरण का दारुण संवाद कह सुनाया। राम ने रक्त में सने हुए जटायु को देखा। जटायु ने ऊर्ध्व श्वास लेते हुए और मुख

से रक्त-वमन करते हुए क्षीण स्वर से कहा—"आयुष्मान, तेरी सीता और मेरे प्राणों को एक बलवान तस्कर राक्षस हर ले गया। मैंने शक्ति भर विरोध किया। मैं तो अब उस लोक को चला; रामभद्र, तेरा कल्याण हो!"

इतना कहकर जटायु ने रक्त-वमन कर प्राण त्याग दिए। जटायु के ये मर्मवेधी वचन सुन और जटायु का गतप्राण शरीर देख राम आंसू बहाते हुए जटायु से लिपट गए। लक्ष्मण-सहित वे रो पड़े। वे लक्ष्मण और सब तपस्वियों से कहने लगे—"मैं ऐसा पापी हूं, जिसके कारण कोशल का राज्य नष्ट हुआ, पिता का स्वर्गवास हुआ, सीता का हरण हुआ और अब महाबली गिद्धराज जटायु के भी प्राणों का गाहक मैं ही बना। आज यदि मैं समुद्र में तैरने की चेष्टा करूं, तो समुद्र भी सूख जाएगा। मेरे समान भाग्यहीन पृथ्वी पर और कौन होगा, जिसके कारण मेरे पिता तुल्य आर्य जटायु मृतक होकर भूमि पर पड़े हैं।" इसके बाद वे जटायु के शरीर को अंक में भरकर आर्तनाद-सा करते हुए बारम्बार कहने लगे—"हे तात, मेरी सीता कहां है।" फिर वे दुःख से हतचेत हो भूमि पर गिर पड़े।

कुछ काल बाद उन्होंने चेत में आकर कहा—"हे लक्ष्मण, कैसे संताप की बात है कि आर्य जटायु सीता की रक्षा करते हुए हतप्राण हुए। सज्जनों का संसार में कहीं अभाव नहीं है। मुझे इस समय सीता-हरण का उतना दुःख नहीं, जितना जटायु-मरण का है। जाओ भाई, अब तुम विलम्ब न करो। लकड़ी एकत्र करो, मैं तब तक अग्नि निकालता हूं। मैं विधिपूर्वक बान्धवों की भांति जटायु का दाह-संस्कार करूंगा।"

उन्होंने विधिवत् जटायु का दाह-संस्कार किया। फिर उन्होंने कहा—"हे भगवति गोदावरी, कहो, क्या तुमने सीता को देखा है? क्यों भाई, यह गोदावरी तो कुछ भी जवाब नहीं देती। कहो, अब मैं राजा जनक से मिलने पर, जब वे जानकी का कुशल पूछेंगे, तो क्या जवाब दूंगा? अरे, मेरे साथ राज्यहीन होकर, वन में जंगली फल-मूल खाकर, जो मेरे दुःख के समय मेरे सब दुःखों को हरती थी, वह जनकदुलारी अब कहां चली गई? चलो भाई, मन्दाकिनी-तट, जनस्थान और प्रस्रवण पर्वत पर चलकर खोज करें। कहां ले गया वह राक्षस उसे? ये वन के मृग मेरी ओर आंखें उठाए क्या देख रहे हैं? क्या वे कुछ मुझसे कहना चाहते हैं? क्या वे सीता का कुछ पता जानते हैं?"

लक्ष्मण ने कहा—"आर्य, तात जटायु ने दक्षिण ही की ओर संकेत किया था। हम भी दक्षिण की ओर चलें तो ठीक होगा।"

उन्होंने तब भूमि पर गिरे हुए उन पुष्पों को देखा, जो सीता के केशों से झड़ गए थे। तब राम ने कहा—"लक्ष्मण, इन फूलों को मैं पहचान गया। ये पुष्प आज प्रातः मैंने ही उसे दिए थे। मेरे ही सामने उसने इन्हें चोटी में गूंथा था।"

इसी समय लक्ष्मण ने कुछ घुंघरू पृथ्वी पर से उठाकर कहा—"यह देखिए आर्य, ये घुंघरू टूटे पड़े हैं। ये फूल-मालाएं भी दली-मली पड़ी हैं। इधर-उधर भूमि पर रक्त भी बहुत पड़ा है। कहीं वह दुर्दान्त राक्षस आर्या को खा तो नहीं गया।

राम ने कहा—"हे लक्ष्मण, सीता हरी गई, मारी गई या खा ली गई, जो कुछ भी हो, अब तो राक्षसों से मेरा वैर सौ गुणा बढ़ गया। मैं पृथ्वी से राक्षसों के वंश को ही अब निर्मूल करूंगा।

इस समय तक बहुत-से जनस्थानवासी ऋषि, मुनि, तापस वहां एकत्र हो गए थे। महामुनि अगस्त्य ने जब राम को क्रोध और शोक से इस प्रकार अभिभूत देखा, तो उन्होंने आगे बढ़कर कहा—"रामभद्र, आप तो सदा ही सबकी कल्याण-कामना करते हैं: फिर आप इस समय कैसे क्रोध और शोक से अधीर हो रहे हैं? हम नहीं जानते, वह अपराधी तस्कर कौन है? किसका धनुष टूटा पड़ा है? यहां अधिक पुरुषों के चरण-चिह्न भी नहीं हैं। देव और गन्धर्वों में कौन आपका अहित चाहता है? भगवती सीता अवश्य ही किसी एक पुरुष ने हरण की है। अब आप उसे ढूंढ़िए। भला सोचिए तो, जब आप ही अपने ऊपर आए हुए इस दुःख को धैर्यपूर्वक नहीं सहन करेंगे, तो फिर दूसरे प्राणियों की क्या सामर्थ्य हो सकती है!" इस प्रकार समझा-बुझाकर सब तपस्वियों ने अत्यन्त दुःखित हो राम-लक्ष्मण को विदा किया। बहुत जन दूर तक उसके साथ चले।

इस प्रकार राम-लक्ष्मण दक्षिण दिशा में ऋष्यमूक की ओर चले। मार्ग में वे शबरी के आश्रम पर पहुंचे।

शबरी से कहा—"माता, मैं तेरे आश्रम की महिमा सुन चुका हूं। अब उसे प्रत्यक्ष देखने की अभिलाषा रखता हूं।"

शबरी ने कहा—"हे राम, तुम्हें देखकर और तुम्हारा आतिथ्य करके मैं कृत्यकृत्य हो गई। अब मेरी इच्छा अग्नि-प्रवेश कर अपना शरीर त्यागने की है।" इतना कहकर शबरी ने सब तापसजनों को एकत्र कर अग्न्याधान किया और विधिवत् हवन कर सबके देखते-

देखते अग्नि-प्रवेश किया।

राम-लक्ष्मण ने शबरी की और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न कर, सप्त-तीर्थों में स्नान कर पितरों का तर्पण किया और फिर ऋष्यमूक की ओर चले गए। शीघ्र ही वे पम्पा सरोवर के तट पर जा पहुंचे। राम सीता-विरह के दुख से दुखित कहने लगे—"देखो, इस मधुर ऋतु में सीता के बिना मेरी कैसी दशा है! सीता के बिना यह सब सुखद वातावरण मुझे कितना कष्टकर प्रतीत हो रहा है! अब न जाने वह साध्वी कहां होगी!"

राम के इस प्रकार विलाप को सुनकर लक्ष्मण ने कहा—"आर्य, आप धैर्य धारण कीजिए। वह चाहे भू-लोक में हो या पाताल में, हम उसे ढूंढ़ निकालेंगे। अब हमें सरोवर में स्नान कर ऋष्यमूक पर पहुंचना चाहिए। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर शोकसंतप्त होने से भला क्या लाभ है!"

इस प्रकार पंपा सरोवर में स्नान कर जब राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचे, तो दो नवीन शस्त्रधारी पुरुषों को देख सुग्रीव के मंत्री चौकन्ने हो गए। उन्होंने सुग्रीव को इसकी सूचना दी। हो सकता है, इन पुरुषों को बालि ने ही हमें मारने को भेजा हो, इस विचार से उसने सोच-विचारकर अपने पार्षद हनुमान को राम के पास सच्चे समाचार जानने के लिए भेजा। हनुमान ने ऋषिवेश बना, राम के पास आ, उनका नाम-धाम-गोत्र तथा उनके उधर आने का कारण पूछा। उसने कहा—"तपस्वी का वेश धारण करने वाले तथा धनुष-बाण लिए वन में विचरण करने वाले आप कौन हैं, सो कृपा कर कहिए। इस स्थान पर वानर-राज सुग्रीव रहते हैं। वे हमारे स्वामी हैं। मेरा नाम हनुमान है। मैं उन्हींकी आज्ञा से आपकी सेवा में आया हूं।"

हनुमान के ऐसे वचन सुन राम का संकेत पा, लक्ष्मण ने कहा—"हम महात्मा सुग्रीव के गुणों से अवगत हैं और उन्हीं से मिलने के लिए इस स्थान पर आए हैं। सुग्रीव यदि हमसे मित्रता करना चाहें तो हमें भी वह स्वीकार है। हम कोशलेश दशरथ के पुत्र हैं। ये आर्य राम हैं, मैं इनका अनुज लक्ष्मण हूं। पिता की आज्ञा से आर्य राम पत्नी सीता-सहित वन में आए थे। यहां विजन स्थान में किसी दुष्ट ने इनकी स्त्री का अपहरण किया है। उसीको खोजने हम घूम रहे हैं।

ये बातें सुनकर हनुमान ने विनम्र वाणी से कहा—"आपके वचनों से मेरे कान तृप्त हो गए। महात्मा सुग्रीव के अग्रज बालि ने उनकी स्त्री तारा का अपहरण कर राज्य भी छीन लिया है तथा उन्हें नगर

से निकाल दिया है, जिससे वह दुखित हो इस पर्वत पर बस रहे हैं। वह आपकी मित्रता-लाभ कर अवश्य प्रसन्न होंगे। अब आप यहां क्षण-भर विश्राम कीजिए, तब तक मैं जाकर उनसे निवेदन करता हूं।"

यह कहकर हनुमान चले गए। उन्होंने सुग्रीव को राम-लक्ष्मण का परिचय दिया। वहां आने का कारण भी बताया। सुनकर सुग्रीव ने राम के पास आकर भेंट की और अग्नि-स्थापन करके उनसे मैत्री स्थापित कर कहा—"आज से हम एक हैं, मेरा-आपका सुख-दुःख एक है।" फिर दोनों चन्दन की लताओं पर बैठ वार्तालाप करने लगे।

सुग्रीव की वार्ता सुनकर राम ने कहा—"मित्र, तू चिन्ता न कर। मैं दुरात्मा बालि का वध कर तेरी पत्नी और राज्य तुझे दिलाऊंगा।"

सुग्रीव ने कहा—"मित्र, मैं भी जैसे, जहां से बन पड़ेगा, सीता का पता लगाकर आपको ला दूंगा।"

इस प्रकार दोनों वचनबद्ध हो आगे की योजनाएं बनाने लगे। तब अकस्मात् स्मरण करके हनुमान गुफा में जाकर वे वस्त्र-आभूषण ले आए जो सीता ने हरण के समय जाते हुए वहां फेंके थे। आभूषण और वस्त्र देख राम व्याकुल हो गए। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—"देखो सौमित्र, ये कुण्डल, ये नूपुर क्या सीता ही के हैं?"

सौमित्र ने कहा—"आर्य, मैं इन कुण्डलों को नहीं जानता, क्योंकि मैंने कभी आर्या के मुख की ओर नहीं देखा। मैं तो इन नूपुरों को पहचानता हूं। जब मैं नित्य आर्या की पद-वन्दना करता था, तब इन्हें देखता था।" तदनन्तर सुग्रीव ने सारी घटना कह सुनाई।

३१

सुग्रीव ने कहा—"आप जैसा सर्वगुणसम्पन्न मित्र पाकर अब मेरे लिए कुछ भी अलभ्य नहीं रहा। आपके प्रताप से मैं पूजनीय हो गया। दुरात्मा बालि ने मेरी पत्नी को छीन मुझे राज्य से निकाल दिया है और वह सदैव मेरे वध के उपाय करता रहता है। हनुमान सहित ये चार वानर ही मेरी सेवा में हैं। यह बालि मेरा काल है, उसका अंत होने पर मेरा दुःख दूर होगा।"

राम ने कहा—"मित्र, तेरे इस भ्रातृ-विग्रह का कारण क्या है? क्या बालि तेरा सगा ज्येष्ठ भ्राता है?"

"नहीं, उसका पिता इन्द्र है। माता उसे गोद में लेकर पिता की सेवा में आई थी।"

"किन्तु ज्येष्ठ तो है ही ?"

"इसीसे पिता की मृत्यु होने पर मन्त्रियों ने उसीको अभिषिक्त कर दिया था तथा वानर-राज्य की श्रेष्ठ सुन्दरी तारा भी उसे दे दी गई थी। राज्य और मणि का आनन्द वह भोगने लगा और मैं द्वेष-रहित अनुज की भांति उसकी सेवा करने लगा।"

"यह उचित ही था।"

"फिर एक बार उसका पुराना वैरी मायावी दैत्य कहीं से आकर वानर-राज्य में उत्पात करने लगा। तिसपर बालि मुझे संग ले उससे युद्ध करने निकला। परन्तु वह दैत्य निकट वन में छिपकर युद्ध करता रहा, जिससे बालि मुझसे बिछुड़ गया। मैं एक वर्ष तक वन में बालि को खोजता रहा। फिर मैं निराश हो तथा यह समझकर कि बालि को मायावी ने मार डाला है, राजधानी में लौट आया।"

"स्वाभाविक ही था।"

"तब मन्त्रियों ने मेरा राज्याभिषेक कर दिया, क्योंकि राज्य बिना राजा के नहीं रह सकता था।"

"यथार्थ है।"

"तब तारा भी अपने पुत्र अंगद को लेकर मेरी सेवा में आ गई। मैंने उसे अपनी महिषी स्वीकार कर लिया और अंगद को, जो बालि का पुत्र था, अपना ही पुत्र मान लिया।"

"ऐसा भी होता है।"

"परन्तु कुछ काल बाद बालि अकस्मात् राज्यसभा में आ उपस्थित हुआ और मुझे सिंहासन पर आसीन देख दुर्वचन कहने लगा। मैंने उसे प्रसन्नतापूर्वक छत्र ग्रहण करने की प्रार्थना की तथा सत्य बात भी कह दी। पर बालि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने छत्र ग्रहण कर एक वस्त्र मुझे दे राज्य से निकाल दिया और तारा को भी मुझसे छीन लिया। निरुपाय मैं यहां असहाय-विपन्न रहता हूं।"

"किन्तु बालि का पराक्रम-शौर्य कैसा है ?"

"वह बड़ा बली है। वह सूर्योदय से पूर्व ही उठकर समुद्र-तट तक जाता है। बड़े-बड़े शिला-खम्भों को भुजाओं में उठा लेता है। उसने अनेक दैत्यों-दानवों और राक्षसों का दलन किया है। उसका बल अपरिसीम है। केवल मातंग ऋषि की आन मान यहां नहीं आता है। इसीसे मैंने यहां आकर शरण ली है।"

"तो मित्र, तू निश्चिन्त रह। मैं बालि-वध कर तेरी राह का कंटक दूर करूंगा।"

"किन्तु मित्र, आप मेरी बात को अपना तिरस्कार न समझें। मैं बालि के बल को जानता हूं, किन्तु आपकी सामर्थ्य से अज्ञात हूं।"

राम ने हंसकर कहा—"तो मित्र, तू मेरी परीक्षा कर!"

"मित्र, ये सम्मुख सात ताड़ एक ही वृत्त में हैं। बालि इन सातों को एकसाथ ही हिला सकता है। बाण से एक-एक को बींध सकता है। क्या आप भी बाण से इनमें से किसी एक को फाड़ सकते हैं?"

राम ने होंठों को दांतों में दबाकर धनुष पर बाण-संधान किया और एक ही बाण से सातों ताड़ों को बींध दिया। राम का यह हस्त-लाघव और चमत्कार देख सुग्रीव हर्ष से उल्लसित होकर बोला—"हे मित्र, आप तो एक ही बाण से वज्रपाणि देवराट् का भी वध कर सकते हैं। अब मैं निर्भय हुआ। मैंने जान लिया कि आप मेरे शत्रु का वध कर मुझ अकिंचन को निष्कंटक करेंगे।"

राम ने सुग्रीव को गले लगाकर कहा—"मित्र, चिन्ता न करो। चलो, अब किष्किन्धा चलें। विलम्ब की क्या आवश्यकता है!"

किष्किन्धा पहुंच सुग्रीव ने बालि को मलयुद्ध के लिए ललकारा। सुग्रीव की ललकार सुन बालि अखाड़े में आ उपस्थित हुआ। दोनों का मल्लयुद्ध राम-लक्ष्मण छिपकर देखने लगे। देखते ही देखते बालि ने सुग्रीव को पीट-पीटकर भगा दिया और स्वयं हंसता हुआ राजधानी में लौट गया। युद्ध में पिटकर सुग्रीव ने खीझकर राम को उलाहना दिया—"आपने मुझे व्यर्थ ही पिटवाया और देखते रहे। इससे क्या लाभ हुआ?"

राम ने कहा—"एक भूल हो गई थी मित्र! तेरा कोई चिह्न न था। तुम दोनों एक जैसे ही थे। कल तू पुष्प-माला पहनकर युद्ध कर।"

दूसरे दिन सुग्रीव बालि के राजद्वार पर जा फिर सिंह-गर्जना करने लगा। उसकी गर्जना सुन अपशब्द बकता हुआ बालि बाहर निकला। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे। तारा ने उसे रोकते हुए कहा—"आज तुम युद्ध मत करो, सुग्रीव की गर्जना में अहंकार-ध्वनि है। कहीं उसे कोई सहायता न मिल गई हो। मैंने अंगद से सुना है कि दो धनुषधारी मानवों से उसने मित्रता की है। वे उसके साथ हैं।"

परन्तु बालि ने कहा—"क्या मैं शत्रु की गर्जना सुनकर घर में बैठा रह सकता हूं? और आज तो मैं उसे मार ही डालूंगा। मैंने तो

कल अनुकम्पा से ही उसके प्राण छोड़ दिए थे।"

थोड़ी ही देर में मल्लयुद्ध छिड़ गया। सुग्रीव भी आज प्राणपण से जुट गया। जब दोनों वीर परस्पर गुंथे थे, तभी राम ने एक अग्नि-बाण तानकर छोड़ा, जो बालि के कण्ठदेश को फोड़ता हुआ उसकी उरो-गुहा में धंस गया। बालि तत्क्षण मुख से खून फेंकता हुआ पृथ्वी पर गिरकर छटपटाने लगा। यह देख बहुत-से वानर मंत्री और अन्य पुरुष भी वहां जुट गए। राम-लक्ष्मण उसके निकट जा पहुंचे।

राम का परिचय बालि को सुग्रीव ने दिया। राम के बाण ही से उसका पराभव हुआ है, यह भी कहा। सुनकर दुःखी बालि ने कहा—

"हे धनुषधारी, तूने दूसरे से युद्ध करते हुए मुझको छिपकर मारा है, तू पराक्रमी और चरित्रवान नहीं है, विश्वासघाती है। तू तृण से ढके हुए कुएं के समान है। मैं तो कभी तेरे राज्य में गया नहीं, कभी तेरा कुछ अनिष्ट किया नहीं। तेरा रूप-वेश मुनिजन जैसा है, धज क्षत्रियोचित है, परन्तु तुझे धर्म का ज्ञान नहीं है। मुझ निरपराधी की हत्या करके तू अब कैसे सभ्य समाज में मुंह दिखाएगा? अरे, महात्मा दशरथ का बहुत प्रताप मैंने अपने पिता देवराट् इन्द्र से सुना है। उन महात्मा दशरथ के तेरे जैसा विश्वासघाती पुत्र उत्पन्न हुआ! अरे, तूने सुग्रीव के हित के लिए मेरा वध किया! तू यदि अपना अभिप्राय मुझसे कहता तो मैं तेरी अभिलाषा तुरन्त पूरी करता।"

बालि के ये वचन सुन राम ने कहा—"अरे बालि, तुझे धर्म-अर्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं है। जान रख कि इस पृथ्वी पर इक्ष्वाकु-वंशियों का अबाध शासन है। तूने अपने विनीत छोटे भाई के प्रति अन्यायाचरण किया—इसीसे मैंने तुझे दण्ड दिया। तेरे जैसे अपराधी का वध छिपकर करने में दोष नहीं। हम आर्यजन ओट में होकर ही पशुओं का आखेट करते हैं। तू निर्बुद्धि भी पशु ही है।"

इसी समय अंगद का हाथ थामे तारा आकर विलाप करती हुई धड़ाम से बालि के ऊपर गिर पड़ी।

तारा के करुण वचन सुन बालि बड़े कष्ट से श्वास लेता हुआ बोला—"सुग्रीव, जो होना था, वह हुआ। अब मैं इस लोक से जा रहा हूं। पर मेरे इन अन्तिम शब्दों को याद रखना। यह अंगद मेरे प्राणों का प्यारा है, इसका ध्यान रखना। अब द्वेष-भाव से क्या! तुम मेरे प्रिय भ्राता हो—यह रत्नमाला लो, जिसमें विजयलक्ष्मी निहित है। तारा का ध्यान रखना। यह दिव्य दृष्टि रखती है और भावी घटनाओं के चिह्नों को जानने में पारंगत है।" फिर अंगद की

ओर देखकर कहा—"पुत्र, परिस्थिति को देखते हुए दुःख-सुख सहन करते हुए, अपने चाचा सुग्रीव की आज्ञा के अधीन रहना !"

इतना कह बालि ने प्राण त्याग दिए।

किष्किन्धा में सुग्रीव का राज्य हो गया और राम प्रस्रवण गिरि-शृंग पर रहने लगे। वर्षा ऋतु आ गई थी।

वर्षा ऋतु बीत गई। शारदीय शोभा ने दिशाओं को उज्ज्वल कर दिया। राम ने लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण, सुग्रीव तो राज्य और स्त्री पाकर उन्हींमें रम रहा है तथा मेरे कार्य को भूल गया है। मैं राज्य से भी निकाला गया और मेरी स्त्री का भी अपहरण हुआ। मार्ग दुर्गम है। न जाने कौन दुष्ट चोर वैदेही को चुरा ले गया है। वह जीवित भी है या नहीं। अब मेरा धैर्य जवाब दे रहा है। मैं कब तक प्रतीक्षा करूं ? मेरे अयोध्या जाने पर जनसमुदाय उमड़ पड़ेगा, तो सीता के न रहने से मैं उन्हें क्या जवाब दूंगा ? ये वर्षा के चार मास मुझे सौ वर्ष के समान व्यतीत हुए हैं। मुझ राजभ्रष्ट को, जिसकी पत्नी हर ली गई है, सुग्रीव ने भी अनाथ की भांति भुला दिया। यह उसका विश्वासघात है। अपना काम बनाकर वह मूर्ख रनवास में आनन्द कर रहा है। क्या उसने अपना ही काम सिद्ध करने के लिए मुझसे मित्रता की थी ? उसने तो वर्षा समाप्त होते ही सीता की खोज का वचन दिया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह कामांध अब वह बात भूल गया है। वह मंत्रियों सहित भयानक काम कर रहा है। तुम जाकर उसके कर्तव्य को स्मरण करा दो और कह दो कि कहीं उसकी भी बालि जैसी दशा न हो।"

लक्ष्मण ने किष्किन्धा पहुंचकर अपने आने की सूचना सुग्रीव को भेजी। परन्तु सुग्रीव को अन्तःपुर में सूचना पहुंचाई ही नहीं गई। लक्ष्मण धड़धड़ाते हुए महल में घुस गए। उन्हें इस प्रकार आते देख अन्तःपुर की स्त्रियां घबड़ाकर भागने लगीं। इसी समय तारा ने सम्मुख आकर लक्ष्मण को प्रणाम किया। मद्यपान तथा रात्रि-जागरण से उसके नेत्र घूर्णित हो रहे थे। तारा को देखते ही लक्ष्मण ने धनुष नीचे कर लिया। तारा ने नम्र शब्दों में कहा—"राजकुमार, आप क्रोध को त्याग दें। सुग्रीव आपका मित्र है, हितैषी है। उसके अपराध को क्षमा कीजिए। आपके उपकार को वह भूल नहीं सकता। परन्तु आपको जानना चाहिए कि कामातुर आदमी धर्म-अर्थ की बात नहीं

विचार सकता। आप उसे क्षमा कीजिए और मेरे साथ रनवास में पधारिए।"

रनवास में जाकर स्वर्ण-शय्या पर सोए तथा दासियों, परिचारिकाओं से सेवित सुग्रीव को मद्य के नशे में मस्त देख लक्ष्मण ने कहा—"हे राजन्, उपकारी मित्रों से झूठी प्रतिज्ञा करने वाले के समान अधर्मी और दूसरा कोई नहीं है। आप ने यह नहीं समझा था कि वे एक दुरात्मा को राज दे रहे हैं। अब तुम कहो कि तुम अपना वचन पूरा करते हो या रामचन्द्र अपना बाण धनुष पर चढ़ाएं ?"

सुग्रीव को चैतन्य-लाभ हुआ। वह पलंग से कूदकर खड़ा हो गया। लक्ष्मण और तारा की बातें उसने सुन लीं। कामदेव की प्रतीक पुष्प-माला तोड़कर फेंक दी। फिर उसने कहा—"राजकुमार, श्री राम ने मेरी गई हुई राज्यश्री मुझे लौटाई है। मैं भला कैसे उनका उपकार भूल सकता हूं!" उसने उसी समय हनुमान को बुलाकर आज्ञा दी कि सब राज्यों-उपराज्यों के वानर और रक्षपति अपने-अपने यूथों सहित दस दिन के भीतर यहां राजधानी में आ उपस्थित हों। इस आज्ञा का जो उल्लंघन करेगा उसका वध होगा। इसके बाद वह मंत्रियों और लक्ष्मण सहित पालकियों में बैठ शंखध्वनि के बीच तथा वन्दीजनों द्वारा गुणगान सुनता हुआ राम की सेवा में चला।

देखते ही देखते चारों ओर से दल-बादल वानरों के यूथ प्रस्रवण पर आकर एकत्रित होने लगे। सुग्रीव ने सेनापति विनत को पूर्व दिशा में, हनुमान और अंगद को दक्षिण में और अपने श्वसुर सुषेण को पश्चिम में भेजा तथा शतबली को उत्तर दिशा में रवाना किया। सबके साथ हज़ारों वानरों के यूथ भी गए। इस प्रकार सारी ही पृथ्वी पर सीता की खोज होने लगी।

सीता के मिलने की संभावना दक्षिण दिशा में ही थी। इसलिए दक्षिण में जो दल युवराज अंगद की अध्यक्षता में भेजा गया, उसमें महापराक्रमी हनुमान, नील, अग्निपुत्र, जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारित, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय वृषभ, द्विविद, उल्कामुख तथा अन्य वीर वानर थे। वे अधोमुख मलय पर्वत होते हुए, ताम्रपर्णी नदी को पार कर, समुद्र-तट पर पहुंचे। वहां से महेन्द्र पर्वत पर चढ़े। वहां से पुष्पितक द्वीप में गए। फिर सूर्यवान्, वैद्युत और कंजर पर्वत को पार किया। अन्त में वे नागों की राजधानी भोगपुरी में पहुंचे। उन्होंने बहुविध सीता की खोज की, परन्तु सीता का कुछ भी पता न चला। सभी वानर बहुत हताश हुए। सुग्रीव ने जो अवधि दी थी, वह भी बीत चली।

तभी वानरों ने देखा—एक विशालकाय गृद्ध धीरे-धीरे पर्वत से उतर रहा है। वानरों को वहां इस प्रकार बैठे तथा मरण-ठान ठानते सुन वह प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"बहुत उत्तम सुयोग है। जो-जो व्यक्ति मरता जाएगा, उसका भक्षण मैं करता जाऊंगा। बहुत दिन तक भोजन की चिन्ता मिटी।"

उसे देख वानरों ने कहा—"हाय-हाय, यह कौन कृतान्त हम जीतों ही का प्राण लेने यहां आ उपस्थित हुआ! हम न सीता का ही पता लगा सके, न स्वामी ही की आज्ञा का पालन कर सके। हमसे तो अधिक भाग्यवान गृध्रराज जटायु ही हैं जिन्होंने सीता की प्राणरक्षा के लिए राक्षस के हाथ से प्राण दिए।"

वानरों की यह कातरोक्ति सुनकर उस पुरुष ने कहा—"अरे, यह किसने मेरे भाई जटायु का नाम लिया? किसने मेरे भाई जटायु का हनन किया? कहो, मैं जटायु का बड़ा भाई सम्पाति हूं। मैं बहुत वृद्ध हूं। देवासुर-संग्राम में सूर्य से युद्ध करते मेरे दोनों पंख नष्ट हो गए थे। मैं पंखों से रहित, वृद्धावस्था से जर्जर, अपग, अशक्त, यहां अपने पुत्र पार्श्व के आश्रम में रहता हूं। अब तुम कहो, कौन हो और किस अभिप्राय से यहां आए हो।"

तब युवराज अंगद ने आद्योपांत अपनी कथा कह सुनाई। इसपर संपाति ने अपने भ्राता की मृत्यु पर भांति-भांति से विलाप करते हुए कहा—"वत्स, मैं उस चोर और दुरात्मा को जानता हूं, जो मेरे अनुज वीरवर जटायु का हत्यारा भी है। मैंने दाशरथि-भार्या को हरण किए जाते देखा था तथा उस पापिष्ठ के यह कहने पर कि मैं मुनिकुमार हूं, मैंने उसका मार्ग छोड़ दिया था। हा दैव, यदि मुझे ज्ञात होता कि वह दुरात्मा पर-स्त्री हरण कर रहा है तथा मेरे धर्मात्मा अनुज का हत्यारा है, तो मैं तत्काल उसका वध करता।" शोकाकुल संपाति ने कहा—"सुनो, तुम्हारा वह चोर विश्रवामुनि का पुत्र पौलस्त्य रावण है। वह धनपति कुबेर का भाई और सप्तद्वीपों का स्वामी है। यहां से सौ योजन की दूरी पर समुद्र में एक द्वीप है, जिसमें त्रिकूट-शिखर पर स्वर्ण-लंकापुरी बसी है। उस नगरी के द्वार, चतुष्पथ, दीवार, भवन स्वर्णमण्डित हैं, जो सूर्य के प्रकाश में सूर्य के ही समान देदीप्यमान रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे शत-सहस्र सूर्य वहां उदय हो रहे हैं। यह राक्षसपुरी लंका दुर्लंघ्य, दुर्धर्ष, दुर्गम्य और दुष्प्रवेश है। एक लाख राक्षस योद्धा रात-दिन नगर-द्वारों पर पहरा देते हैं। उनका बल अमोघ है। अभी तो रावण ने देवराट् इन्द्र को बन्दी किया था। उसने

उससे दास्य कर्म कराकर मुक्त किया है। अरे, जिन देवों को पृथ्वी का नृवंश पूजता है, वे उसकी ड्योढ़ी पर दास-भाव से रहते हैं। उसका भाई कुम्भकर्ण पर्वतशृंग के समान विशालकाय, महाभक्ष, महोदर, महाप्राण है। उसके सम्मुख काल भी नहीं ठहर सकता है। फिर उसका पुत्र इन्द्रजित् मेघनाद है, जिसके सम्बन्ध में सुना है कि उसे सब दिव्य माया-शक्तियां प्राप्त हैं। यह परिवार भूतपावन भगवान रुद्र द्वारा रक्षित है। फिर उसकी सेवा में अनगिनत राक्षस भट हैं। सो हे वानरो, तुम कैसे उस शत्रु से पार पाओगे?"

सम्पाति के ये वचन सुन सब वानर सन्न रह गए। तब अंगद ने धीर वाणी से कहा—"आर्य, ऐसे धीर, वीर, प्रतापी, विद्वान महिदेव और सप्तद्वीपाधिपति ने कैसे यह निन्दनीय चोर कर्म किया? यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। परन्तु जो हो, हम प्राण देकर भी लंका जाएंगे और प्रभु-कार्य करेंगे। आप हमें वहां जाने का उपाय बताइए।"

"बताता हूं—ध्यान से सुनो! प्रथम आकाश-मार्ग है। आकाश-मार्ग के सात स्तर हैं। प्रथम स्तर पर गौरैया कबूतर आदि अन्नभक्षी पक्षी उड़ते हैं। उसके ऊपर दूसरा स्तर है, जहां वृक्षों के फल खाने वाले तोता, कौआ आदि पक्षी उड़ते हैं। उससे ऊपर तीसरे स्तर पर चील, क्रौंच, कुरा उड़ते हैं। बाज, गिद्ध क्रमशः चौथे-पांचवें स्तर तक पहुंचते हैं। अत्यन्त सुन्दर पक्षी हंस उनसे भी ऊपर छठे स्तर पर उड़ता है। परन्तु सबसे ऊंची और वेगशाली जाति गरुड़ों की है जो सातवें स्तर पर आकाश-गमन करते हैं। मेरा जन्म भी गरुड़-कुल में हुआ है और हम मांसभुक् जाति के पुरुष हैं। हमारी दृष्टि सौ योजन तक जाती है। यदि मैं आज साधनसम्पन्न होता तो आकाश-मार्ग से जाकर अनायास ही तुम्हें लंका का संदेश ला देता। परन्तु अब तो यह दुस्तर है। फिर भी रावण से मुझे अपने भाई का वैर लेना है। सो यदि तुममें से कोई वानर भट विकट साहसिक हो तो मैं उसे समुद्र-उल्लंघन करने की सहज विधि बता दूंगा। समुद्र पार होने पर लंका में जा वह सुभट कृतकृत्य हो सकता है।"

अंगद ने कहा—"आर्य सम्पाति, आप हमें यह विधि बताइए, जिससे यह दुर्लंघ्य सागर पार कर लंका में पहुंच सकें।"

सम्पाति ने कहा—"अच्छा, यह रहस्य, जिसे लंकाधिपति रावण भी नहीं जानता है, मैं बताता हूं। देखो—समुद्रतट से धनुष्कोटि के अन्तर पर गृध्रकूट गिरिश्रृंखला त्रिकूट तक समुद्र-गर्भ में जलमग्न चली गई है। स्थान-स्थान पर वहां विश्राम करने की सुविधा है।

जो कोई साहसी वीर सौ योजन समुद्र को इस भांति तैरकर उल्लंघन करने की शक्ति रखता हो, उसे इस गिरिशृंखला से बहुत सहारा मिलेगा और वह अवश्य ही अपने विक्रम से समुद्र के पार पहुंच जाएगा।"

सम्पाति के ये गूढ़ वचन सुन सब वानर उसे प्रणाम कर समुद्र-तट की ओर सीता की खोज के लिए उत्साहित हो चल दिए।

गृध्रराज सम्पाति द्वारा सीता का समाचार सुन गर्जना करते हुए सम्पूर्ण वानरों ने समुद्र-तट पर आ डेरा डाल दिया। सम्मुख आकाश के समान अपार सागर था। समुद्र को देख वे सोचने लगे—कैसे इस अपार सागर को पार किया जाएगा? यह तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इस दुस्तर कार्य के सम्बन्ध में बातें करते-करते सभी वानर विषादग्रस्त हो गए। जब अंगद ने यह देखा तो कहा—"हममें कौन वीर समुद्र-लंघन में समर्थ है, जो यह दुष्कर कार्य कर हमें अभय प्रदान करे?"

युवराज अंगद के वचन सुनकर यूथपति वानर अपना अपना बल निवेदन करने लगे। गज ने कहा—"मैं दस योजन तैर सकता हूं।" गवाक्ष ने कहा—"मैं बीस योजन जा सकता हूं।" शरभ ने कहा—"मैं तीस योजन।" ऋषि बोला—"मैं चालीस योजन तैर सकता हूं।" महातेजस्वी गन्धमादन ने पचास योजन जाने की बात कही। तब मयंक ने साठ योजन की अपनी शक्ति बताई। यूथपति द्विविद ने कहा—"मैं सत्तर योजन तैर सकता हूं।" फिर सुषेण वानरपति ने अस्सी योजन जाने की हामी भरी। सबके बाद ऋक्षराज जाम्बवन्त ने कहा—"मैं वृद्ध हुआ। मेरा पुरुषार्थ क्षीण हो गया है, पर मैं नब्बे योजन तक जा सकता हूं।"

इसपर महावीर्यवान् अंगद ने कहा—"मैं सौ योजन तक जा सकता हूं, परन्तु लौटने में संदिग्ध हूं।" तब जाम्बवन्त ने कहा—"युवराज, तुम्हारी शक्ति मैं जानता हूं—तुम सौ क्या, पांच सौ योजन तैर सकते हो; परन्तु तुम्हें भेजना हमें अभीष्ट नहीं है। तुम हम सबको आज्ञा देने वाले, हमारे कटकपति हो। हम सब तुम्हारे आज्ञापालक सेवक हैं। स्वामी की रक्षा करना सेवक का कर्म है। तुम्हारे ऊपर सीता का दायित्व-भार है, अतः तुम अपनी आज्ञा से इन्हींमें से किसी-को भेजो।" इसपर दुखित अंगद ने कहा—"ऋक्षेन्द्र, मैं नहीं जाऊंगा तो फिर यह कार्य सम्पन्न नहीं होगा। हम सभीको मरण-व्रत धारण

करना होगा। फिर आप ही हमें राह बताइए। आप हमारे ज्येष्ठ और वयोवृद्ध हैं।" जाम्बवन्त ने बड़े वेग की गर्जना की। उन्होंने एक ओर मौन बैठे हनुमान को सम्बोधित करके कहा —"अरे मारुति, तुम कैसे एक ओर मौन बैठे हो? अरे, तुम सकल शास्त्रों के वेत्ताओं में श्रेष्ठ, अद्वितीय वीर पवनकुमार, इस समय चुप क्यों हो? यह क्या तुम्हारे मौन का काल है? अरे मारुति, पृथ्वी पर तुम-सा बली कौन है? तुम्हारी गमन-शक्ति से तो गरुड़ भी स्पर्धा करते हैं। तुम्हारा तेज और अप्रतिम प्रताप, मेधा-शक्ति और धैर्य अपरिसीम है। इस समय इन सब वानर यूथपतियों में एक तुम्हीं इस महत्त्व के कार्य के लिए समर्थ हो। फिर क्यों विलम्ब कर रहे हो? उठो, हम सबका उपकार करो। अपना पराक्रम धन्य करो।"

हनुमान ने जाम्बवन्त ऋक्षराज के ये वचन सुन बारंबार हुंकृति की। वस्त्र उतार डाले, लंगोट कसा, सर्वांग में सिन्दूर का लेप किया और वे बारंबार अपना वज्रदेह कुम्भक द्वारा फुलाते हुए सागर-अतिक्रमण को सन्नद्ध हो गए।

हनुमान को इस प्रकार उद्यत देख सब वानर हर्षोन्मत्त हो नाचने और चिल्ला-चिल्लाकर हनुमान मारुति का जयजयकार करने लगे। वे पराक्रमी हनुमान की बारंबार प्रशंसा करने और गर्जना करने लगे। अब सब वयोवृद्ध वानरों द्वारा पूजित हो अमिततेज हनुमान ने सब वानरों को प्रणाम किया और कहा—"मैं बिना ही विश्राम किए इस सौ योजन के सागर को तैरकर पार करूंगा। मैं निश्चय ही भगवती सीता की खोज लगाऊंगा। अब आप सब निश्चिन्त रहें। हर्ष मनाएं। मुझसे बना तो मैं समूची लंका ही को विध्वंस करके लौटूंगा। आज मैं उस विश्रवा मुनि के पुत्र सप्तद्वीपपति रावण और उसके इन्द्रजित् पुत्र को देखूंगा। यदि वह सत्य ही सीता भगवती का चोर है, तो निश्चय जानो कि अब उसके जीवन की इति हो चुकी।"

इतना कह हनुमान मारुति ने बारंबार वज्र-गर्जना की। यह देख सभी वानर गर्जना करने लगे। उनकी सम्मिलित गर्जना से वातावरण ध्वनित हो उठा। अब जाम्बवन्त ऋक्षेन्द्र ने प्रसन्नमन कहा—"वीरवर, हम सब तुम्हारी मंगलकामना करते हैं। तुम्हारे लौटने तक हम तुम्हारे लिए मंगल-अनुष्ठान करेंगे। अब तुम इस महेन्द्र पर्वत के शिखर पर चढ़ जाओ और वहीं से छलांग मारो।"

यह सुनकर धीरगति से हनुमान पर्वत-शृंग पर चढ़ गए। गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, वानर सभी हतचेत-से खड़े हो मारुति के इस असह विक्रम

को देखने लगे। सिंह के समान अमित-विक्रम मारुति गिरिश्रृंग पर चढ़ कुम्भक-रेचक द्वारा शरीर को पवनपूरित करने लगे। पवन के भर जाने से उनका वज्रदेह अक्षत और विशाल हो गया। पर्वत-गुहाओं में रहने वाले तपस्वी और किन्नर भयभीत तथा आश्चर्यान्वित हो अपनी स्त्रियों-सहित इधर-उधर दौड़ने लगे। वायुपुत्र हनुमान ने अपना शरीर हिला, वज्र-गर्जना की, अपनी बलिष्ठ भुजाओं को पर्वत पर जमाया, फिर पीठ की ओर खींचकर अपनी गर्दन और भुजाओं को सिकोड़ लिया। तब उन्होंने नेत्र उठाकर विस्तीर्ण समुद्र पर दृष्टि डाली। प्राणों को हृदय में रोका और एकबारगी ही भयानक छलांग मारी।

हनुमान के शरीर के साथ ही पर्वत-श्रृंग पर स्थित लता-गुल्म-वृक्ष सभी फल-फूल-टहनियों समेत समुद्र में जा गिरे। समुद्र-गर्भ से ऊपर आकर उन्होंने एक बार पीछे फिरकर वानरों के यूथ को देखा, फिर डुबकी ली। इस प्रकार डुबकी लेते-निकलते वे समुद्र में आगे बढ़ने लगे। कभी वे छलांग भरते, कभी समुद्र-तल में घुस जाते, कभी किसी बहती हुई काष्ठपट्टिका या तरुखण्ड का आश्रय लेते, कभी दोनों हाथ आकाश में उठाकर केवल लातों से जल को आन्दोलित करते। उनकी आकाश में फैली हुई भुजाएं ऐसी प्रतीत होती थीं, जैसे पर्वत से पांच फनवाले दो सर्प निकल आए हों। उनकी गोल पीले रंग की बड़ी-बड़ी आंखें सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रतीत होती थीं। जब मारुति जल पर लातों का आघात करते तब उनकी बगल से निकलती हुई हवा बादल के समान गरजती थी। जहां-जहां वे आगे बढ़ रहे थे वहां-वहां समुद्र उठती हुई तरंगों तथा फेनों से भर गया। वे अपने वक्षस्थल से समुद्र की दुर्गम तरंगों को तोड़ते-फोड़ते वेग से आगे बढ़ रहे थे। उनके वेग और मेघों से उत्पन्न हुई हवा ने समुद्र को भी डावां-डोल कर दिया, जिससे कछुए, मगरमच्छ आदि जलचर जीव व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। वे एक-एक छलांग में एक योजन पार कर रहे थे। उस जगह का समुद्र परनाले के समान छिछला था। जलगर्भ में छिपी हुई चट्टानों पर क्षण-भर चरण रख विश्राम लेते, फिर आगे कूद जाते। चारों ओर अगम जल, चारों ओर उन्मत्त लहरें, चारों ओर विषम संकट, परन्तु मारुति बढ़े चले जा रहे थे। जब वे वायु में छलांग भरते तो गरुड़ प्रतीत होते थे। उनके वेग के साथ काले-पीले मेघ भी उड़ रहे थे। हनुमान कभी मेघों में छिप जाते, कभी प्रकट हो जाते।

बीच सागर में मैनाक पर्वत की कुछ चोटियां जल-तल को स्पर्श करती देख हनुमान ने क्षण-भर वहां विश्राम किया और फिर यह कह-कर कि 'रामकाज किए बिना मोहि कहां विश्राम,' वह आगे बढ़े। परन्तु इसी क्षण बीच सागर में एक विकराल जीव मुंह फाड़ उन्हें ग्रसने को लपका। उसका पर्वत के समान विशाल बदन था, महासर्प के समान आकृति थी। उसकी कांटेदार महापुच्छ थी। उसका विकराल मुख भी एक गुहा के समान था। हनुमान जब तक संभलें, तब तक उस विकराल जन्तु ने उन्हें समूचा ही निगल लिया। हनुमान निरुपाय उस महाजन्तु के उदर में पहुंच तथा दर्प से उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आए। फिर उन्होंने एक किलकारी भर आकाश में छलांग भरी और दस योजन सागर पार कर दिया।

इस प्रकार धैर्य, सूझ, साहस और कौशल से सब विघ्न-बाधाओं को पार कर हनुमान उस ओर समुद्र-तट पर द्वीप के किनारे जा पहुंचे। वहां तट पर उगे हुए सुन्दर वृक्षों तथा समुद्र में गिरने वाली नदियों के मुहानों से उसकी शोभा अपूर्व हो रही थी। उन्होंने एक सुरक्षित पर्वत-शृंग पर चढ़, फल-मूल खा विश्राम किया।

३२

दूर तक फैली हुई सुनील जलराशि और सामने स्वर्णवर्ण रजकण, ठौर-ठौर पर ताल, तमाल, हिंताल के सघन-विरल द्रुम, जिनपर कूजित विहगवृन्द यह सब देख मारुति का सब श्रम दूर हो गया। उनका चित्त प्रसन्न हो गया।

वे धीरे-धीरे पर्वत-शृंग से उतर नगर के निकट पहुंचे। तब उन्होंने धवल सौध-पंक्तियों को भली भांति देखा, जिनके शिखर स्वर्णमण्डित थे और जिनकी शोभा शरदभ्र की भांति शुभ्र-मनोरम थी। नगर में सब ओर ऊंची सतह पर बनी सफेद सड़कें थीं। अट्टालिकाओं पर विविध रंग की ध्वजा-पताकाएं वायु में फहरा रही थीं। घरों के द्वारों पर कलापूर्ण चित्रकारी की गई थी। उस राक्षसपुरी को देख महाबली मारुति आश्चर्यचकित रह गए। यहां इन दुर्भट राक्षसों से लड़कर जय पाना तो सम्भव ही नहीं प्रतं हो रहा है। युद्ध के अतिरिक्त यहां तो साम-दाम से भी कार्य बनता नहीं दीख रहा है। इस लंका में अंगद, नील, सुग्रीव और मैं केवल चार ही ऐसे वानर भट हैं जो प्रवेश कर सकते हैं; सो भी छद्म-वेश में। परन्तु अभी तो मुझे अपना

काम साधना है। सो मेरा काम रात में ही हो सकता है। अब मुझे ऐसा कौशल करना होगा कि मैं भगवती सीता को देख सकूं, पर कोई मुझे न देख-पहचान सके।

इन सब बातों को विचार मारुति दिन छिपने तक किसी एकान्त स्थान में छिपकर बैठ गए। जब रात्रि का अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया तो घरों की छाया में अपने को छिपाते, पद-शब्द को बचाते, राक्षसों की दृष्टि को चुराते, वे एक घर से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में जाने लगे। उन्होंने अनेक अट्टालिकाएं और स्तम्भों से सुशोभित अलिन्द देखे। अनेक सतमहले सुन्दर विशाल महल देखे जिनके फर्श स्फटिक-शिलाओं के समान थे, जहां स्वर्ण के समान भवन और बैठकें बनी हुई थीं, जिनमें सोने के गवाक्ष और कपाट थे। परन्तु कहीं भी उन्हें सीता की झलक न दीख पड़ी। इससे वे उदास होने लगे। अभी हनुमान मारुति यह सब देख ही रहे थे कि द्वारपालिनी राक्षसी लंका ने उनके सन्मुख आ और खड्ग उनके कंठ पर रखकर कहा—"अरे दुरात्मा, तू कौन है जो चोर की भांति रक्षेन्द्र-रक्षित लंकापुरी में प्रच्छन्न भाव से विचर रहा है? मरने से पूर्व अपना परिचय दे और यह बता कि तूने यहां आने का साहस कैसे किया?"

उस राक्षसी की यह भयानक बात सुनकर मारुति ने धीरे स्वर में कहा—"महाभागे, इस भयानक और स्वीजन-अशोभित वेश में तू कौन है और किसलिए मुझ मुनिकुमार से ऐसे अभद्र वचन कह रही है?"

लंका ने कहा—"मैं लंका नाम की राक्षसी लंका की नगर-रक्षिका हूं। लंका पर रात में मेरी ही चौकी रहती है। कोई देव, दैत्य मेरी दृष्टि बचाकर लंका में प्रविष्ट नहीं हो सकता। सो तू अब अपने को मृत्यु-मुख में ही समझ।"

यह सुन मारुति ने कोमल कण्ठ से कहा—"महाभागे, मैं मुनि कुमार तेरी सुशोभिता नगरी लंका को देखकर प्रसन्न होने आया हूं। बस, देख-भालकर लौट जाऊंगा। अब तू मुझपर प्रसन्न हो।" इस-पर वह राक्षसी एकदम क्रुद्ध हो उठी और उसने मारुति की नाक में एक घूंसा मारा।

मुक्का खाते ही मारुति ने भी उसके मुंह पर एक चपेटा मारा। चपेटा खाकर वह घूमकर भूमि पर गिर गई। तब मारुति ने उसके कंठ पर चरण रखकर कहा—"अब तू मर!"

इसपर करबद्ध प्रार्थना कर वह राक्षसी बोली—"हे मुनिकुमार,

मेरे प्राणों की तू रक्षा कर। मेरे प्राण हरण मत कर, मैं तेरी शरणागत हूं!"

हनुमान यह सुन उसका कण्ठ छोड़ तुरन्त ही अन्तर्धान हो गए तथा इधर-उधर भवनों में पैठ-पैठकर उन्हें देखने लगे। बहुत-सी रमणियां अपने हर्म्यों की छतों पर अपने प्रियतमों की गोद में बैठी पान-विलास का आनन्द ले रही थीं। इस प्रकार मारुति ने अनगिनत स्त्रियों को देखा पर उन्हें अयोनिजा सुकुमारी जनकनन्दिनी सीता के कहीं भी दर्शन नहीं हुए।

तब वह रावण के अन्तःपुर की ओर चले। वहां जाकर उन्होंने देखा—वह अन्तःपुर चारों ओर गहरी खाई से घिरा हुआ था। वह निर्मल और अलौकिक सुन्दर भवन धवल रश्मि-प्रभा बिखेर रहा था। उसकी रक्षा के लिए सहस्रों महाबली सुभट राक्षस भली भांति शस्त्रसज्जित नियत थे। अब अर्धरात्रि व्यतीत हो चली थी। वह अब रावण के शयन-कक्ष में जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां एक अद्भुत पलंग था, जिसपर अनेक वेदियां बनी थीं। उसपर अनेक बहुमूल्य उत्तम वस्त्र बिछे थे। उसपर चन्द्रमा के समान एक छत्र लगा था। अनेक स्त्रियां खड़ी पंखियां ले-लेकर रावण को हवा कर रही थीं। रावण सो रहा था। वहां अनेक प्रकार की सुगन्धित सामग्री जल रही थी। शयन-कक्ष उनकी सुगन्ध और सौरभ से सुरभित हो रहा था। सोता हुआ रावण जल से भरे हुए वर्षोन्मुख बादल की शोभा धारण कर रहा था।

स्वर्ण दीपाधारों पर सुगन्धित तेल के दीप जल रहे थे। पलंग के निचले भाग में इधर-उधर रावण की विद्युवदनी स्त्रियां सो रही थीं, जिनके मणि-माणिक्यों की आभा से वह कक्ष जगमग हो रहा था। इन सब रूपसी षोडशियों से पृथक् एक अतीव सुन्दर मणि-खचित पलंग पर एक असाधारण सुन्दरी सो रही थी। यह रमणी अपनी रूपनिष्ठा तथा गौरवर्ण के कारण सबसे पृथक् सर्वोपरि परिलक्षित हो रही थी। उस स्त्री का रूप-लावण्य अति मनोहर था। उसकी वेश-भूषा भी उसके अन्तःपुर के स्वामित्व की सूचक थी। उसे देख हनुमान ने सोचा, कदाचित यही तो भगवती सीता नहीं है! परन्तु वह प्रेम-वियोगी विदग्ध-हृदया सीता यहां रावण के विलास-गृह में कैसे मद्यपान-मत्त हो सो सकती है! निस्सन्देह यह सीता नहीं है। मेधावी मारुति ने समझ लिया कि यह रक्ष-राजमहिषी मन्दोदरी है। तब भगवती अयोनिजा सीता कहां हैं?

इस प्रकार मारुति ने रावण का सारा ही अन्तःपुर छान डाला, परन्तु कहीं भी सीता का पता न लगा। तब हनुमान खिन्नमन अन्तःपुर से बाहर आ दूसरी ओर चले। अब वे लतागृहों, चित्रगृहों, निशागृहों में सीता की खोज करने लगे, पर सीता जब उन्हें वहां भी न मिली तो उन्हें सन्देह हुआ कि कदाचित् सीता जीवित नहीं है। अब सीता का यदि पता ही न लगा तो मेरा लंका आना व्यर्थ हुआ। दुर्लंघ्य समुद्र को लांघना ही अकारथ गया। अब लौटकर मैं अपने साथियों को क्या संदेश दूंगा? परन्तु मुझे निराश न होना चाहिए। इससे मुझे अब अन्यत्र भी यत्न से सीता की खोज करनी चाहिए। यह सोच अब वे गुप्त और दुर्गम स्थानों में सीता को खोजने लगे।

इस प्रकार खोज करते-करते वे अशोक-वाटिका के द्वार पर आ पहुंचे तथा वायुवेग से उसकी प्राचीर पर चढ़कर भीतर कूद गए। उन्होंने देखा—अशोक वाटिका में विकट राक्षसों का कड़ा पहरा लगा है। वे इधर-उधर अपने को छिपाते—सरोवरों-पुष्करिणियों के तटों का आश्रय लेते हुए आगे बढ़ते चले गए। अचानक ही उनकी दृष्टि एक धवल प्रासाद पर पड़ी जो गोलाकार और बहुत ऊंचा था। उन्होंने देखा—वहां च्यूंटी-दल की भांति बहुत-सी राक्षस-मूर्तियां इस निशांत-काल में भी सजग हैं।

वे वृक्ष से उतर वृक्षों की सघन छाया में अपना शरीर छिपाते हुए पदशब्द को बचाते उस हर्म्य के निकट आए। वह हर्म्य बहुत ऊंचा था और सहस्रों खम्भों पर टिका था। उसकी सीढ़ियां मूंगों की बनी थीं और वेदियां चन्दन की थीं। वह स्वच्छ प्रासाद स्निग्ध चन्द्रज्योत्स्ना का मूर्त प्रतिबिम्ब-सा दीख रहा था।

धीरे-धीरे अपने को छिपाते हुए हनुमान फिर वृक्ष पर चढ़ वृक्षों ही वृक्षों में हर्म्य के निकट आ गए। अब उन्होंने देखा—एक मलिन-वसना सुन्दरी, पीतप्रभा, कृशकाया, क्लान्त-वदना, उपवास-शोक-व्यथाव्यथिता दिव्यांगना-सी रूप-प्रभा बाला हर्म्य से बाहर एक अशोक-वृक्ष के नीचे अधोमुखी बैठी लम्बी-लम्बी सांस खींच रही है। उसके अंग पर एक ही पीला वस्त्र है। निरलंकारा होने पर भी वह मलिन-वस्त्रा राख में ढंके अंगार की भांति प्रतीत हो रही है। उसका मुख वर्षोन्मुख बादल के समान गंभीर तथा आंखें भादों के मेघों के समान झर-झर वर्षा करती हुई हैं। वह शोक और चिन्ता में कातर है। उसके सिर पर काले नाग के समान ही वेणी है जो कमर तक लटक रही है। उसको चारों ओर से घेरकर सजग शस्त्रधारिणी राक्षसियां बैठी हैं,

जो बड़ी विकरालवदना हैं। उनसे घिरी हुई वह मृगनयनी बाला कुत्तों से घिरी हुई असहाया मृगी-सी प्रतीत हो रही थी। इस शोक-मूर्ति को देखते ही मारुति ने समझ लिया—अयोनिजा, अमोघ-शुल्का, जनक-तनया, राम-वधू भगवती सीता यही है। श्रीराम ने जैसा रूप सीता का वर्णन किया है, वैसा ही इसका रूप है। वैसा ही कोमलकान्त मुख है। उसकी दीप्ति से इस दशा में भी दशों दिशाएं प्रदीप्त हो रही हैं। इन्द्रमणि कण्ठ में पहनने से इसका कण्ठ नीलवर्ण दीख रहा है, ओठ अब भी बिम्बाफल के समान लाल हैं। उसका कटिभाग और चरण मनोरम हैं। कमल के समान नेत्रों में शील, संकोच और वेदना परिलक्षित है। यह तो पूर्ण चन्द्र के समान संसार को ही प्रियदर्शना प्रतीत होगी। यह संयमशीला तपस्विनी के समान खुली भूमि पर बैठी है। शोकातुर होने के कारण उसकी शोभा नष्ट हो गई है। मारुति ने बारीकी से सीता के वस्त्राभरण और आकृति का निरीक्षण कर तथा श्रीराम के वर्णन से उसे मिलाकर देख लिया और तब उन्होंने निर्णय किया कि यही वास्तव में श्रीराम की प्रिय पत्नी जनकजा सीता है।

इसी समय चन्द्रोदय हुआ। अब चन्द्रज्योत्स्ना के आलोक में हनुमान ने शोकाभिभूत सीता को भारी बोझ से जल में झुकी हुई नौका के समान देखा। उसे घेरकर जो राक्षसियां बैठी थीं, वे बड़ी विकट, निर्दय और भयानक थीं। उनमें कोई मदिरा-पान कर मत्त हो बक रही थी, कोई क्रोध में ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी। वे सब सीता से दूर-दूर, उस वृक्ष को घेरकर बड़ी सावधानी से सीता की चौकसी कर रही थीं। सीता का पतिव्रत लंका में बहुत ख्यात हो चुका था, अतः अनेक राक्षसियां इसीपर सीता की खिल्ली उड़ा रही थीं। कुछ उसकी प्रशंसा कर और मद पीकर अपने होंठ चाट रही थीं।

हनुमान बड़ी सावधानी से अब उन दुरात्मा राक्षसियों की दृष्टि बचाकर उसी वृक्ष पर छिपकर बैठ गए। धीरे-धीरे रात्रि व्यतीत होने लगी। वेदज्ञाता याज्ञिक राक्षसों की वेद-ध्वनि सुनाई देने लगी। सुदूर राजमहालय से मंगल वाद्यों का घोष सुन पड़ने लगा। प्राची में अरुणोदय हुआ। रक्षपति रावण नियमित विधि से नित्यकर्म से निवृत्त हो सीता को देखने अशोक-वन में आया। वह प्रभातकालीन आभरण देह पर धारण किए हुए स्वर्ण पालकी में बैठा था, जिसे बत्तीस तरुणियां कन्धे पर उठा रही थीं। रावण की अवाई जान सब रक्षिकाएं सावधान

हो गईं। वन-प्रहरी भी सजग हो गए और हनुमान भी भली भांति से अपने को वृक्षों के पत्तों में छिपाकर बैठ गए।

सीता ने जब रक्षपति रावण को अपने निकट आते देखा तो वे केले के पत्ते के समान भय से कांपने लगीं। उन्होंने अपने अंग अपने ही में सिकोड़ लिए। जांघों से पेट और भुजाओं से स्तनों को छिपा लिया। वह अश्रुपूरित नेत्रों से अधोमुखी हो जड़वत बैठी रहीं।

रावण ने धीरे-धीरे उस शोकाकुल मलिनवेशा सीता के पास आकर उसे देखा। वह श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने पर भी मलिनवेशा होने से हीनकुलोत्पन्न-सी लग रही थी। उपवास, शोक और भय से वह अति कृश हो गई थी। आहार उसका बहुत कम था। तप ही उसका जीवन था।

रक्षपति रावण दयार्द्र हो सीता के पास जाकर कहने लगा—"भद्रे सीते! मुझे देख तूने अपने अंग समेट लिए। तू किसलिए अपने को नष्ट करना चाहती है? अरी सुन्दरी, तुझ शत्रु-स्त्री को मैं प्रेम करता हूं, तो तू भी मेरा आदर कर, भय त्याग। राम को भूल जा। और इस रक्षपुरी के सब भोग भोगकर मेरे साथ रमण कर। तू कहे तो मेरे अधिकार-परे इस पृथ्वी पर जितने नगर-लोक हैं, वे सब जीतकर मैं तेरे पिता जनक को दे दूंगा। मेरे मणि-हर्म्य में जितने रत्न-स्वर्णद्रव्य हैं, तू उन सबको जैसे चाहे लुटा दे। मैं सप्तद्विपाधिपति सर्वजयी महिदेव रावण तेरा दास हूं। तू हंसकर मुझे आज्ञा दे कि तेरा क्या प्रिय करूं। उस साधारण चीर धारण करने वाले राजभ्रष्ट निष्कासित दुरात्मा राम से अब तेरा क्या लेना-देना है? जीवन का सार यौवन है, यौवन का सार भोग, भोग का सार वैभव। तू अब भी राम की रट रटे जाती है, जो तपस्या, बल, पराक्रम, धन, तेज, यज्ञ किसीमें भी मेरी समता नहीं कर सकता। सो हे भीरु! मुझपर प्रसन्न हो जा और जीवन का भोग भोग, जीवन सफल कर।"

तब सीता ने तृण की ओट करके कहा—"हे राक्षसेन्द्र, उच्च कुल में मेरा जन्म हुआ है तथा विवाह पवित्र कुल में हुआ है। मैं लोकनिन्दित आचरण नहीं कर सकती। तू अपनी ही स्त्रियों में मन लगा। तू मेरी याचना के योग्य नहीं है। मैं पराई स्त्री हूं, सती हूं, पतिव्रता हूं। तू सर्वज्ञ है, बहुज्ञ है, महिदेव है, धर्माधर्म का ज्ञाता है, विश्रुत है, सो तुझे उचित है कि तू स्वधर्म में दृष्टि रखकर सज्जनों के मार्ग का अनुसरण कर! तू जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करता है, उसी भांति पराई स्त्रियों की भी रक्षा कर। क्या तू इतना भी नहीं जानता कि जिस

पुरुष का मन पराई स्त्री पर चंचल होता है—उस पापात्मा का उस स्त्री द्वारा अपमान ही होता है ?"

सीता के ये वचन सुन, रावण के साथ जितनी गन्धर्व और यक्ष-कन्याएं थीं, प्रसन्न मुद्रा से जनकनन्दिनी की ओर देखने लगीं। किसीने नेत्रों से और किसीने मुख की भावभंगिमा से सीता को धैर्य बंधाया। परन्तु रावण क्रोध से अधीर हो गया। उसने कहा—"मेरे प्रिय और मधुरव्यवहार का तूने इतना कठोर उत्तर दिया! मैंने तुझे जो अवधि धर्म-मर्यादा से दी है, उसमें दो मास और हैं। तू उस राज्य-भ्रष्ट राम की अभी रट लगा रही है, सो तू मूर्ख स्त्री है, जो न देश-काल के औचित्य को समझती है, न हिताहित को।"

इसपर धान्यमालिनी नामक यक्षिणी ने आगे बढ़कर हंसते हुए रावण से कहा—"हे रक्षेन्द्र, इस दीना, मलिना, दुराराधिनी, विद्वेषिणी स्त्री से आपका क्या प्रयोजन है ? जो स्त्री जिस पुरुष से प्रेम नहीं रखती, उसकी चाह में शरीर भस्म हो जाता है। अनुरागवती स्त्री ही के प्रेम से रस-प्राप्ति होती है, सो सप्तद्वीपनाथ रक्षेन्द्र, मुझ प्रेमभाविता पर अनुग्रह करें। अन्य से आपका क्या प्रयोजन है ?"

यक्ष-कन्या के ये वचन सुनकर रावण हंसकर उसके कंधे पर हाथ रख उठ खड़ा हुआ तथा उसी भांति गन्धर्व, नाग, यक्ष, रक्ष सुन्दरियों से घिरा आवास को लौट गया।

अशोक वृक्ष पर बैठे हुए मारुति ने रावण की बातचीत एवं राक्षसियों की डांट-डपट तथा सीता का अनुताप सभी सुना था। अब उन्हें इस बात में तनिक भी सन्देह न रहा कि वही राम-पत्नी वैदेही सीता है। यह वह सीता है, जिसकी तलाश में असंख्य वानर पृथ्वी पर दिशा-दिशा में घूम रहे हैं। आज मैंने इन्हें पा लिया। मैंने शत्रु के बल का भी पता लगा लिया और राक्षसराज रावण का प्रभाव, वैभव और उसका पुर भी देख लिया। भगवती साध्वी सीता के मन की पवित्रता भी देख ली। वे कैसी पति के लिए आतुर-व्याकुल हो रही हैं! अब मैं कैसे इनके सम्मुख अपने को प्रकट करूं, कैसे इन्हें धैर्य बंधाऊं, कैसे इनके प्राणों की रक्षा हो ? पर इन राक्षसियों के सामने कैसे मैं सीता से बात करूं! मैं यदि अपने को प्रकट कर इन्हें ढाढ़स न दूंगा तो ये अवश्य प्राण दे देंगी। मेरा सबसे मुख्य काम यह है कि मैं अपने को यथावत् भगवती सीता पर प्रकट करूं और उनका विश्वासभाजन बनूं।

हनुमान मन में यह सब सोच ही रहे थे कि राक्षसियां मदोन्मत्त हो तथा त्रिजटा की डांट खाकर दूर चली गईं। इसी समय सीता ने भी

उन्हें देखा। अब उन्होंने सुअवसर पा मृदु-मन्द स्वर में मानवी भाषा में कहा—"इक्ष्वाकुवंश में महातजस्वी धर्मज्ञ राजा दशरथ हुए, जो भूमण्डल में सत्य-प्रतिज्ञ प्रसिद्ध हैं। उनके पुत्र श्री राम पृथ्वी के सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं। वे पिता की आज्ञा से उनके वचन की रक्षा के लिए पत्नी और भाई सहित वन आए थे। उन्होंने जनस्थान में चौदह सहस्र राक्षसों का वध किया। तब खर-दूषण के मर जाने पर रावण उनसे द्वेष करके मारीच की सहायता से उनकी पत्नी सीता को हर ले गया। श्री राम ने उस सीता का पता लगाने के लिए हमारे स्वामी वानरों के राजा सुग्रीव से मित्रता कर ली और उनके भाई वालि को मार उन्हें राज्य का स्वामी बनाया। सुग्रीव ने अपने सहस्रों वानरों को सीता की खोज में पृथ्वी के सब देशों में भेजा है। इधर गृध्रराज आर्य सम्पाति के कहने से मैंने सौ योजन समुद्र पार कर इस लंका में प्रवेश किया और अब जैसा श्री राम ने वर्णन किया, उसीके अनुरूप भगवती सीता को यहां देख रहा हूं।"

हनुमान के अमृत के समान प्रिय वचन सुन, सीता ने मुख पर से केश हटाकर मुंह ऊपर कर भली भांति हनुमान को देखा। उदयाचल से निकलते हुए सूर्य के समान उनका तेज था। क्षण-भर को वे अवाक् रह गईं। उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली। यह देख हनुमान उनके और भी निकट आ गए। तब सीता ने कहा—"जो कुछ मैंने सुना, यह यदि स्वप्न नहीं है, सत्य है, तो मैं वाणी के स्वामी बृहस्पति को, वज्रधारी इन्द्र को, वाणी के अधिष्ठाता अग्नि को नमस्कार करती हूं।"

तब मारुति ने उन्हें प्रणाम करके कहा—"देवि, मलिन पीताम्बर धारण करने वाली आप कौन हैं? आपके नेत्र क्यों शोकाश्रु बहा रहे हैं? दुःख से आपमें दीनता आ गई है। कहीं श्री राम दाशरथि की पत्नी सीता तो नहीं हैं?"

मारुति के ये वचन सुनकर सीता ने कहा—"भद्र, मैं भू-मण्डल के राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ की पुत्र-वधू तथा विदेहराज जनक की पुत्री हूं। मेरा नाम सीता है। हम दण्डकारण्य में रहते थे, वहीं से दुरात्मा रावण मुझे हर लाया। अब उसने मेरे जीवन की अवधि नियत कर दी है, जिसमें दो मास शेष रहे हैं।"

जब हनुमान को भली भांति विश्वास हो गया तो उन्होंने कहा—"देवि, मैं श्री राम का दूत हूं और आपकी सेवा में उनका संदेश लेकर आया हूं। श्री रामचन्द्र लक्ष्मण सहित सकुशल हैं और मेरे द्वार

आपकी कुशल पूछी है। वेदज्ञ और धर्मज्ञ राम आपकी कुशल जानना चाहते हैं।"

सीता ने कुछ आशंका, कुछ भय, कुछ हर्ष के भावों से अभिभूत हो कहा—"वत्स, तुम्हारी वाणी तो प्रिय है, परन्तु तुम राघवेन्द्र राम और लक्ष्मण की आकृति वर्णन तो करो, जिससे मेरी शंका मिटे। उनके रूप, अंग प्रत्यंग का भी तो कुछ बखान करो, जिससे मुझे प्रतीति हो।"

सीता के ये वचन सुन मारुति ने राम का मनोहर रूप वर्णन किया।

सीता को बहुत सान्त्वना मिली। वे आनन्द से आंसू बहाने लगीं। तब हनुमान ने स्निग्ध स्वर में कहा—"मातः, यह मेरे पास श्री राम के नाम की अंकित मुद्रिका है। इसे देखिए, आपकी प्रतीति के लिए उन्होंने मुझे दी थी।"

मुद्रिका को देख और पहचान कर सीता आनन्दविभोर हो उठीं। उन्होंने कहा—"अरे सौम्य, तेरी जय हो, तेरा पराक्रम श्लाघ्य है, शक्ति अपार है, तू परम मेधावी और चतुर है। तेरा साहस अद्भुत है कि राक्षसों से भरी हुई इस लंका में अकेला ही घुस आया है। तूने असीम सागर को पार करके मुझे जीवनदान दिया है। हे निर्भय, सत्य-प्रतिज्ञ, तेरी जय हो! तेरी बात से मुझे ढाढ़स हुआ। भला भाई लक्ष्मण-सहित श्री राघवेन्द्र कुशल से तो हैं? अब वे कब प्रलयाग्नि के समान क्रोध करके इस पुरी को भस्म करेंगे? कह वत्स मारुति, राघवेन्द्र अपने में दुःखी तो नहीं रहते? वे मुझे भूल तो नहीं गए?

तब मारुति ने उन्हें भांति-भांति से आश्वस्त करते हुए कहा कि जल्दी ही श्री राम यहां आएंगे और सीता की इच्छा पूरी करेंगे।

मारुति के ये वचन सुन सीता ने कहा—"हे पवनपुत्र, भाग्य ही प्रबल है। अब तुम जाकर उनसे कहो कि वे यहां आने में शीघ्रता करें, मेरे जीवित रहने की अवधि में अब केवल दो मास ही रह गए हैं। यहां एक धर्मात्मा पुरुष भी लंका में रहता है। वह रावण का छोटा भाई विभीषण है। उसने रक्षेन्द्र को बहुत समझाया कि वह मुझे लौटा दे। तो तुम विभीषण से मैत्री साधना। एक और वृद्ध सुशील राक्षस बुद्धिमान और विद्वान है। उसका नाम अविन्ध्य है। वह रावण रक्षेन्द्र का विश्वस्त मंत्री तथा प्रियजन है। उसने भी रक्षेन्द्र को समझाया है। सो तुम इन हितैषी राक्षसों से लाभ उठाना।"

तब हनुमान ने कहा—"देवि, श्री राम इस समय प्रस्रवण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। आप कहें तो मैं ही आपको इसी क्षण वहां ले

चलूं। मैं आपको श्रीराम के निकट उसी भांति ले जा सकता हूं, जैसे वायु यज्ञहवि को ले जाती है। परन्तु आपको मेरी पीठ पर दुर्लंघ्य सागर तैरना होगा। राक्षसों से मुठभेड़ की भी आशंका है। परन्तु आप साहस करें, तो मुझे भय नहीं है।"

सीता ने सोच-विचारकर कहा—"पुत्र, यह संगत न होगा। तुझे मुझे लेकर जाते देख राक्षस अवश्य तेरा पीछा करेंगे और तुझ निरस्त्र को घेर लेंगे। फिर कैसे तू युद्ध में मेरी और अपनी रक्षा करेगा? यह भी संभव है कि युद्ध करने के समय मैं तेरी पीठ से गिर जाऊं अथवा आतंक से मूर्छित हो जाऊं। फिर मैं स्वेच्छा से किसी पुरुष का स्पर्श भी नहीं कर सकती हूं। रावण के शरीर का स्पर्श तो उसके बलात्कार ही से हुआ है। इसलिए सौम्य, तू जाकर उन देव-दैत्यजयी पराक्रमी राघवेन्द्र को सेना-सहित यहां ले आ। मैं तेरी चिर-कृतज्ञ रहूंगी।

इसपर हनुमान ने कहा—"आपकी बात युक्तिसंगत है, स्त्री-स्वभाव और धर्म के भी अनुकूल है। यदि मैं पीठ पर आपको ले भी चलूं तो यह भी संभव है कि सौ योजन समुद्र लांघ ही न सकूं। फिर आप भी तो पीठ पर सौ योजन समुद्र के पार नहीं जा सकतीं। पर-पुरुष-स्पर्श की बात भी धर्मसम्मत है। आपकी शोचनीय दशा देखकर मैं व्याकुल हो गया था, इसीसे मैंने यह निवेदन किया था। अब आप अपना कोई चिह्न मुझे दे दीजिए, जिसे देखकर श्रीराम यह समझ लें कि मुझे आपके दर्शन हो गए।"

उन्होंने कपड़े में बंधी चूड़ामणि खोलकर हनुमान को देते हुए कहा—"इसे राघवेन्द्र भली भांति पहचानते हैं। इसे देखकर उन्हें तीन व्यक्तियों की सुध आएगी—माता, पिता और मेरी।"

प्रबल-पराक्रम मारुति ने भगवती सीता को देख लिया, उन्हें आश्वासन भी दे दिया, उनका संदेश और चिह्न भी प्राप्त कर लिया। परन्तु अभी उनका कार्य पूरा नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि जब युद्ध अनिवार्य है, तो शत्रु के पराक्रम का संतुलन भी कर लेना परम आवश्यक है।

मारुति का साहस असीम था। उसीके अनुसार आगा-पीछा विचार अब वे प्रकट रूप से अशोक-वन में विचरण करने लगे। इतना ही नहीं, वे फूलों को तोड़कर फेंकने, क्यारियों को बिगाड़ने, फलों को

खाने और सरोवरों को दूषित करने लगे। यह देख अशोक-वन की रक्षिका राक्षसियों ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने उसे सीता से बातें करते देखा था, पर बातचीत मानवी भाषा में हुई थी, इससे वे कुछ समझीं नहीं। अब उन्होंने उसे घेरकर कहा—"तू कौन है और कैसे इस रक्षित-निषिद्ध अशोक वन में घुस आया है?"

किन्तु हनुमान ने उनकी बात पर कान नहीं दिया। उन्होंने उनमें से बहुतों से ठठोली की, बहुतों को डरा दिया, बहुतों को खिझा दिया। इसपर वे शस्त्र लेकर मारुति पर आघात करने दौड़ीं। तब मारुति ने उनके शस्त्र छीन उन्हें प्रताड़ित कर दिया। अब वे अशोक वन को तेज़ी से नष्ट-भ्रष्ट करने और मन्दिरों को तोड़ने-फोड़ने लगे। उन्होंने अशोक वन का तोरण तोड़ डाला और वहीं रखे परिघ को हाथ में ले वहां के सब रक्षक राक्षसों को मार डाला।

अशोक वन के इस उत्पात का समाचार शीघ्र ही लंका में फैल गया। चारों ओर से लंका-निवासी राक्षस उसे देखने अशोक वन में आ जुटे। हनुमान ने रावण के कुलदेवता का मन्दिर भी तोड़ डाला तथा वहां आग लगा दी। यह सूचना पा अशोक वन के रक्षकों का अधिपति प्रहस्त-पुत्र जाम्बमाली स्वयं धनुष-बाण ले, रक्त-वस्त्र पहन, रथारूढ़ हो, अशोक वन में आया। उसने नाराच बाणों की मार से मारुति को विकल कर दिया। तब हनुमान ने सिंह-विक्रम से छलांग मारकर जाम्बमाली की छाती में वही परिघ वेग से घुमाकर दे मारा, जिससे जाम्बमाली खून वमन करता हुआ भूमि पर गिर गया। महाबली जाम्बमाली को इस प्रकार गिरता देख राक्षस चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे। तब हनुमान ने जाम्बमाली को पृथ्वी पर पटककर मार डाला एवं उसका रथ तोड़, घोड़ों को विकलाङ्ग कर दिया।

यह सूचना युवराज मेघनाद को दी गई तो उसने विरूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघ्यस और भासकर्ण महारथियों तथा सात मंत्रिपुत्रों के साथ सैन्यसहित राजपुत्र अक्षयकुमार को अशोक वन भेजा।

अक्षयकुमार बड़ा धनुर्धर था। लक्ष्यवेध का उसे बड़ा घमण्ड था। उसने तीन बाण हनुमान के मस्तक पर मारे। इसपर क्रुद्ध हो मारुति उछलकर अक्षयकुमार के रथ पर चढ़ गए। अनेक राक्षस भटों के संरक्षण में रहते हुए भी उन्होंने अक्षयकुमार को रथ से खींचकर भूमि पर ला पटका। मुहूर्त-भर दोनों योद्धाओं में मल्ल-युद्ध हुआ। अन्त में हनुमान ने अक्षयकुमार के वक्ष को लातों से रौंद डाला, जिससे

वह छटपटाता हुआ मर गया।

अक्षयकुमार के निधन से सारी ही लंका में वानर का आतंक छा गया। अक्षयकुमार के निधन से संतप्त और असंयत मेघनाद स्वयं रथ पर चढ़ अशोक वन में आया। मेघनाद के अभियान से सारी ही लंका में उद्वेग फैल गया। उसके रथ-घोष तथा धनुष-टंकार से बार-बार उत्तेजित राक्षस-सैन्य जयघोष करने लगी। महाबली इन्द्रजित् ने आते ही हनुमान को बाणों से ढांप लिया। वे जिधर भी जाते, उधर ही बाणों में घिर जाते। इन्द्रजित् का यह हस्तलाघव और कौशल देख मारुति बड़े आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने देखा, यही एक अजेय योद्धा है, जिसका सामुख्य नहीं किया जा सकता। उन्होंने समय, काल और कूटनीति का आश्रय ले युद्ध त्याग दिया और हाथ उठाकर इन्द्रजित् से कहा—"हे वीर, मैं दूत हूं और अवध्य हूं। परन्तु मैं अपना अभिप्राय केवल रक्षेन्द्र की सेवा में ही निवेदन कर सकता हूं। मैंने केवल आत्मरक्षार्थ युद्ध किया है—आक्रमण नहीं किया।"

इन्द्रजित् ने आज्ञा दी कि इस वानर को बांधकर रक्षेन्द्र की सेवा में ले जाया जाए। राक्षस उन्हें रस्सियों से बांधकर पीड़ा देते हुए रक्षेन्द्र की सेवा में ले गए। बहुत-से राक्षस उनपर मुक्कों से प्रहार कर रहे थे, पर हनुमान बिना प्रतिकार किए चल रहे थे।

मारुति रावण की सभा में पहुंचे। पुत्र के निधन से रावण क्रोधित और शोकपूरित था। वह स्वर्ण-कुण्डल पहने स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन था। उसका मुकुट हीरों, मोतियों और मणियों की आभा से जगमगा रहा था।

रस्सियों से बंधे हनुमान को सम्मुख देख रोष से अभिभूत रावण ने मंत्रियों की ओर देखकर कहा—"इस दुरात्मा से पूछो कि यह कौन है, किस अभिप्राय से अनधिकृत रूप से यह लंका में आया है? किसलिए हमारे अशोक वन में इतना उपद्रव किया तथा हमारे प्रियजनों को मारा?"

रावण के ये वचन सुनते ही मारुति ने कहा—"हे रक्षेन्द्र, मैं महात्मा सुग्रीव का सचिव हनुमान हूं तथा उन्हींका भेजा हुआ आपकी सेवा में दौत्य-कार्य के लिए आया हूं। उन्होंने जो संदेश मेरे द्वारा आपके पास भेजा है, वह मैं निवेदन करता हूं। इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ के पुत्र राम धर्ममार्ग का आश्रय ले अपनी पत्नी सीता और भ्राता लक्ष्मण सहित दण्डकारण्य में आए थे। वहां से उनकी पत्नी जनक-सुता को कोई दुरात्मा चोर चुरा ले गया। उनकी खोज करते

हुए दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वत पर आए और उन्होंने वानरों के अधिपति सुग्रीव से मित्रता कर ली। उनके हित के लिए श्री राम ने महाबली बालि का वध कर सुग्रीव को वानरों का अधिपति बनाया। अब हम वानर सीता की खोज में अपने स्वामी की आज्ञा से निकले हैं। मैं उन्हींकी खोज करता हुआ आपकी लंका में आया हूं। मैंने यहां अशोक वन में भगवती सीता को देखा है। आप महामति हैं। धर्मज्ञ हैं। अर्थ-काम को भली भांति समझते हैं। अतः पराई स्त्री का इस प्रकार हरण करके बलात् घर में रखना आपके लिए हर तरह अशोभनीय है। आप परम नीतिवान हैं, आप जानते हैं कि धर्म-विरुद्ध काम करने से अनर्थ ही होता है। श्री राम से विरोध करना रक्षेन्द्र के लिए हितकर नहीं होगा। इसलिए आप रक्ष-महीपति, मेरी धर्मानुकूल बात मान, रघुकुल-वधू, भगवती सीता को सम्मान-सहित श्री राम के पास भेज दीजिए। इसीमें आपकी भलाई तथा कुशल है। अब अपना हिताहित सोचने में रक्षेन्द्र ही प्रमाण हैं।"

रावण बोला—"इस दुरात्मा को बांधकर अपमानपूर्वक लंका की गली-गली और राजमार्ग-चतुष्पथों पर घुमाया जाए। पीछे इसके हाथ में बहुत-सा वस्त्र लपेट, उसे तेल से भिगो तथा उसमें आग लगाकर इसे लंका से बाहर निकाल दिया जाए।"

रावण की इस आज्ञा का तुरन्त पालन हुआ। हनुमान को इससे अपार लाभ हुआ। लंका के सब घर-घाट उन्होंने देख लिए। वन, वीथी, राजमार्ग, हर्म्य, दुर्ग, परिधि भी उन्होंने नजर में तोल लिए। मन ही मन वे भावी युद्ध की योजना बना, कहां कौन स्थान किस उपयोग में आ सकता है, यह निर्णय करने लगे।

दिन-भर उन्हें घुमाया गया। सन्ध्या होने पर उनके दोनों हाथों को वस्त्र से लपेट और तेल से तर करके, उनमें आग लगा, उन्हें लंका से बाहर फेंक दिया गया।

हनुमान ने तुरन्त ही अपने हाथों को मुक्त किया। अदूरदर्शी राक्षसों ने फिर उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। इसके बाद वे सावधानी से फिर लंका में प्रविष्ट हो गए। फिर वे छिपते हुए धीरे-धीरे रावण के मणिमहल की ड्योढ़ियों में पहुंच, छद्मवेश में हर्म्य में घुस गए। उनके पास तेल में भीगा हुआ ज्वलनशील बहुत-सा वस्त्र था जो राक्षसों ने उनके हाथों में लपेट दिया था। अब अकस्मात् उनके मन में एक भीषण विचार आया। उसीको एक उपयुक्त स्थान में रख और उसके निकट बहुत-सा काष्ठ एकत्र कर उन्होंने उसमें आग लगा

दी और जब मणिमहल के निवासी प्रथम प्रहर की मदमूर्छित निद्रा का आनन्द ले रहे थे, आग की लपटों ने अनायास ही मणिमहल को घेर लिया। शीघ्र ही अनुकूल वायु पाकर आग की लपटें आकाश को छूने लगीं। महालय में भगदड़ मच गई। कहीं कुछ भी व्यवस्था न रही। सर्वत्र आग ही आग थी। उसी भगदड़ और कोलाहल में हनुमान वहां से अन्तर्धान हो बाहर निकल आए।

अब हनुमान ने समूची लंका को धांय-धांय भस्म होता छोड़ समुद्र-लंघन का संकल्प किया। वे अरिष्ट गिरि की चोटी पर चढ़ गए। यह स्थान निर्जन था। वहां उत्तम वन-फल, मीठा जल एवं सघन छाया थी। उन्होंने जल पिया, फल खाए और विश्राम किया। फिर वे धीरे-धीरे नीचे आ समुद्र-गर्भ में पैठ गए। सागर की उतुङ्ग तरंगों पर उनका वज्रकाय थिरकने लगा। पृथ्वी में न देखा-सुना, हनुमान का यह अद्‌भुत आश्चर्यजनक अभियान सम्पन्न हुआ।

३३

समुद्र-तट पर पहुंच हनुमान ने वज्र-गर्जना की, जिसे सुनकर सब वानर उत्सुक हो 'यह तो मारुति की गर्जना है'—कहकर समुद्र-तट की ओर भागे। उन्होंने रक्त वस्त्र हवा में हिला-हिलाकर अपनी उपस्थिति का संकेत किया। ज्योंही उन्होंने हनुमान को समुद्र-तीर पर सिकता पर बैठे देखा, वे ज़ोर-ज़ोर से हर्षनाद करते हुए उनके निकट पहुचे और उन्हें घेरकर उनका कुशल पूछने लगे। मारुति ने प्रसन्नवदन वृद्ध जाम्बवान् और अंगद को अभिवादन करके कहा—"भाइयो, मिथिलेशकुमारी सीता का मुझे दर्शन हो गया।"

यह सुनते ही वानरवृन्द हर्ष से उन्मत्त हो गए। सबने मिलकर हनुमान का अर्घ्य-पाद्य से सत्कार किया। स्नान, भोजन और विश्राम से निवृत्त हो, सब उन्हें घेरकर बैठ गए। सभी समाचार सुनने को उत्सुक हो रहे थे। मारुति ने एक-एक कर लंका की सारी ही अघट घटनाएं कह सुनाईं। अन्त में कहा—"मैं मैथिली सीता को असहाया-वस्था में भयानक राक्षसियों के पहरे में छोड़ आया हूं। वे अपनी वेणी भी नहीं गूंथती हैं। उनके केशों की जटाएं बन गई हैं। उपवासों से वे अति दुर्बल हो गई हैं। वे हर समय श्री राम का नाम रटती हैं। सो हे वानर श्रेष्ठ, श्री राम की कृपा और आप सबकी शुभ कामना से मैंने वानरपति सुग्रीव का यह कार्य सिद्ध कर दिया। अब

आप महानुभाव शेष कार्य सफल करें, क्योंकि आप हर तरह समर्थ हैं।" हनुमान के ये वचन सुनकर यूथपति युवराज अंगद ने कहा—"हे मारुति, तुमने अनहोना कार्य किया है। बल और पराक्रम में पृथ्वी पर तुम्हारे समान दूसरा नहीं है। तुमने हम सभीकी प्राणरक्षा कर ली तथा मर्यादा रख ली। अब यह विचार करना चाहिए कि हमें आगे क्या करना होगा।"

हनुमान ने कहा—"सुनो, हम सब कुछ करने में समर्थ हैं। आप यदि ठीक समझें तो हम सब लंका चलें और रावण को मार लंका का विध्वंस कर सीता को श्री राम की सेवा में ले चलें। भावी कार्यक्रम वयोवृद्ध जाम्बवान् आदि की सम्मति पर निर्भर है। आप लोग सम्पूर्ण शास्त्रों और शस्त्रों की विद्या के ज्ञाता हैं। पराक्रमी और समर्थ हैं। सम्पूर्ण राक्षसों का हनन करने में तो अकेले युवराज अंगद ही यथेष्ट हैं। फिर महात्मा नील हैं, मैन्द हैं, द्विविद हैं। पृथ्वी पर देव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, यक्ष इनमें कौन ऐसा है जो हम वीरों से टक्कर ले सके? मैं तो अकेला ही समूची लंका को जलाकर छार कर आया हूं। हमारे लिए रावण को मारकर सीता का उद्धार करना क्या कठिन बात है? मैं अशोक वन में बैठी शोकविदग्धा सीता को बहुत-बहुत आश्वासन दे आया हूं और उनके वध की जो अवधि रावण ने नियत की है, उसमें अब बहुत कम काल शेष है।"

अर्थतत्त्व के ज्ञाता जाम्बवान् ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा—"हे महाबाहु, तेरा यह विचार मुझे उचित नहीं जंचता। हमारे स्वामी सुग्रीव ने हमें केवल सीता की खोज ही की आज्ञा दी है। इसलिए हमें दुस्साहस नहीं करना चाहिए, प्रत्युत अब जल्द हमें सुग्रीव तथा श्री राम की सेवा में उपस्थित होना और जो कुछ हमने किया है, उसका निवेदन करना चाहिए। महत्त्वपूर्ण कार्यों में स्वेच्छाचारिता और उतावली नहीं करनी चाहिए।"

महाप्राज्ञ जाम्बवान् के ये वचन सुन सब वानर प्रसन्न हो किष्किन्धा की ओर चलने का संकल्प कर महेन्द्र पर्वत से उतर उत्साह और वेग से अपनी राह लगे।

३४

वानरों का यूथ उत्साह और उमंग में भरपूर था। अब युद्ध की उमंग उनके रक्त में भरी थी। कार्य-साफल्य के श्रेय ने उन्हें अदम्य

कर दिया था। वे अब राम को प्रिय संदेश निवेदन करने और लंका पर अभियान करने को बेचैन हो रहे थे। वे परस्पर उत्साहवर्धक बातचीत करते जा रहे थे। शीघ्र ही वे सुग्रीव के सुरक्षित मधुवन में जा पहुंचे। सुग्रीव का मामा दधिमुख वहां का रक्षक था। उसकी तनिक भी आन न मानकर वे मधुवन में उत्पात मचाने और मधुपान करने लगे। उनके उत्पात से क्रुध हो दधिमुख ने सुग्रीव से निवेदन किया। सुग्रीव ने हंसकर कहा—"समझ गया! वे कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। तभी उन्होंने यह साहस किया है। उन्होंने अवश्य ही भगवती सीता का पता लगा लिया है। उनके उत्पात उनके हृदय के आनन्द के द्योतक हैं। जाओ, उनसे कहो—मैं उनपर प्रसन्न हूं। उनका अपराध क्षमा करता हूं। अब तुम हनुमान आदि प्रमुख वानरों को शीघ्र मेरे पास भेज दो।"

दधिमुख ने स्वामी का यह भाव देखा तो मधुवन में जाकर अंगद से विनम्र भाव से कहा—"आप युवराज हैं, हमारे स्वामी हैं, हमारा अविनय क्षमा कीजिए तथा मधुवन में यथेच्छ विहार कीजिए—यथेच्छ मधुपान कीजिए। अब आप और हनुमान प्रमुख यूथपति महाराज सुग्रीव की सेवा में उपस्थित हों। वानरराज प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इनपर अंगद ने कहा—"वीरो, यद्यपि मैं युवराज हूं, तथापि आप लोगों पर शासन नहीं कर सकता। आप लोगों ने महान कार्य सम्पन्न किया है। आपपर शासन करना आपका अपमान करना है।"

अंगद के ये वचन सुन जामवन्त ने कहा—"युवराज, आपके समान ऐसे वचन कोई नहीं कह सकता। स्वामी होकर भी अपने अधीन जनों से कौन इस प्रकार की बातें करेगा? चलिए, अब हम श्री राम की सेवा में चलकर प्रिय संदेश निवेदन करें।"

श्री राम के निकट पहुंचकर, मारुति हनुमान ने आगे बढ़ राम के चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया—"हे सीतापते, आपके आशीर्वाद से मैंने भगवती सीता के दर्शन कर लिए। वे अपने प्राण त्यागने के लिए उपवास कर रही हैं। महाराज, मैं सौ योजन दुर्धर्ष समुद्र का लंघन कर लंका में पहुंचा, जो समुद्र के बीच दक्षिण में है। वहां मैंने अशोक वन में भगवती सीता को पतिव्रत के कठोर नियमों का पालन करते हुए देखा। वे शरीर से कुशल हैं। अपने जीवन को अप्रिय समझकर भी वे जीवित हैं। भयानक राक्षसियां उन्हें हर समय घेरे रहती हैं, उन्हें डराती-धमकाती हैं। भगवती सीता उन राक्षसियों की सभी यातनाएं सहती हैं। वे एक ही चोटी करती हैं। भूमि पर सोती हैं।

उपवास से उनका शरीर क्षीण हो गया है। वे अत्यन्त दयनीय दशा में जीवन के शेष दिन ज्यों-त्यों करके व्यतीत कर रही हैं। वे निरन्तर आप ही के ध्यान में मग्न रहती हैं। मैंने उन्हें आप ही के ध्यान में रत दीनावस्था में देखा है।"

मारुति के ये वचन सुन राम ने उठकर मारुति को हृदय से लगाया। तब हनुमान ने कौए का वृत्तान्त सुनाकर सीता की दी हुई मणि राम को दी जिससे राम को पूरी प्रतीति हो गई। तब हनुमान ने कहा—"अब भगवती की जीवन-अवधि में केवल एक मास ही शेष है।"

राम ने मणि को छाती से लगाकर आंखों से अश्रुजल गिराते हुए सुग्रीव से कहा—"हे मित्र, इस मणि को देखकर आज मैं शोक-सागर में डूबा जा रहा हूं। यह मणि समुद्र से निकली हुई है। मेरे श्वसुर को प्रसन्न होकर देवताओं ने दी थी। उन्होंने मेरे विवाह के अवसर पर अपनी पुत्री सीता को दी। सीता इसे सदा मस्तक पर धारण करती थी। अब पवनकुमार ने मुझ मृत व्यक्ति को अमृत के समान यह मणि देकर मेरी निराशा दूर की है। पर सीता के बिना यह मणि देखकर मैं धैर्य कैसे रख सकता हूं! हे मित्र, अब विलम्ब का क्या काम है? चलो, दुरात्मा रावण के चंगुल में फंसी हुई विदेहनंदिनी का हम उद्धार करें। हनुमान ने बड़े साहस का काम किया है। ऐसा काम संसार में और किसी वीर ने नहीं किया। हे वीर मारुति, तुम धन्य हो! भला तुम्हारे सिवा देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नागों से भी अजेय रावण से रक्षित लंकापुरी में अपने बल के भरोसे जाकर कौन जीता लौट सकता था? तुमने जनकनन्दिनी का संदेश देकर मेरी और रघुवंश की रक्षा की है। मेरे पास तुम्हारे योग्य कोई पुरस्कार भी तो नहीं है।" यह कहते-कहते प्रेम-विभोर हो राम ने हनुमान को छाती से लगा लिया। फिर उन्होंने शोकसंतप्त हो सुग्रीव से कहा—"हे मित्र, सीता का पता लग गया, पर बीच में समुद्र बाधक है। उसे पार करना दुस्तर है। कहो, कैसे यह दुस्तर कार्य पूरा होगा? कैसे यह वानर दल इसे पार कर लंका पहुंच सकेगा?"

सुग्रीव ने कहा—"हे मित्र, जब सीता की खोज मिल गई और शत्रु के निवास का पता लग गया, तो फिर अब शोक का क्या काम! हम लोग अनायास ही इस सागर को पार कर लंका को छार कर डालेंगे। आप शोक त्याग दीजिए। हे राम, शोकाकुल और उत्साह-हीन पुरुष के सभी काम नष्ट हो जाते हैं। इसीसे वह आपद्ग्रस्त हो

जाता है। ये वानर-यूथपति सब प्रकार समर्थ और महा शूरवीर हैं। आपके प्रिय के लिए ये आग में भी कूद सकते हैं। बस, अब हमें समुद्र पर पुल बांधने का यत्न करना चाहिए। समुद्र पर पुल बंधे बिना तो देवराट् इन्द्र सहित समस्त देव, दैत्य, किन्नर, मानव, दानव भी लंका का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। परन्तु पुल बंधने पर बस एक बार लंका हमारी आंखों में चढ़े तो उसे नष्ट हुआ और रावण को मरा ही समझिए। हमारे योद्धा स्थिर और अजेय हैं। विजय निश्चय हमारी ही होगी। अब आप शोक त्याग दीजिए। शोक सब कामों को बिगाड़ देता है। जिस काम के लिए बल-विक्रम की आवश्यकता है, उसमें शोक बाधक है। अतः आप शोक को त्याग विक्रम को हृदय में स्थान दीजिए। आप सब शास्त्रों के ज्ञाता तथा महास्त्रों के अधिपति हैं। अतः हम अपने योग्य मंत्रियों की सहायता से अवश्य शत्रु पर विजय प्राप्त करेंगे।"

सुग्रीव से ऐसी युक्तिसंगत वार्ता सुनकर राम ने साभिप्राय हनुमान की ओर देखकर कहा—"हे सौम्य, सुना जाता है कि लंका पर विजय पाना तथा उसमें प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिए मैं जानना चाहता हूं कि लंका में कितने दुर्ग हैं? अपने नेत्रों से देखे हुए के समान ही मैं उसका विवरण स्पष्ट सुनना चाहता हूं। हे वीर, तूने समूची लंका का युद्ध की दृष्टि से गहन अध्ययन किया है। इसलिए कह कि रावण की सेना कितनी है और लंका की रक्षा के लिए उसने क्या उपाय कर रखे हैं?"

श्री राम के ये वचन सुनकर हनुमान ने कहा—"हे रघुवंशमणि, लंकावासी राक्षस अति सम्पन्न हैं। वहां बड़े-बड़े मस्त हाथी हैं। विशाल रथ हैं। राक्षस भट बड़े शूर हैं। वे यत्न से लंका की रक्षा रात-दिन करते हैं। लंका में चार विशाल द्वार हैं। उनमें अत्यन्त दृढ़ फाटक लगे हैं, जिनमें मोटी-मोटी अर्गलाएं लगी हैं। उन अर्गलाओं पर बड़े विशाल उपल अस्त्र लगे हैं, जो शत्रु-सेना को रोकने के लिए हैं। लंका के चारों ओर स्वर्णिम चहारदीवारी है, जिसमें बीच-बीच में मणि, मूंगा और मोती लगे हैं। चहारदीवारी के चारों ओर ठण्डे जल की बड़ी भयानक गहरी खाई है, जिसमें बड़े-बड़े मगरमच्छ भरे पड़े हैं। उस खाई पर द्वार तक पहुंचने के लिए बड़े-बड़े विस्तृत मार्ग हैं जिनमें यन्त्र लगे हैं। उन यन्त्रों द्वारा शत्रु-सेना को खाई में गिरा दिया जाता है। इन संक्रमों में एक तो बड़ा ही दुर्भेद्य है। वह सोने के बने खम्भों और वेदियों से सुशोभित है। वहां बहुत-सी सेना

रहती है, जिसकी देखभाल सेनापति करते हैं।

"रावण स्वयं सावधानी से सेना का निरीक्षण करता रहता है। लंका पर आक्रमण देवों के लिए भी दुरूह है। उसके चारों ओर तो दुर्लंघ्य समुद्र, खाई, वन, पर्वत और दुर्भेद्य चहारदीवारी है, जिसने उसे अजेय बना दिया है। वहां नौका भी नहीं जा सकती। ऐसी ही यह दुर्गम लंका है, जो त्रिकूट-शिखर पर बसी है। दस-दस हज़ार भयंकर राक्षस सुभट हाथों में शूल लेकर प्रत्येक द्वार की रखवाली करते हैं, जिनकी सहायता के लिए चतुरंगिणी चमू सदा तैयार रहती है। किन्तु मैंने संक्रमों को तोड़ दिया, लंका को जला डाला, वहां की व्यवस्था भंग कर दी और भय एवं आतंक का राज्य स्थापित कर आया हूं। अब तो हमें समुद्र पार करने ही का प्रयास करना है, फिर तो लंका विनष्ट ही समझिए। अंगद, द्विविद, मैंद, जाम्बवान्, पनरु, नल नील आदि महारथ, वानर-यूथपति तथा वानरराज सुग्रीव, इस दुर्जय-दुर्धर्ष लंका के सब कोट, परकोट, खाई को नष्ट कर सीता का उद्धार करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

मारुति के वचन सुन राम कुछ देर विचार मग्न रहे। फिर खड़े होकर उन्होंने जलद-गम्भीर स्वर में कहा—"हे वानरेन्द्र, हम सब राक्षसों-सहित लंका का विध्वंस करेंगे। सूर्यदेव अब मध्याकाश में पहुंच चुके। आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है। कल चन्द्रमा क्षीण नक्षत्र पर होगा। इसलिए हमें आज ही विजययात्रा करनी है। तो अभी सेना को प्रस्थान की आज्ञा हो!"

सुग्रीव ने कूच के नगाड़े बजवा दिए। सबसे आगे सेनापति नील अपने अग्रगामी दल को लेकर चला। सुग्रीव ने कहा—"सौम्य तुम पथ-प्रदर्शन करो, पथ-परिष्कार करो, दुर्गम स्थल को गम्य बनाते चलो। ऐसे मार्ग का परिशोध करो, जिसमें यथेष्ट जल-फल-मूल-आहार प्राप्त होता जाए। सन्निवेश की सुविधाएं हों। शीतल जल और मधु यथेष्ट मिल सके। शत्रु मार्ग में आहार को दूषित न कर सके। आसपास की दिशाओं की सुरक्षा का भी ध्यान रखो। मार्ग के गढ़े गह्वर, दुर्गम वन सभीका परिष्कार करो। स्थान-स्थान पर चौकियां स्थापित करो। पथ-प्रदर्शकों के यूथ बनाओ। सावधान रहो कि आगे चलने पर पीछे से शत्रु के आक्रमण की आशंका न हो।" नील के यूथ शत-सहस्र दल बनाकर अपने-अपने कार्य करते आगे चले

और उनके पीछे समुद्र के समान वेगशाली वानरों की अथाह सैन्य चली। पर्वताकार गव, गवय और गवाक्ष अपने यूथ ले आगे बढ़े। सेनानायक ऋषभ वानर-सैन्य के दक्षिण पक्ष की रक्षा करते चले। मत्त गजराज के समान दुर्जय गन्धमादन सेना के वाम पार्श्वरक्षक बन कर चले। सेना के मध्य भाग में ऐरावत के समान हाथी पर श्री रा चले। उनके आगे-पीछे अंगरक्षक, दायें-बायें हनुमान, लक्ष्मण तथ युवराज अंगद चले—उनके पीछे वानरराज सुग्रीव मन्त्रियों औ सेनापतियों सहित। सबके अन्त में सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा कर महाविक्रम ऋक्षराज जाम्बवान, सुषेण और वेणदर्शी वानर-यूथप अपने यूथों-सहित चले। सम्पूर्ण सेना का अधिनायक सुग्रीव सेन पतियों, गुल्मनायकों को आज्ञा देता चला। प्रतापी नील अपने सा प्रजंघ, वलीमुख, जम्भ और रक्षक को लिए बड़े संयम और चातु से आगे-आगे राह बताते तथा पथ-प्रदर्शन करते जा रहे थे। सुग्री की कठोर आज्ञा थी कि मार्ग में नगर, उपवन, सरोवर और ग्रा को हानि न होने पाए।

इस प्रकार वानरी सेना सारी पृथ्वी को ढकती चलकर सह्या गिरि पर जा पहुंची।

श्री राम ने समस्त कटक को सह्याद्रि गिरि पर विश्राम कर का आदेश दिया। आदेश पा वानर प्रसन्न हो-होकर शिलाखण्डों बैठ चन्दन की सुगन्ध से सुवासित वायु का आनन्द लेने लगे। पर्व शिलाओं पर उत्पन्न केतकी-माधवी, वासन्ती, कुन्द, चिरु, विल्व, मधू आम, पाटल, अर्जुन, शिशपा आदि समस्त लताद्रुम को देख वानरों यूथ आनन्द से कोलाहल करने लगा। कुछ चक्रवाक, जलकुक्कुट, हं आदि पक्षियों से युक्त सरोवरों में जलक्रीड़ा करने लगे। इस प्रकार श्र दूर कर वानर-सैन्य आगे चलकर महेन्द्रगिरि पर जा पहुंची। वहां उसने प्रथम बार उस अथाह समुद्र के दर्शन किए। फिर पर्वत से उत समुद्र-तटीय वन में आ, वानरी कटक ने सन्निवेश स्थापित किया।

अपनी रक्षा में भली भांति सावधान वानर-सेना को नील ने कौशल के साथ समुद्र के तट पर ठहरा दिया। उसकी रक्षा के लि द्विविद और मैन्द वीर यूथपतियों को उनके यूथ-सहित नियुक्त किय यूथपतियों को कठिन आदेश दिया कि वे अपने यूथ से पृथक् न हों संदिग्ध पुरुष को शिविर में प्रविष्ट न होने दें। अपने-अपने यूथ सजग होकर रक्षा करें।

असहविक्रम, दुर्धर्ष मारुति के द्वारा अनायास ही लंका का विध्वंस होते तथा मारुति को दुस्तर सागर पार कर आते-जाते देख जगज्जयी महिदेव रावण का तेज जैसे बुझ-सा गया। वह क्रोध और शोक से अभिभूत हो गया। कभी किसी चिन्ता को पास न फटकने देने वाले प्रबल प्रतापी रावण के मन में अकस्मात् ही चोर बैठ गया। उसने यत्नपूर्वक लंका की सुरक्षा की व्यवस्था की। फिर भी वैकल्य से उसका मन भर गया। एक अज्ञात भीति ने उसे चंचल कर दिया। वह सोचने लगा कि 'सीता का हरण क्या उचित हुआ? इस दाशरथि से वैर बांधना क्या युक्तियुक्त हुआ? क्या यह भी संभव है कि वह राज्यभ्रष्ट मानव राजकुमार इस एक स्त्री के लिए अगम्य लंका तक आने का दुस्साहस करे? क्या उसका ऐसा प्रताप, तेज और शौर्य है कि मेरा साम्मुख्य करने का साहस करे? क्या उसे परिकर प्राप्त होगा। साधन मिलेंगे? पर उसने एकाकी ही जनस्थान के चौदह सहस्र राक्षसों का वध कर डाला है और इस धृष्ट वानर ने एकाकी ही अगम्य लंका में आकर मेरे तेज प्रताप के सिर पर लात मार लंका में अग्निदाह किया है। यह सब तो अचिन्त्य है, असम्भाव्य है। परन्तु जो हो, मैं इस शत्रुपत्नी को छोड़ूंगा नहीं।'

सीता की याद आते ही सीता की मूर्ति उसके मानस-नेत्रों में आ उपस्थित हुई। उसने सोचा—अहा, सीता के समान सुन्दर स्त्री तो त्रैलोक्य में नहीं है। उस कमलनयनी चन्द्रवदनी सीता को स्मरण करके ही मैं कामदग्ध हो रहा हूं। परन्तु वह मेरी शय्या पर आना ही नहीं चाहती। ऐसी स्त्री तो मैंने कोई देखी ही नहीं। मेरे वैभव का उसे तनिक भी मोह-प्रलोभन नहीं। मेरे प्रताप से वह प्रभावित नहीं। वह तो उस भिखारी राम में ही अतिरंजित है। यह तो मूढ़ता की पराकाष्ठा है। परन्तु अब मुझसे रहा नहीं जाता। अवधि में तो अभी एक मास शेष है। यह कैसे कटेगा? अन्ततः मैं महिदेव सर्वजयी वैश्रवण पौलस्त्य हूं। मर्यादा के विपरीत भी तो मैं नहीं कर सकता। उस भिखारी राम का मुझे क्या भय है? वह साधनहीन है। वह क्या यहां लंका तक आने की मूर्खता करेगा? वह तो इस उद्योग में ही नष्ट हो जाएगा। यह दुस्तर सागर, यह दुर्लंघ्य लंका और ये अजेय राक्षस भट, इनके सम्मुख उस एकाकी मानव की क्या बिसात! पर वह अकेला वानर ही जब यहां आकर इस अत्यन्त सुरक्षित लंका में

इतना उत्पात मचा गया, तो फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि राम को यहां तक आने में सफलता नहीं मिलेगी। कार्य-सिद्धि के साधन अकल्पनीय हुआ करते हैं।

इन सब विचारों ने रावण को अस्थिर कर दिया। सहस्रों सुन्दरियों तथा भोग सामग्रियों से परिपूर्ण उसका मणिमहालय अब उसके अशान्त और उद्विग्न मन को प्रसन्न न कर सका। नृत्य, पान और विहार से उसकी रुचि खिन्न हो गई। हनुमान का असम पराक्रम और राम की भीति एक अशुभ छाया के समान उस महाप्रतापी वैश्रवण रावण के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा गई।

उसने अपने विश्वासी अमात्य महापार्श्व को बुलाकर परामर्श किया। महापार्श्व ने करबद्ध निवेदन किया—"देव, हिंस्र वन्य जन्तुओं से परिपूर्ण वन-प्रदेश में जाकर जो पुरुष मधु पाकर भी उसका सेवन न करे, उसे पान करने को विकल न रहे, उसे मूर्ख ही समझना चाहिए। आप जगज्जयी हैं, महिदेव हैं, पृथ्वी के स्वामियों के स्वामी हैं। आप ईश्वर हैं, क्यों नहीं आप इस शत्रु-पत्नी सीता के साथ बलात्कार से रमण करते? जिस प्रकार कुक्कुर झपटकर मादा को दबोचकर रमण करता है, आप भी उसी प्रकार अपनी इच्छापूर्ति कीजिए। इच्छापूर्ति के बाद फिर भय क्या है? शत्रु-पत्नी दूषित होने पर फिर भला राम उसका क्या करेगा? इसके अतिरिक्त यदि किसी प्रकार का भय उपस्थित हुआ भी तो उसका उचित प्रतिकार किया जाएगा। आप चिन्तित न हों, महाबली कुम्भकर्ण और तेजस्वी इन्द्रजित् आपकी सेवा में उपस्थित हैं। फिर लंका में जो सहस्रावधि भट हैं, वे किस दिन के लिए हैं? हम तो देवराट् को भी कुछ नहीं समझते। यहां आपका शत्रु आया भी तो हम उसे देखते ही देखते मार डालेंगे। आप निश्चिन्त रहिए।"

मंत्री महापार्श्व के ऐसे अनुकूल वचन सुनकर रावण प्रसन्न तो हुआ, परन्तु उसने कहा—"मैं महिदेव हूं, जगज्जयी हूं, विश्व के दुर्लभ भोगों का अधिपति हूं। देव, दैत्य, दानव सभीने अपनी कन्याएं मुझे सादर अर्पित की हैं। बहुत नाग, दैत्य, यक्ष-सुन्दरियों का मैंने हरण किया है। वे सब मेरी शय्या पर आना अपना परम सौभाग्य मानती हैं। सभी मेरा अभिनन्दन करती हैं, सभीका मैं स्वामी के समान उपभोग करता हूं। फिर क्या कारण है कि यह एक मानवी-स्त्री मेरा तिरस्कार करे? बलात्कार करने से सौन्दर्य का क्या रस प्राप्त होगा अरे, स्त्री जब तक स्वेच्छा से तन-मन पुरुष के अर्पण न करे, तब तक उस

स्त्री का आनन्द क्या ? यह मानवी मेरे समस्त ऐश्वर्य का तिरस्कार करती है, मेरी मर्यादा का विचार नहीं करती, मुझ जगज्जयी से उस भिखारी राम को श्रेष्ठ समझती है। मैं यह कैसे सहन कर सकता हूं ? फिर वह शत्रु-पत्नी है। उस मानव ने मेरी बहिन का तिरस्कार किया है। अब, उसकी स्त्री मैंने अपने कौशल से हरण की है, तो उसपर मेरा ही अधिकार है। वह मेरी शय्या पर प्रसन्नता से आए, मुझे अपना तन-मन अर्पण करे, तभी उसके पति राम के दुष्कर्म का प्रतिकार हो। पशु की भांति बलात्कार से तो मेरी ही मर्यादा भंग होगी। भला पृथ्वी की कोई स्त्री मुझे तुच्छ समझे और वह जीती रहे, यह भी संभव है ? मेरी मर्यादा है, मैं सुकुल-उत्पन्न वैश्रवण पौलस्त्य हूं, मुनिकुमार हूं, सप्तद्वीपाधिपति महिदेव हूं, जगज्जयी हूं। इस शत्रु-पत्नी को मेरी शय्या पर आकर स्वेच्छा से अपना शरीर और मन मुझे अर्पित कर कृतार्थ होना चाहिए। नहीं तो अवधि के बाद अवश्य मेरे रसोइये उसका हृदय मेरे कलेवे के लिए पाक करेंगे। जाओ, उस मानवी को सूचित कर दो।"

वानरों के दल-बादल समुद्र-तट पर आ पहुंचे हैं, इसकी सूचना चरों ने रावण को दी। रावण ने आज्ञा प्रचारित की—सब सभासद सभा-भवन में उपस्थित हों। राक्षस संदेश वाहक रावण का आदेश लंका के भवनों में, शयनगृहों में, क्रीड़ास्थलों में, उद्यानों में जा-जाकर राक्षस-सामन्तों और सभासदों को सुना आए। सभासद शस्त्र और वस्त्र से सज्जित हो, राजाज्ञा पा, कोई रथ पर, कुछ हाथियों पर, कुछ पालकियों पर चढ़कर राजसभा को चले। कुछ पैदल ही चल दिए। सभासदों की सवारियों से लंका के राजपथ भर गए। चहल-पहल से, लोगों की बातचीत से मुखरित हो उठे। उन्हें देखने को उत्सुक नागर जहां-तहां भीड़ बनाकर खड़े हो गए। पौर-वधुएं झरोखों से झांकने लगीं।

रक्षेन्द्र भी सोने की जाली और मणि-मूंगों से सुशोभित रथ पर आरूढ़ हो सभा-भवन को चला। ढाल-खड्ग धारण करने वाले अनेकों शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राक्षस उसके आगे-आगे चले। अनेकों बलवान राक्षस उसे दायें-बायें और पीछे से घेरकर चले। रथ वाले रथों पर, हाथी-सवार हाथियों पर, घुड़सवार घोड़ों पर, हाथ में तोमर, गदा, शूल लेकर रावण के साथ चले। उस समय सहस्रों भेरियां बज रही थीं,

जिनसे गम्भीर शब्द होता था। आगे-आगे बन्दी जन स्तुति गाते जा रहे थे। इस प्रकार अपनी स्तुति सुनता रावण सभा-भवन में जा पहुंचा। उसके वहां पहुंचते ही तुमुल शंखध्वनि हुई। रावण के रथ पर चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र शोभायमान था। उसके दोनों ओर स्फटिक मणि से निर्मित स्वर्ण-मंजरियों से युक्त चंवर और पंखे झले जा रहे थे। इधर-उधर प्रमुख राक्षस-सुभट, सभासद सिर झुकाए खड़े थे। इस प्रकार अमिताभ रावण उस अपूर्व सभा में जा सोने की वेदी पर, जो स्फटिक मणि के फर्श पर बनी थी और जहां रत्नजटित सुनहरी काम का बिछावन बिछा था, रक्खे स्वर्णसिंहासन पर बैठ गया। इस भवन के रक्षक छः सौ पिशाचों ने भूमि में गिर रक्षेन्द्र को प्रणाम किया। अन्य सभासद भी रक्षेन्द्र को प्रणाम कर-करके चौकी, आसन और आसन्दियों पर बैठ गए। ये सब सभासद प्रत्येक कार्य की सुगम से सुगम व्यवस्था करने में कुशल और समुचित-समयानुकूल मत देने में निपुण थे। इसी समय राक्षसेन्द्र, विभीषण, कुम्भकर्ण और युवराज मेघनाद भी अपने-अपने श्रेष्ठ घोड़ों के स्वर्ण-रथों में बैठ सभा में आ अपना नाम कह रक्षेन्द्र के चरणों में प्रणाम कर अपने आसन पर आ बैठे। रावण के आठों मंत्री भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गए।

सबके तथास्थान बैठ जाने पर रावण ने कहा—

"सभासदो और मंत्रियो, आपको ज्ञात है कि हमारा शत्रु राम लंका पर अभियान करने के विचार से आगे बढ़ रहा है। इसलिए आप लोग विचार करके सर्वसम्मत निश्चय करें। अब कोई न कोई निश्चय कर लेना परमावश्यक हो गया है। अब आप वही सोचें जिसमें राक्षसों का कल्याण हो तथा हमारी लंका को दुर्दिन का मुंह न देखना पड़े। धर्म, अर्थ और काम-विषयक कठिनता उपस्थित होने पर आप ही लोग प्रिय-अप्रिय, लाभ-हानि, सुख-दुःख, हित-अहित का विचार करने में पूर्ण समर्थ हैं। आप लोगों की सम्मति से प्रारम्भ किया गया मेरा कोई भी काम कभी निष्फल नहीं गया। आप ही के सहयोग से मैं यह दुर्लभ राज्यलक्ष्मी भोग रहा हूं। मैंने जो काम किया है, उसके विषय में भी मैं आप लोगों से पहले सम्मति लेना चाहता था, पर ऐसा न कर सका। अब मैं कहता हूं कि मैं दण्डकारण्य से अपने वैरी दाशरथि राम की पत्नी हर लाया हूं। राम से यद्यपि मुझे भय नहीं है, फिर भी इस सम्बन्ध में विचार तो कर लेना चाहिए। फिर आगामी कार्यक्रम की योजना बनानी चाहिए। आप ही की सहायता

से मैंने पृथ्वी को जय किया है तथा देवेन्द्र को बन्दी बनाया है। आप लोग अब भी मेरे सहायक हैं। अब सीता का पता लगाकर दोनों मानव-कुमार समुद्र के उस पार आ पहुंचे हैं तथा इस पार आने का उद्योग कर रहे हैं। यद्यपि उनका यह प्रयत्न हास्यास्पद है, फिर भी हमें ऐसा उपाय सोच रखना चाहिए, जिससे दोनों भाई मारे जाएं और सीता को लौटाना न पड़े। आपकी ही योजनानुसार मैं कार्य करूंगा। मैं तो यही समझता हूं कि वानरी सेना के लिए समुद्रोल्लंघन अत्यन्त दुष्कर है। फिर भी यदि वह यहां आ भी जाएं तो संसार में कोई ऐसी शक्ति मैं नहीं देखता जो संग्राम में मुझे विजित कर सके।"

रावण के ये वचन सुन कुम्भकर्ण ने रोषभरे स्वर में कहा—"महाराज, जब आपने सीता का हरण किया, तब हमसे सम्मति नहीं ली। यह काम अत्यन्त अनुचित हुआ। हरण से पूर्व ही आपको परामर्श करना उचित था। राजा के जिस कार्य का परिणाम-भोग प्रजा को भोगना पड़े, उसमें उसकी राय लेनी ही चाहिए। जो राजा भली भांति मंत्रियों से विचार-विमर्श करके कार्य करता है, उसे कभी पछताना नहीं पड़ता। पर जो विपरीत कार्य मन्त्रियों की सलाह के बिना ही किए जाते हैं, उनका परिणाम सदा दोषयुक्त होता है। जो पुरुष पहले किए जाने वाले काम को पीछे और पीछे किए जाने वाले काम को पहले करता है, वह नीतिशास्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ है। स्थिर बुद्धि वाला पुरुष विचारशील और शक्तिशाली होता है। वह शत्रु के दोष को देखता रहता है तथा जहां शिथिलता पाता है, वहीं आक्रमण करता है तथा यश का भागी होता है। महाराज, आपने बिना ही विचार किए यह क्षुद्र कर्म कर लिया, जो महा अनिष्टकारक हो सकता है। राम का बल जनस्थान में देख लिया गया है। मैं तो यह समझता हूं कि आपने बलवान शत्रु से अविचारपूर्ण दूषित छेड़छाड़ प्रारम्भ कर दी है, जिससे आपके विश्व-विश्रुत सुनाम को कलंकित होने का भय उपस्थित हो गया है। यदि आपकी इस भूल के परिणामस्वरूप हमारी सारी ही तपस्या, विश्व-विजय के भगीरथ प्रयत्न तथा रक्ष-संस्कृति ही खतरे में पड़ जाए, सम्पन्न लंका पर संकट आ पड़े और आनन्द में मग्न राक्षसों का सर्वनाश उपस्थित हो जाए, तो महाराज, वह आप ही का दोष होगा। राजन्, मैंने आपके वंश और प्रतिष्ठा के लिए प्राणान्तक युद्ध किए। आपका शत्रु चाहे कैसा ही बलवान् था, मैंने उसे मार डाला। भले ही उसकी सहायता को इन्द्र, वरुण, कुबेर, मरुत और

सब दैत्य-दानव भी आए, पर मेरे हाथ से उसकी रक्षा न कर सके। परन्तु इस स्वेच्छाचारितापूर्ण दुष्कर्म में मेरा आपसे कोई सहयोग नहीं है। मैं शत्रु का पक्ष नहीं लेता, परन्तु आपकी अनीति का अनुमोदन भी नहीं करता। अतः इस संभावित युद्ध में आप मुझसे कुछ भी आशा न रखना। मेरी इच्छा तो अब कुछ दिन एकान्तवास की है। मैं रत्न-गुहा में जाता हूं। आपका कल्याण हो!" इतना कहकर महातेज कुम्भकर्ण स्वर्णसिंहासन त्याग उठ खड़ा हुआ। इसपर रावण ने क्रुद्ध होकर दर्प से कहा—"कुम्भकर्ण, समुद्र के समान मेरे वेग और वायु के समान मेरी गति को न जानकर ही वह दाशरथि वानर-सेना ले इस ओर बढ़ा चला आ रहा है। इस प्रकार पर्वत की गुहा में सोए हुए सिंह और सोते हुए काल के समान उसने मुझे छेड़ा है। भयंकर सर्प के समान संग्राम में छूटे हुए मेरे बाणों को राम ने कभी देखा नहीं है। इसीसे उसने यह दुस्साहस किया है। किन्तु मैं अपने धनुष से छूटे हुए वज्र के समान अगणित अग्निबाणों से उसे भस्म कर डालूंगा। जिस प्रकार सूर्य उदय होते ही नक्षत्रों की कान्ति नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मैं इस वानरी कटक को देखते ही देखते नष्ट कर डालूंगा। मुझे तेरी आवश्यकता नहीं है। मेरी ओर से तू रत्न-गुहा में शाश्वत एकान्तवास कर। मुझ सहोदर से तेरा क्या प्रयोजन है?"

रावण के ये वचन सुन कुम्भकर्ण रावण को प्रणाम कर, बिना उत्तर दिए, सभा-भवन से चला गया।

रक्षेन्द्र रावण के वचन सुन, शत्रु-बल से अपरिचित और नीति-शास्त्र से शून्य राक्षस यूथपति योद्धा हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले—"महाराज! परिघ, शूल और पट्टिश आदि शस्त्रों से सुसज्जित विशाल अजेय सेना हमारे पास है। फिर चिन्ता किस बात की है? इसी सेना द्वारा आपने भोगपुरी के नागों को वश में किया, अलका के कुबेर को आक्रांत किया, देवेन्द्र को बन्दी बनाया और सुरलोक को जय किया। वरप्राप्त बलवान दानव भी आपके समक्ष नहीं ठहर सके। यमलोक, देवलोक और आर्यवीर सभी तो आपकी विजय-दुन्दुभियों से थर्रा उठे। फिर इस हतवीर्य राम की क्या बिसात? हे महाराज, जब तक इन्द्रजयी मेघनाद और अकथविक्रम कुम्भकर्ण आपकी आज्ञा के अधीन हैं, आपको किस बात की चिन्ता है!"

अब नील मेघ के समान वर्ण वाला प्रहस्त बद्धांजलि खड़ा होकर बोला—"रक्षेन्द्र की जय हो! हम लोग तो युद्ध में देव, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, पिशाच किसीको भी गिनते ही नहीं। फिर इन दो एकाकी

राज-भ्रष्ट मानवों की क्या बात है ! हम सब बेखबर थे। शत्रु के आक्रमण का विचार भी न था—इसीसे वह धूर्त वानर हमें धोखा दे गया। लंका को भस्म करके जीवित बच निकला। अब वह सब वानरों को काल के मुंह में धकेलने को ला रहा है।"

दुर्मुख सेनानायक ने खड़े होकर कहा—"हे पृथ्वीपति, हनुमान का यह उत्पात तो हमारा, आपका, सबका अपमान है। आप आज्ञा दीजिए, मैं अकेला ही जाकर समुद्र-तट पर उस वानर-सहित सब वानरों को मृत्यु की भेंट करूं।"

अब महाबली वज्रदंष्ट्र सेनापति अपने भयंकर परिघ घुमाता हुआ बोला—"महिदेव प्रसन्न हों ! मैं तो यह कहता हूं कि जिस प्रकार हो, शत्रु पर विजय पानी चाहिए। मेरा मत है कि बहुत-से राक्षस, जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं, निर्भीक हो राम के पास मानवों के वेश में जाकर मानवी भाषा में कहें कि हमें आपकी सहायता के लिए आपके भाई ने अयोध्या से भेजा है। इस प्रकार उनकी सेना में जा मिलें। फिर अवसर पाकर शस्त्र-वर्षा कर वानरों को मार डालें।"

इसपर धर्म और राजनीति के परम ज्ञानी, राजमर्यादा के ज्ञाता विभीषण ने उठकर रावण के सम्मुख आ प्रणाम करके कहा—"हे परन्तप, आज्ञा पाऊं तो निवेदन करूं ! जब से आप लंका में दाशरथि राम की पत्नी को लाए हैं, मैं अनेकविध अपशकुन देख रहा हूं, सारी प्रजा देखती है, पर आपके मंत्री आपसे इन बातों को कहने में संकोच करते हैं। हे तात, जहां साम, दाम और भेद इन तीनों उपायों से काम सिद्ध न हो सके, वहीं दण्ड-नीति का उपयोग करना चाहिए। जो असावधान हो, दैवी प्रकोप से पीड़ित हो, ऐसे ही पुरुष पर विचार-पूर्वक किया गया बल-प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है। परन्तु राम असावधान नहीं है। वह विजय की कामना से आ रहा है। उसके पास सेना भी यथेष्ट है। वह स्वयं अजेय और पराक्रमी है। विशाल दुर्लंघ्य समुद्र को लांघने वाले रामदूत हनुमान ही के पौरुष पर आप विचार कीजिए। ऐसे-ऐसे न जाने कितने असम साहसी वीर उसकी सेवा में हैं। इसलिए महाराज, हमें राम के बल की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और विशालकाय, महाउत्पात करने वाले वानर जब तक लंका से दूर हैं, तब तक आप इस विषाक्त नागिन सीता को लौटा दीजिए। इसीमें राक्षस-कुल की भलाई है। आप अकारण की रार को टाल दीजिए।"

विभीषण के इन वचनों से रावण क्रुद्ध हो गया। उसने कहा—

"अरे भ्राता, शत्रु और सर्प के साथ रहना तो फिर भी निरापद है, परन्तु शत्रु-पक्षपाती बन्धु के साथ रहना अत्यन्त भयानक है। मैं जानता हूं कि हमारे विमल यश रक्षकुल में कुछ ऐसे कुल-कलंक हैं जो रक्षकुल पर विपत्ति आने पर प्रसन्न हो सकते हैं। वे अपने ही कुल का तिरस्कार करते हैं। ऐसे ही दुरात्मा तुम भी हो। तुम जैसे कुलद्रोही से तो भय ही भय है। तुम शत्रु के प्रशंसक और कुल के निन्दक हो। यह जातिभय सब भयों से भयानक है। आज जो अखिल विश्व में मेरी विजय-वैजयन्ती फहरा रही है, मेरे नाम का डंका बज रहा है, मैंने जो विश्व के कुलीनों और ऐश्वर्यवानों का सम्मुख समर में पराभव करके जगज्जयी की पदवी प्राप्त की है, वह सब तुझे नहीं सुहाती। तू ईर्ष्यालु और दुरात्मा है। जैसे हाथी स्नान के बाद धूल उछालकर अपने शरीर को मैला कर लेता है, वैसा ही तू भी कुल-कलंक है। तुझ कुल-निन्दक को मृत्युदंड देना उचित है। परन्तु तू मेरा सहोदर भाई है, मैं तुझे केवल धिक्कार-सहित त्याज्य घोषित करता हूं। तू राक्षसों की लंका तथा यशस्वी रक्षकुल को त्यागकर अभी यहां से निकल, यही तेरे लिए राजाज्ञा है।"

विभीषण ने शान्त वाणी से कहा—"रक्षेन्द्र, आप पितृतुल्य मेरे ज्येष्ठ भ्राता और रक्षपति हैं, इससे मैं आपकी आज्ञा मानकर अभी लंका को त्यागता हूं। अधर्म-प्रवृत्ति होने से आपने मुझे कठोर वचन कहे हैं। हतभाग्य पुरुष हितकारी वचन नहीं सुनते। अप्रिय और हितकारी बात कहने और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं। शोक है कि आप विनाशक कालपाश में बंध चुके हैं। हतायु पुरुष पथ्य को नहीं देखता। ऐसा होता ही है। काल के वशीभूत होने पर बड़े-बड़े यशस्वी जगज्जयी प्रतापी शस्त्र-शास्त्रों के ज्ञाता भी मूढ़वत् आचरण करते हैं। आपकी आज्ञा मानकर मैं जाता हूं। आप अपने इन हितैषी राक्षसों सहित लंका की रक्षा कीजिए। आपका कल्याण हो!"

इतना कहकर विभीषण तुरंत उठकर अपनी भीम गदा हाथ में ले सभा-भवन से चल दिए। उनके पीछे ही उनके चारों मंत्री भी उठकर सभा-भवन से बाहर हो गए।

३६

"निवेदयत—निवेदयत! सर्वलोकशरण्याम राघवाय यदहं रावणस्यानुजो विभीषणश्चतुर्भी रक्षोभिस्सह भवन्तं शरणमागतः।"

गदापाणि विभीषण ने राम-कटक में आकर उच्च स्वर से ये शब्द कहे। वानरों ने भय और संदेह से इन पांचों नवागन्तुक राक्षसों को घेर लिया। वे उन्हें सुग्रीव की सेवा में ले चले।

विभीषण का अभिप्राय जानकर सुग्रीव ने राम के पास आ निवेदन किया—"राघवेन्द्र, आपके शत्रु रावण का भाई विभीषण अपने चार मंत्रियों सहित आपकी शरण में यहां उपस्थित है। परन्तु सेना के व्यूह, शत्रु-सम्बन्धी मन्त्रणा, नीति और राजदूतों के मामले में हमें सावधान रहना चाहिए। यह शत्रु रावण का प्रेरित गुप्तदूत भी हो सकता है। वह जाति से राक्षस, जन्म से शत्रु का भाई है, अतः स्वयं शत्रु ही है। इसका भला विश्वास कैसे किया जा सकता है? इससे मेरा मत है कि इसका निग्रह हो। इसे बन्दी बना लिया जाए।"

राम ने कहा—"हे मित्र, तूने सारगर्भित और युक्तिपूर्ण वचन कहे। परन्तु शत्रु यदि शरण में आकर विनम्र प्रार्थना करे तो वह भले ही क्रूरकर्मा हो, सत्पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। मित्रभाव से आए हुए इस विभीषण को मैं कैसे त्याग सकता हूं? वह कपट भी करे, तब भी नहीं। सब प्राणियों को अभय देना ही मेरा व्रत है। जो एक बार मेरी शरण में आकर कहे—'मैं तेरा हूं'—उसे सब भयों से मुक्त करना ही मेरा कर्तव्य है। वह शत्रु का भाई विभीषण हो या स्वयं शत्रु रावण ही हो, उसे मेरी ओर से अभयदान दे मेरे पास ले आ।"

रामाज्ञा सुनकर सुग्रीव ने कहा—"राघव, आप धर्मज्ञों के शीर्षमणि हैं। अतः आपने अपने योग्य ही कहा। अनुमान और कल्पना के बल पर मेरा मन भी यही कहता है कि विभीषण शुद्धहृदय है। मैंने उसे भली भांति जांच लिया है। विभीषण देश-काल को देख-समझकर ही दोष-गुण पर विचार कर रावण को छोड़कर आपकी शरण आया है। उसके संभाषण से भी उसका दुष्ट मनोरथ नहीं जान पड़ता। उसकी मुखश्री विमल है, भीति और आशंका से रहित है। मैं तो यह समझता हूं कि वालि का मरण और आपके द्वारा मेरी राज्य-प्रतिष्ठा की वार्ता सुनकर ही यह लंका का राज्य पाने की अभिलाषा से आया है। मैं तो यही समझता हूं कि महाप्राज्ञ विभीषण शीघ्र ही हमारा विश्वस्त मित्र बन जाएगा।"

"तो मित्र, रक्षराज विभीषण को मेरी सेवा में उपस्थित कर!"

राम की आज्ञा से सुग्रीव का संकेत पा हनुमान विभीषण और उनके चारों मंत्रियों को श्री राम की सेवा में ले आए। राम के सम्मुख

आते ही विभीषण ने अपने मंत्रियों सहित भूपात कर राघवेन्द्र को साष्टांग दण्डवत् करके निवेदन किया—

"रावणस्य अनुजोऽहं, तेन अवमानितोऽस्मि, अतः सर्वभूतानां शरण्यं भवन्तं शरणामागतः। लंका मया परित्यक्तः धनानि मित्राणि चापि, मे राज्यं, जीवितं सुखानि च भवद्गतं हि।"

राम के नेत्र अश्रुसिक्त हो गए। उन्होंने विभीषण को उठकर हृदय से लगाया, फिर लक्ष्मण की ओर देखकर कहा—

"वत्स सौमित्रे, समुद्राज्जलमानय! तेन चेमं विभीषणं रक्षसां राजानां महाप्राज्ञमभिषिञ्च।"

लक्ष्मण ने उठकर कहा—"यथाज्ञापयत्वार्यः!"

लक्ष्मण ने विधिवत् समुद्र-जल से विभीषण का अभिषेक किया। सुग्रीव और वानर-यूथपतियों ने एक स्वर से कहा—"साधु, साधु!" वानर-सैन्य ने पुकार लगाई—"राक्षसेन्द्र विभीषण की जय हो!"

"अनुगृहीतोऽस्मि!"—विभीषण ने गद्गद-कण्ठ हो बद्धाञ्जलि कहा।

राम ने बाहु उठाकर विभीषण को आसन देते हुए कहा—

"एहि रक्षःपते, मनोरथं मे पूरय। कथं नु वरुणालयं सागरमक्षोभ्यं तराम।"

"राघव, घोरेऽस्मिन्वरुणालये सागरे अबध्वा सेतुं सेन्द्रैः सुरासुरैरपि लंका नासादयितुं शक्या।"

इसपर सुग्रीव ने कहा—"अयं महोत्साहः नलो नाम विश्वकर्मतनयः एष सेतं करोतु।"

नल ने खड़े होकर कहा—"समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुम्।"

"तदद्यैव वानरपुंगवाः सेतुबध्नन्तु।"

सुग्रीव ने आज्ञा दी और सहस्रों वानर हर्षोत्फुल्ल हो वेग से सेतु-निर्माण में जुट गए। नल ने अत्यन्त बुद्धिमानी से सारी योजना तैयार की। सैकड़ों वानर तो शाल, अश्वकर्ण, बांस, धव, कुटज, अर्जुन, ताल, तिनिश, बिल्व, सप्तपर्ण, तिलक, कर्णिकार, आम, अशोक आदि वृक्षों के भारी-भारी लट्ठे काटने-छांटने में जुट गए। सैकड़ों वानरों ने उन कटे हुए लट्ठों को छिछले जल में गाड़ना और दृढ़ रस्सी से बांधना आरम्भ कर दिया। बहुत वानर बड़े-बड़े पत्थरों की चट्टानों को लुढ़काकर जल को पाटने लगे। इस प्रकार देखते ही देखते सहस्रों वानरों के महदुद्योग से समुद्र पटने लगा। कुछ शिल्पी सूत लेकर सेतु की नाप-तौल करने लगे। कुछ लोहे की शृंखलाओं को उन हाथी

के समान शिलाओं में बांधने-अटकाने लगे। समुद्र के जल में पत्थरों के गिरने, कारीगरों के द्वारा ठोक-पीट करने और हजारों वानरों के बोलने से समुद्र का वातावरण कोलाहल से आपूर्यमाण हो गया। देखते ही देखते चौदह योजन सेतु तैयार हो गया। इसके बाद तेईस योजन पुल तैयार कर सेतु को भूगर्भस्थ सुबेल पर्वत-शृंखला से मिला दिया गया। इसके आगे भूगर्भस्थ चट्टानों के कारण कार्य सुगम था, जो शीघ्र ही सम्पन्न हो गया। महाप्राज्ञ नल के इस महत्कर्म की श्री राम ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। सबसे प्रथम गदापाणि विभीषण अपने मंत्रियों सहित उस पार उतरकर, भूमि पर गए। इसके बाद अंगद, हनुमान और सुग्रीव से रक्षित महाविक्रम राम, लक्ष्मण और फिर सब कटक।

युवराज अंगद ने फूल, मूल, जल आदि का सुपास देख उपयुक्त स्थान पर कटक की स्थापना की और अब लक्ष्मण और सुग्रीव समय नष्ट न कर तुरन्त ही सेना के व्यूह और यूथों की रचना करने में लग गए।

उस समय समुद्र-तीर पर प्रभंजन वायु चल रही थी। मस्त हाथी के समान वृक्ष झूम रहे थे। सुहावनी संध्या के रक्ताम्बर विश्व पर अपनी आभा दिखा रहे थे।

राम ने लक्ष्मण और सुग्रीव की ओर देखकर कहा—"अब वह काल उपस्थित हो गया है, जब भयंकर राक्षसों और बलवान वानरों के मांस और रुधिर से पृथ्वी आच्छादित हो जाएगी। सब कोई सावधान रहे! हम भोर ही में लंका पर आक्रमण करेंगे। अब विलम्ब का कुछ काम नहीं।"

३७

असंभाव्य, अतर्कित अकल्पित, वानर-कटक द्वारा दुर्लंघ्य समुद्र-तरण का समाचार सुन रक्षेन्द्र रावण हतबुद्धि हो गया। उसने अपने-शुक, सारण नामक दो मंत्रियों को बुलाकर आज्ञा दी कि वे शत्रु-सैन्य में जाकर राम का बलाबल देखें। दोनों मंत्री वानर का वेश धारण कर शिविर में प्रविष्ट हुए, परन्तु वे चैतन्यमूर्ति विभीषण से नहीं छिप सके। उसने उन्हें पहचानकर बन्दी बना लिया और राम के सम्मुख उपस्थित किया। राम के सम्मुख आ उन्होंने जीवन से निराश हो, भयभीत स्वर में कृताञ्जलि होकर कहा—"महाराज, हम दोनों रक्षेन्द्र महीपति के अनुगत सचिव हैं। रक्षेन्द्र की आज्ञा से आपका

बलाबल देखने आए थे। सत्य बात हमने निवेदन कर दी।"

राम ने किंचित् हंसकर कहा—"तो यदि तुमने हमारा सम्पूर्ण बल देख लिया है और तुम्हारा अभिप्राय पूरा हो गया है तो तुम जा सकते हो। पर यदि कुछ देखने को रह गया हो तो रक्षेन्द्र विभीषण तुम्हें सब कुछ दिखा देगा। तुम लंका जाकर लंकापति रावण से कह देना कि कल उसकी दुर्ग और तोरणों से सुरक्षित सुप्रतिष्ठित लंका पर मेरा आक्रमण होगा। तब मैं भी राक्षसों का बल देखूंगा और उनका प्राणों से सत्कार करूंगा।"

इतना कह राम ने दूतों को मुक्त कर दिया। वे राम को प्रणाम कर लंका में आए। उन्होंने रावण की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया—"देव, वानर-कटक का प्रधान सेनापति महासुभट नील है और उसका सहायक अमितविक्रम बालिपुत्र अंगद है। प्रबल पराक्रमी नल जिसने दुस्तर समुद्र का सेतु-बंधन किया है, पचास सहस्र योद्धाओं का अधिपति है। संरोचन पर्वत का स्वामी महाबली कुमुद, भीमकर्मा चण्ड, साल्वेग का स्वामी शरभ, ये सब चालीस-चालीस सहस्र योद्धाओं के यूथपति हैं। पनस महासेनापति जो देव-दैत्य सभीमें अजेय है और वानर सैन्य के मध्य-देश का रक्षक है, पर्वत के समान विशालकाय है। उसके सहायक सेनानायक गव-गवय अमितविक्रम है। फिर महा तेजस्वी हर है, जिसमें दस हाथियों का बल है। नील मेघ के समान प्रबल पराक्रमी सेनाधिपति धूम्र है, जो अक्षवात् पर्वत का स्वामी है। नर्मदा के तट का स्वामी जाम्बवान् यूथपतियों का प्रधान है, जिसके समान नीतिज्ञ मंत्री पृथ्वी पर दुर्लभ है। फिर दम्भ और पितामह सन्मादन हैं, जिन्होंने संसार के बड़े-बड़े संग्राम जीते हैं। देवासुर-संग्रामों में भी इन्होंने भाग लिया है। महासेनापति प्रमाथी युद्ध में अजेय है। गवाक्ष, केसरी विन्ध्य देश के अधिपति हैं। सुग्रीव के दस मंत्री बृहस्पति के समान नीति और धर्म के ज्ञाता हैं। इस वानर-सेना में भूमण्डल के देवों, गन्धर्वों और यक्षों के नरपति सम्मिलित हैं। योद्धाओं में अग्रगण्य मैन्द और द्विविद हैं, जिनका साम्मुख्य पृथ्वी का कोई पुरुष नहीं कर सकता। फिर लंका को अग्नि की भेंट करने वाला हनुमन्त मारुति है। फिर यमपुत्र कुबेर और वारुणेय भी आपसे अपना वैर चुकाने आए हैं।

"सुग्रीव को श्री राम ने बालि को मारकर वानरपति बनाया है। पर आपके सिंहासन पर विराजमान रहते ही राम ने कुलद्रोही विभीषण को लंकाधिपति-पद पर अभिषिक्त कर दिया है। अब वह गदा-

पाणि विभीषण सारे ही वानर-कटक में रक्षपति कहाता है। इन सब अमितबल पराक्रमशील यूथपतियों, यूथपों और सेनापतियों तथा असंख्य योद्धाओं के अतिरिक्त दिव्यास्त्रों के प्रयोक्ता राघवेन्द्र हैं, जिनके जैसा हस्त-लाघव, अस्त्र-सिद्धि और रण-धैर्य पृथ्वी पर दूसरे नर-पुंगव का नहीं है।

"सुग्रीव ने बड़े ही चातुर्य से अपने सेनानायकों के साहचर्य से गरुड़-व्यूह बनाया है, जिसके वाम पक्ष पर गद्रगद्र का पुत्र जाम्बवान और उसका भ्राता ऋक्षराज धूम्र है। महावीर सुषेण और चन्द्रपुत्र दधिमुख दक्षिण पक्ष पर हैं। मैन्द और द्विविद पृष्ठरक्षक हैं। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन ये पांच यमपुत्र वक्षु भाग में अवस्थित हैं। उदरस्थली में सुग्रीव और विभीषण-सहित हनुमन्त रक्षित महातेज राम हैं। इस प्रकार राम समुद्र के दक्षिण तीर पर पड़ाव डालकर अवस्थित हैं।"

शुक, सारण के ये सारगर्भित वचन सुनकर रावण ने गरजकर अपनी समूची राक्षस सैन्य को सन्नद्ध होने की आज्ञा दे दी। समस्त मंत्रियों और सेनापतियों को सभा-भवन में बुला भेजा। लंका के प्रत्येक दुर्ग, कोट, कंगूरों पर रखे धौंसे बज उठे, सहस्र तूणीर गगन-भेदी निनाद करने लगे। भयानक भेरी-नाद से गगनमण्डल थर्रा उठा। हाथी सजने लगे, घोड़ों पर कवच और वज्र चढ़ाए जाने लगे। सहस्रों अश्वारोही अस्त्र-शस्त्र चमकाते लंका के राजपथ पर चारों ओर से सिमट-सिमटकर आकर जुटने लगे। सारे ही राजपथ सैनिकों से भर गए। लंका में भीति, व्याकुलता और आशंका व्याप गई। कुल-वधुएं अपने प्रिय पतियों को युद्ध का बाना सजा रणस्थली में जाता देख पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। माताओं ने अपने पुत्रों को खड्गहस्त युद्ध में जाते देख अश्रुविमोचन किया।

इसी समय वानरी सैन्य में रण-भेरी बज उठी। हजारों शंखों, दुन्दुभियों तथा भेरियों के भीषण रव से लंका हिल उठी। रक्षपति जगज्जयी रावण किसी भय से क्षण-भर को अवसन्न हो गया।

महा रणनीति-विशारद, वृद्ध दैत्यपति माल्यवान् श्वेतश्मश्रु, श्वेत परिधान में धीरे-धीरे सभा-भवन में आकर राक्षसेन्द्र रावण के सम्मुख खड़ा हुआ। हठात् मातामह को सम्मुख देख रक्षेन्द्र आसन से उठ खड़ा हुआ। उसने वृद्ध दैत्यराज को बद्धांजलि प्रणाम किया।

वृद्ध दैत्यपति ने कहा—"पुत्र, जो राजा समयानुकूल शत्रु से संधि-विग्रह करता है, वही चिरकाल तक पृथ्वी पर राज्य कर सकता है। जिसकी शक्ति का ह्रास हो रहा हो अथवा शत्रु के समान हो जिसका बल हो, उसे यथाशीघ्र शत्रु से संधि कर लेनी चाहिए। समतुल्यबल शत्रु की कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिए। शत्रु से अपनी शक्ति बढ़ी हुई हो तभी विग्रह करना चाहिए। इसके विपरीत करने से अपना ही सर्वनाश होता है। राम के पक्ष में वे सभी देव, गन्धर्व, यक्ष और ऋषि हैं, जो तुझसे दलित हो चुके हैं। वे सभी राम की जय और तेरा पराभव चाहते हैं। इससे पुत्र, तू इस झगड़े की जड़ सीता को श्री राम को लौटा दे। विषयों में आसक्ति होने से तेरा यश-तेज धूमिल हो रहा है और शत्रु मिलकर तेरा अनिष्ट करना चाहते हैं। तू परंतप महिदेव है, पर मैं लंका में भावी अनिष्ट के लक्षण देखकर ही तेरे पास आया हूं।"

वृद्ध मातामह के ये वचन सुन रावण ने गुस्से से भौंहें चढ़ा तथा आंखें निकालकर कहा—"मातामह, आपने व्यर्थ ही यहां आने का कष्ट किया। आपने शत्रु का समर्थन करते हुए जो-जो मेरे लिए अहितकर-अप्रिय शब्द कहे हैं, वे मेरे कानों ने सुने ही नहीं। है कौन यह कृपण राम ? पिता के द्वारा निष्कासित, वन-वन भटकने वाला ? कौन उसे समर्थ कहता है ? एक वानरों का जो उसे सहारा मिल गया है, क्या इसीसे ? मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का विजेता, राक्षसों का स्वामी, महिदेव, सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न हूं। देव-दैत्य सभी मुझसे भय खाते हैं, सो इस क्षुद्र मानव से मेरी क्या समता है ? आपके वचनों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप भी दुरात्मा विभीषण की भांति उस भिखारी राम से मिल गए हैं। मेरा प्रताप और यश आपको सह्य नहीं है, तभी तो आप मुझे हतोत्साह करके युद्धविरत किया चाहते हैं। पर नीतिशास्त्रवेत्ता कोई भी विज्ञ सिंहासनस्थ पुरुष को प्रोत्साहन की बजाय ऐसे अप्रिय वचन नहीं कहता।

रावण के ये वचन सुन वृद्ध दैत्य सिर झुकाए चुपचाप बहुत देर तक खड़ा रहा। फिर—"हे रक्षपति, तेरी जय हो !" इतना कह, धीरे-धीरे सभा-भवन से चला गया।

रावण भी कुछ देर तक विमूढ़-सा बैठा रहा। फिर उसने लंका की रक्षा-योजना बनाई। पूर्व द्वार की रक्षा का भार प्रहस्त को, दक्षिण द्वार महापार्श्व और महोदर को, पश्चिम द्वार मेघनाद को सौंपा और उत्तर स्वयं अपने हाथ में लिया। महाबली विरूपाक्ष को नगर का मध्य भाग दिया। सम्पूर्ण रक्षित सैन्य का स्वामी कुम्भकर्ण को बनाया।

इस प्रकार लंका की सुरक्षा का प्रबन्ध कर, सब योजनाओं पर विचार-विमर्श कर वह अन्तःपुर में चला गया।

३८

सूर्योदय के साथ ही रणभेरी का गगनभेदी निनाद करती राम-सैन्य ने चारों ओर से लंका पर आक्रमण कर दिया। लंका में भी युद्ध के घौंसे बजने लगे। चीत्कार करते हुए राक्षस भट बड़े-बड़े शस्त्र ले-लेकर कंगूरों और बुर्जियों पर चढ़ गए। देखते ही देखते वानर और राक्षस परस्पर प्रहार करने लगे। उनके शस्त्रपात, हुंकार, ललकार, चीत्कार से जो कोलाहल हुआ, उससे लंका की पौरवधुएं और बालक भयभीत हो भूगर्भों में जा छिपे। बहुत स्त्री-जन ठौर-ठौर रोने लगीं। सहस्रों वानर साहस कर लंका की खाई पार कर कोट-कंगूरों पर जा चढ़े, जिनपर भयानक बाणों और शूलों की वर्षा होने लगी।

अपनी सेना को भली भांति व्यवस्थित कर, वानरराज सुग्रीव ने अपने श्वसुर महाबली सुषेण को साथ लेकर एक बार लंका के चारों ओर घूमकर सब मोर्चों का निरीक्षण किया। लंका से समुद्र-तट तक वानर ही वानर दीख पड़ते थे तथा राक्षस सब लंका में घिर गए थे। परन्तु वे प्रलय-काल की भांति सब कोट-कंगूरों पर घूम रहे थे। चारों ओर शस्त्र-वर्षा हो रही थी। देखते ही देखते असंख्य वानर लंका के कंगूरों पर चढ़कर उन्हें ढहाने तथा वहां के रक्षकों से लोहा लेने लगे। राक्षस और वानर लड़ते हुए परस्पर लिपटे हुए खाई में गिरने लगे। लंका के स्वर्णद्वार और गोपुर ढहने लगे। तीव्र गर्जना करते हुए वानर असह्य वेग से लंका पर पिल पड़े। सेनापति वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस ने लंका के कोट पर चढ़कर एक बुर्ज अधिकृत कर लिया। सहस्रों वानर फुर्ती से उनके चारों ओर एकत्र हो युद्ध करने लगे। महाबाहु प्रसभ और कुमुद भी उनकी रक्षा के लिए उनकी पीठ पर पहुंच गए। शतबली ने दक्षिण द्वार पर असम विक्रम दिखाया तथा तारा के पिता सुषेण ने पश्चिम द्वार पर धसारा कर दिया। वह बलपूर्वक द्वार भंग कर नगर के मध्य भाग में जा घुसना चाह रहा था। उत्तर द्वार पर राम-लक्ष्मण थे, जिनकी पीठ पर सुग्रीव, विभीषण, धूम्र डटे थे तथा गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन ने अपने-अपने यूथों को श्री राम की अंग-रक्षा में नियुक्त किया था।

दोनों ओर की जय-जयकार, शंख और भेरी के तुमुल नाद तथा

घायलों की चीत्कार से कानों के पर्दे फटने लगे। दुन्दुभियां मेघ-गर्जन के समान गर्जने लगीं। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, रथों की सहस्रों घंटिकाओं से पृथ्वी, आकाश और समुद्र भी ध्वनित हो उठा। धीरे-धीरे युद्ध घमासान हो चला, जैसे पहले देवासुर-संग्राम हो चुका था! गदा, शक्ति, शूल, परशु हवा में उछलने लगे। पत्थर, वृक्ष आदि की मारामार चली। भिन्दिपाल और शूलों की चोटें चलने लगीं। बड़े-बड़े सेनानायक घोड़ों और हाथियों पर कवच धारण किए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने द्वार खोल दिए और सम्मुख युद्ध करने लगे। बराबर के प्रमुख योद्धा द्वन्द्व में रत हो गए। बालि-पुत्र अंगद अमित-विक्रम इन्द्रजित् से भिड़ गया। प्रजंघ के साथ सम्पाति, जाम्बुमाली के साथ हनुमान, शत्रुघ्न के साथ विभीषण भिड़ गए। तपन के साथ गज, निकुम्भ के साथ नील, प्रघंस के साथ सुग्रीव और विरूपाक्ष के साथ लक्ष्मण का द्वन्द्व होने लगा। अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यक्षकोप ने सम्मिलित हो श्री राम को घेर लिया। मैन्द के साथ वज्रमुष्टि, द्विविद के साथ अशनिप्रभ, सुषेण के साथ विद्युन्मणि युद्ध करने लगे। इस प्रकार चारों ओर महारथियों का ऐसा द्वन्द्व मचा कि भूलोक थर्रा गया। इन्द्रजित् ने क्रुद्ध हो अपनी गदा का प्रहार अंगद पर किया। अंगद ने वार बचा अपनी गदा के एक ही प्रहार में इन्द्रजित् का रथ भंग कर दिया और सारथि-सहित घोड़ों को मार डाला। प्रजंघ ने सम्पाति को बाणों से बींध डाला। इसपर व्याकुल हो सम्पाति ने प्रजंघ को हाथों में उठाकर भूमि पर दे मारा। जाम्बुमाली ने रथ पर आरूढ़ हो हनुमान पर शक्ति फेंकी। शक्ति मारुति के वक्ष में लगी। मारुति ने प्रबल वेग से रथ पर चढ़ उसे उसी क्षण मार डाला। प्रतपन भीषण गर्जना करता हुआ नल पर झपटा और उसने बाणों के प्रहार से नल के शरीर को छेद डाला। नल ने तत्क्षण उसकी आंखें फोड़-कर उसे अन्धा कर दिया। प्रघंस को इसी समय सुग्रीव ने मार डाला। विरूपाक्ष और लक्ष्मण का तुमुल बाण-युद्ध हुआ। अन्त में लक्ष्मण के बाणों से विद्ध हो उसने प्राण त्यागे। अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यक्षकोप ने बाणों की मार से श्री राम को घेर लिया, परन्तु राम ने एक ही वार में चार अग्निबाणों के प्रहार से उन्हें मार डाला। मैन्द ने वज्रमुष्टि के रथ पर चढ़ उसे मुक्कों ही से मार डाला। निकुम्भ ने नील पर सौ बाणों की वर्षा की और हंसने लगा। नील ने उसका रथ तोड़ सारथि को मार डाला। अशनिप्रभ ने द्विविद को अपने तीखे बाणों से वेध दिया। द्विविद ने उसे आटे की भांति गूंथ डाला।

विद्युन्माली और सुषेण का भीषण गदायुद्ध एक मुहूर्त तक होता रहा। अन्त में विद्युन्माली मुंह से खून थूकता हुआ भाग खड़ा हुआ। इस समय बारह योजन विस्तार में लंका के चारों ओर घनघोर युद्ध हो रहा था, जिसमें शक्ति, गदा, तोमर, बाण, खड्ग और शिलाओं का खुला प्रयोग हो रहा था। मरे हुए योद्धाओं, घोड़ों, हाथियों की लोथें रक्त-सागर में तैर रही थीं। सूर्यास्त हो गया, परन्तु दोनों ही ओर के योद्धा उसी प्रकार लड़ते रहे। संग्राम-भूमि बीभत्स हो उठी।

उस दुष्पार अन्धकार में क्रोधोन्मत्त राक्षस वानरों का वक्ष चीर-चीरकर वहीं उन्हें खाने लगे। वानर भी भयंकर कोप कर हाथियों, घोड़ों, रथों, ध्वजाओं को विदीर्ण करने लगे। इससे लोमहर्षण समराङ्गण में रक्त की नदी बह चली। वह रात्रि काल-रात्रि के समान दुरतिक्रमा हो गई। अंगद ने भीम विक्रम से इन्द्रजित् का रथ तोड़ डाला, घोड़े मार डाले, सारथि को भी मार डाला। इसपर मायावी इन्द्रजित् रथ से कूद अंतर्धान हो गया। यह देख वानर हर्ष से चिल्ला उठे। सुग्रीव ने अगद को हर्ष-गद्गद हो कण्ठ से लगा लिया। परन्तु इसी समय अकस्मात् अदृश्य रहकर मायावी मेघनाद ने राम-लक्ष्मण को घेरकर चौमुखी बाण-वर्षा से उन्हें ढांप लिया। दोनों राघव दिव्यास्त्रों से युद्ध करने लगे, पर इन्द्रजित् अदृश्य रहकर बाण-वर्षा कर रहा था। किसी अज्ञात दिशा से बाण आ-आकर उन्हें बींध रहे थे। इस प्रकार राम और लक्ष्मण का संकट सन्निकट देख अपने दोनों पुत्रों सहित सुषेण, अंगद, शरभ, मारुति, हनुमान, द्विविद, मैन्द, नील और ऋषभस्कन्द, ये दस यूथपति दोनों भाइयों को चारों ओर से घेर उनकी रक्षा करने लगे। पर महाबली इन्द्रजित् ने नौ बाणों से नील को, तीन-तीन बाणों से मैन्द और द्विविद को आहत कर दिया तथा पराक्रमी शरभ के हृदय में एक बाण मारा। वेगवान हनुमान को विद्ध कर अत्यन्त पराक्रमी ऋषभस्कन्द और सुषेण तथा उनके पुत्रों को दो-दो बाण मारे तथा अंगद को अनेक बाणों से छेद डाला। वानर-सैन्य में कोलाहल मच गया। चारों ओर से सिमट-सिमटकर वानर वानर-यूथपतियों और राम-लक्ष्मण के चारों ओर आ जुटे। चारों ओर से बाणों का चक्र, वर्षा की बौछार की तरह वानर भटों को बींधने लगा। परन्तु बाण कौन कहां से बरसा रहा है, यह पता नहीं लगता था। राम ने दस यूथपतियों को ललकारकर शत्रु का पता लगाने का आदेश दिया। परन्तु वे सभी समर्थ यूथपति वानर-बाणों से विद्ध क्षत-विक्षत हो झूम-झूमकर पृथ्वी पर गिरने लगे। राम-लक्ष्मण के भी सर्व देह में

बाण बिंध गए। उनके शरीर से झर-झर रक्त झरने लगा। बाण निरंतर आ-आकर बिंध रहे थे। अब चारों तरफ से नागशरों ने राम-लक्ष्मण को फांस लिया। वे अद्भुत नागबाण पाश की भांति हर ओर से उन्हें जकड़ने लगे। मार्मिक आघातों से जर्जर हो, नागपाश से बद्ध, अवश, रक्त और बाणों से भरे, दोनों राघव सिंह भारी-भारी श्वास लेते हुए मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े।

यह देख विभीषण सहित सब वानर हाहाकार करने लगे। राम-लक्ष्मण को दस यूथपतियों सहित मृतक मान, हर्षमत्त मेघनाद ने ज़ोर से सिंह-गर्जना की, जिससे राक्षस जय-जयकार करने लगे। मेघ के समान गर्जकर मेघनाद ने अदृश्य रहते हुए कहा—"ये महाबली खर-दूषण के हन्ता दोनों मानुष भ्राता यहां मेरे बाणों से मरे पड़े हैं।" इतना कह, महाबाहु रावणि अट्टहास करके हंसने लगा। "अरे राक्षस वीरो, देखो-देखो, हमारे शत्रु ये शरविद्ध दोनों भाई मर गए। अब तुम आनन्द करो।" कूट योद्धा रावणि से ऐसे वचन सुन हर्षोन्मत्त राक्षसों ने महानाद किया। राम मर गया—यह जानकर रावणि की रणक्षेत्र में पूजा की। इन्द्रजित् अरिंदम दोनों भाइयों को निःस्पन्द भूमि में पड़ा देख, उन्हें मरा समझ हर्ष से फूला हुआ लंका में चला गया। हर्षोल्लास से लंका झूम उठी। घर-घर बधाइयां बजने लगीं। वीरेन्द्र की बड़ाई शत-सहस्र मुख से हुई। पौरवधुओं ने उसपर लाजा विसर्जन किया। सूत-बन्दियों ने विरद गाई। रक्षेन्द्र लंकापति ने वीर पुत्र को हृदय से लगाया, आनन्दाश्रु से उसका शिर सिक्त किया। उस पुत्र से पुत्रवान् होने से अपने को सराहा।

शरविद्ध राम-लक्ष्मण को निःस्पन्द, निश्चेष्ट, मृतकवत् रणभूमि में निपतित देख, वानरेन्द्र सुग्रीव भय और शोक से भर गया। दोनों नर-शार्दूलों के अङ्गोपाङ्ग बाणों से छिदे पड़े थे। वे अत्यन्त मन्द वेग से धीरे-धीरे श्वास ले रहे थे। भयभीत, वाष्पलोचन, दीन, क्रोध से व्याकुल सुग्रीव को आश्वासन दे, गदापाणि विभीषण द्रुतगति से सेना में घूम-फिरकर वानरों को प्रबोध देने और वानर-सैन्य को व्यवस्थित करने लगे। वानरों के यूथ चारों ओर से आ-आकर राम को घेर उनकी यत्न से रक्षा करने लगे। वे बड़े चौकन्ने हो इधर-उधर, ऊपर-नीचे बड़ी सावधानी से राक्षससों को जांचने लगे। इसी समय वीर्यवान् स्थिरसत्त्व राम की मूर्च्छा खुली। उन्होंने पास ही भूमि

पर निःस्पन्द, निश्चल, बाणविद्ध, रक्तप्लुत लक्ष्मण को पड़े देख कातर होकर कहा—"अब सीता को लेकर और जीवित रहकर मैं क्या करूंगा ! इन नेत्रों से मैं आज अजेय लक्ष्मण को इस प्रकार भूमि में सोता देख रहा हूं। मैं अब माता कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा से क्या कहूंगा, जो पुत्र-दर्शन की लालसा से ही जी रही हैं ? भरत और शत्रुघ्न को ही मैं क्या उत्तर दूंगा ! अरे, ये तो आग्रहपूर्वक मेरे साथ वन में आए थे। अब इनके बिना मैं अयोध्या कैसे जा सकता हूं ? अरे लक्ष्मण, तू तो अवसाद करने पर मुझे आश्वासन देता था। आज मुझे आर्तनाद करता देख बोलता भी नहीं है ? अरे, जैसे तू मेरे साथ ही साथ वन में आया था अब वैसे ही मैं तेरे साथ मृत्यु की शरण जाऊंगा। मित्र सुग्रीव, तू अंगद और सब सैन्य को लेकर किष्किन्धा लौट जा। अरे मित्र, तूने खूब मित्रता निभाई, मित्र को जो करना चाहिए, वह सब तूने किया। मित्र का धर्म तूने पूरा कर दिया। अब मेरी अनुमति से तू सैन्य-सहित घर लौट जा।"

इसी समय विभीषण सब सैन्य को व्यवस्थित कर वहां लौटे। उन्होंने राम को शरविद्ध और लक्ष्मण को भूलुण्ठित देख व्यथित हो जल हाथ में लेकर उनके नेत्रों का मार्जन किया। फिर शोक से रो पड़े।

इसी समय ज्वलन्त अग्नि के समान वैनतेय गरुड़ वहां पहुंचे। उन्होंने दोनों भाइयों को विशल्य किया, अगद किया। सुवर्ण वैनतेय के स्पर्श करते ही उनके घाव भर गए। राम ने लक्ष्मण को अंक में भर लिया। वानर यूथपतियों को भी गरुड़ ने विशल्य किया, अगद किया। राम और लक्ष्मण सहित सब यूथपतियों को विशल्य, नीरुज देख वानर हर्ष-गर्जना और जय-जयकार करने लगे। हर्षाश्रुपूर्ण लोचनों से राघवेन्द्र विभीषण और सुग्रीव से गले मिले। फिर गरुड़देव को अंक में भर कहा—"मायावी इन्द्रजित् ने अदृश्य रहकर अपूर्व कौशल से हमें शरविद्ध कर दिया, हम महान संकट में पड़ गए थे। आपकी महती कृपा से हमें पुनर्जीवन मिला। हमारे प्राण आपके कृतज्ञ हैं।" यह कह राघव ने उनका आलिंगन किया।

गरुड़ ने कहा—"अच्छा हुआ, रावण के मनोरथ पूरे होने से पूर्व ही मैं आ पहुंचा। अब आपकी जय हो रामभद्र ! मैं चला।"

गरुड़ ने राम की प्रदक्षिणा की और चला गया। राम-कटक में इसी क्षण दुन्दुभि बज उठी। वानरों के जयनाद से लंकापति जड़ हो गए।

रावण ने गर्जना और दुन्दुभि-निनाद सुनकर कहा—"यह क्या है ? यह महानाद तो मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रहा है। वीर राम-लक्ष्मण तो दोनों ही पुत्र इन्द्रजित् के शराघात से मरण-शरण हुए थे। फिर अब शोक-काल में यह हर्षनाद कैसा है ?"

इसी समय संत्रस्त, दीनमुख, विवर्ण दूतों ने आकर निवेदन किया "हे रक्षेन्द्र, वे मायावी मानव फिर से जी उठे हैं। वे सब गुल्म पति भी उठ-उठकर वीरदर्प से नाद कर रहे हैं। महाराज, वानरों के दल बादल, स्वर्ण-लंका पर आक्रमण करने के लिए नये उत्साह से व्यूहबद्ध हो रहे हैं। गरुड़ ने उन्हें विशल्य किया है, उन्हें अगद किया है।"

रक्षपति रावण दूतों से यह सुनकर चिन्ता और क्रोध से विवर्ण हो गया। वह भग्नदर्प, व्यथितेन्द्रिय अभिभूत-सा हो स्वर्णासन पर बहुत देर तक विमूढ़ बैठा रहा। फिर उसने शोक-संतप्त होकर कहा—"यह तो बड़ी ही अद्भुत बात है कि क्षुद्र मानव भी महेन्द्र के समान युद्ध करते हैं। देव, दानव, यक्ष, नाग से अवध्य होने पर भी इस मानव से मुझे भय उपस्थित हो गया है। ऐसा तो कभी सुना ही न था। ये अग्नि के समान देदीप्यमान बाण अब व्यर्थ हो रहे हैं। अब तो लंका पर संकट का भय उपस्थित हो गया-सा दीख रहा है।"

रावण के ऐसे कातर वचन सुनकर वीरेन्द्र त्रिशिरा ने कहा—"जगदीश्वर, आप तो त्रिभुवन के स्वामी हैं। फिर क्यों ऐसा विषाद करते हैं ? आप निश्चिन्त रहें, मैं रणांगण में जाता हूं। देखूंगा कि यह राम कितना बल रखता है।"

त्रिशिरा के वचन सुन रावण उदग्र होकर हुंकृति करता हुआ बोला—"जाओ, मेरे सब शक्र-पराक्रम पुत्र जाएं और उस भिखारी राम को बांधकर मेरे सम्मुख ले आएं। आज मेरे रसोइये मेरे लिए उसी वैरी का मांस पकाएं।" यह कहकर उसने रत्नाभरणों से पुत्रों को पुरस्कृत किया, आशीर्वाद दिया और वे रावण की प्रदक्षिणा कर, अभिवादन कर, रथों में बैठ रणांगण की ओर चले। मरेंगे या मारेंगे, यही उनका दृढ़ निश्चय था। वानर-सैन्य भी व्यूहबद्ध सन्नद्ध खड़ी थी। आमना-सामना होते ही तुमुल घमासान आरम्भ हो गया। देखते ही देखते भूमि रक्त से भर गई। अभी पूरा सूर्योदय भी नहीं हुआ था।

पहले धूम्राक्ष अपने सात गुल्म लेकर समरांगण में उतरा। धूम्राक्ष अजेय योद्धा था। उसकी सेना में मंजे हुए सैनिक थे। वे सब

परिघ, पट्टिश, शूल, दण्ड, धनुष, बाण, परशु, शक्ति, मुद्गर भिन्दिपाल, पाश ले, हाथियों, रथों पर चढ़, व्यूह बना, बरसाती नदी की वेगवती धारा के समान वानरी सैन्य में घुस गए। सबके बीच में स्वर्ण-कवच पहने, मणिमाल कण्ठ में डाले, अमितविक्रम धूम्राक्ष रथ में बैठकर चला, जिसमें छः अश्वतरी जुती थीं। दस भारवाही शकट उसके साथ बाणों से लदी चलीं। उसकी रथ-ध्वजा पर गिद्ध की मूर्ति बनी थी।

धूम्राक्ष की विजयवाहिनी को इस प्रकार वेग से आता देख मारुति ने मोर्चा संभाला। उन्होंने एक कोण में पीछे हटकर अपने गुल्मों को व्यूहबद्ध किया। धूम्राक्ष मार करता हुआ धंसा ही चला गया। अब अवसर पाकर एक बगल से हनुमान ने तथा दूसरी ओर से नील ने उसे धर दबोचा। जैसे सरौते के बीच सुपारी कटकर दो टूक हो जाती है, उसी प्रकार धूम्राक्ष का व्यूह बीच से कट गया। दोनों खण्ड वानरों ने घेर लिए। धूम्राक्ष तनिक भी विचलित हुए बिना विकट युद्ध करने लगा। उस समरांगण में ऐसा घमासान मचा कि शत्रु-मित्र का भी ध्यान न रहा। धूम्राक्ष ने तीन दिन विकट युद्ध किया। अन्त में महावीर मारुति और धूम्राक्ष का द्वन्द्व हुआ। बहुत देर तक दोनों वीरों ने गदा-युद्ध किया। अन्त में उनकी गदाएं परस्पर टकराकर टूट गईं। तब दोनों वीर गुंथ गए। अन्त में अवसर पाकर मारुति ने धूम्राक्ष को पैर पकड़ पत्थर की शिला पर दे मारा, जिससे उसका भेजा फटकर निकल गया, सिर चकनाचूर हो गया।

धूम्राक्ष को मरा देख राक्षस भयभीत होकर भागने लगे। वानरों ने हर्ष से जय-जयकार किया। अब मायावी वज्रदंष्ट्र दस गुल्मों का अधिनायक आगे बढ़ा। युद्धोन्मत्त वज्रदंष्ट्र दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगा, जिससे वानरों की सेना 'त्राहि माम्—त्राहि माम्' करने लगी। रथ की नेमिका, धनुष की टंकार, भेरी और मृदंग का तुमुल नाद आकाश में व्याप गया। पाशधारी यम की भांति वज्रदंष्ट्र वानरों का कालरूप दीखने लगा। बड़े-बड़े धैर्यवान वानर उसे देखकर भागने लगे। यह देख अंगद वज्रगर्जना कर उसके सम्मुख आए। दोनों वीरों में मुहूर्त-भर शूल, शक्ति, मुद्गर, परशु से द्वन्द्व हुआ। उनके चारों ओर राक्षस और वानर विकट समर कर रहे थे। अन्ततः वज्रदंष्ट्र अंगद के चंगुल से छूट, दूर हट गया तथा रथ पर आरूढ़ हो बाण-वर्षा करने लगा। उसने तीन दिन निरंतर युद्ध किया। अंत में अंगद से उसका द्वन्द्व हुआ।

उसने काकपत्र बाणों से अंगद को जर्जर कर दिया। अंगद ने

विषम पराक्रम से गदा से उसके रथ को तोड़, सारथि और घोड़ों को मार दिया। विरथ होने पर वज्रदंष्ट्र भूमि पर खड़ा हुआ। इसी समय अंगद ने उसकी छाती में गदा का प्रहार किया। इसपर वह झूमता और रक्त-वमन करता हुआ अपनी वज्रमुष्टि में गदा लिए ही भूमि पर गिर गया। पर कुछ देर में उठकर उसने अंगद की छाती पर गदा-प्रहार किया, जिससे अंगद रक्त-वमन करने लगा। फिर अंगद के प्रहार से उसकी गदा टूट गई। तब दोनों गुंथकर लात-घूंसों से लड़ने लगे। लड़ते-लड़ते दोनों ही रक्त-वमन करने लगे। फिर दोनों ने ढाल-तलवार से असि-युद्ध किया। लड़ते-लड़ते थमकर वे घुटनों के बल बैठ गए। पर दूसरे ही क्षण अंगद ने उछलकर उसका सिर काट लिया। वानर हर्ष से चिल्ला उठे। राक्षस भयभीत होकर भागने लगे।

वज्रदंष्ट्र की मृत्यु से संतप्त देवान्तक, त्रिमूर्धा, महोदर और त्रिशिरा कालभैरव की भांति इक्कीस गुल्म सेना से आवृत्त आगे बढ़े। ये सभी राक्षस राजपुत्र महारथी योद्धा थे। इनके रथ मेघ के समान गर्जते हुए चले। अब ऐसा युद्ध हुआ कि धूल से आच्छादित संग्राम-भूमि में रथ, ध्वजा-पताका, ढाल-तलवार कुछ भी न दीख पड़ी। अपने-पराये का ध्यान छोड़ युद्धमत्त वानर और राक्षस, जो सम्मुख पड़ा, उसीके प्राण लेने लगे। युद्धभूमि शवों से, टूटे-फूटे रथों से, मरे-अधमरे हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं से पट गई। सहस्रों भीमकर्मा वानर परिघ घुमा-घुमाकर राक्षसों का दलन कर रहे थे। सेनापति त्रिशिरा में असीम बल था। वह अप्रतिहत गति से वानरी सैन्य को चीरता बढ़ा आ रहा था। बढ़ते हुए वह वहां आ पहुंचा, जहां कुमुद, नल और मैन्द राक्षसों का दलन कर रहे थे। उसने कहा—"अरे सारथि, हमारा रथ तनिक यहां रोक। मैं पहले इन दुर्मद वानरों का हनन करूं।" इतना कह उसने इन तीनों यूथपतियों को बाणों से छलनी कर दिया। अपने तीन गुल्मपतियों पर संकट देख हनुमान हुंकार भरकर आगे बढ़े और उन्होंने त्रिशिरा के रथ को हठात् रोक वज्रगदा से तत्काल ही घोड़ों को मार डाला। त्रिशिरा रथ से कूद पड़ा। दोनों वीरों में प्रथम गदा-युद्ध, फिर असि-युद्ध हुआ। अन्त में त्रिशिरा क्षत-विक्षत हो रक्त-वमन करता हुआ भूमि पर गिर गया। अमित पराक्रमी हनुमन्त को वानरों ने हर्षोल्लास से अभिनन्दित किया। उसने पांच दिन युद्ध किया।

अब क्रोधान्ध हो दुराधर्ष देवान्तक और नरान्तक अचिन्त्यती

नाम की लौहगदा ले वेग से वानरों की सेना में घुस पड़े। उनकी गदा की मार से वज्राहत शैल की भांति अनगिनत वानर मर-मरकर भूमि पर गिरने लगे। भय से वानरों की आंखें फट गईं, शरीर कांपने लगा, साहस टूट गया। इसी समय देव-दानव-दर्प-भंजक, महातेज अतिकाय सूर्य के समान देदीप्यमान रथ पर चढ़ आगे आया। उसे देखते ही वानर चीत्कार करके भागने लगे। इस अतिकाय को कालमेघ के समान रथ पर बैठे, गर्जन करते हुए काकुत्स्थ राम ने दूर से देखा। उन्होंने आश्चर्य से विभीषण से पूछा—"कोऽसौ धनुष्मान्, हयशतेन युक्ते स्यन्दने स्थितः पर्वतसंकाशः ?"

विभीषण ने कहा—"एषोऽतिकायो रावणानुज-सुतः देवदानव-दर्पहा।"

अतिकाय ने वानरों से युद्ध नहीं किया। वह रथ को आगे बढ़ा वहां पहुंचा, जहां राम-लक्ष्मण थे। उसने पुकारकर कहा—"रथस्थितोहम्, न प्राकृतं कंचन योधयामि। यस्यास्ति शक्तिर्ददातु मेऽद्य युद्धम्!"

इसपर क्रुद्ध होकर सौमित्रि लक्ष्मण तुरन्त उसके सम्मुख आ अपना नाम कह धनुष-टंकार करने लगे। सौमित्रि के धनुष की टंकार सुन उन्हें आगे बढ़ते देख, महाबली अतिकाय ने धनुष पर बाण चढ़ाते हुए कहा—"रे सौमित्रे, बालस्त्वमसि, गच्छ-गच्छ, किं कालसंकाशं मां योधयितुमिच्छसि ?"

सौमित्रि ने हंसकर कहा—"आत्मानं कर्मणा सूचय, न विकत्थितुमर्हसि। यो पौरुषेण युक्तः स तु शूर इति।"

सौमित्रि के वचन सुन अतिकाय ने क्रुद्ध हो लक्ष्मण पर आशीविष बाणों की अविरल वर्षा कर उन्हें ढांप लिया, परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें अर्धचन्द्र से काट डाला। तब अतिकाय ने खीजकर पांच बाण एक ही साथ मारे। लक्ष्मण ने उन्हें काटकर घोर ज्वलित ब्रह्मास्त्र को मंत्रपूत कर अतिकाय पर छोड़ा। वह महाग्नि-दीप्त महास्त्र काल-दण्ड के समान अतिकाय के आयुधों को छिन्न-भिन्न कर उसके किरीट जुष्ट सिर में जा लगा, जिससे उसका सिर शिरस्त्राण-सहित हिमवंत शृंग की भांति सहसा भूमि पर आ गिरा। दुर्जय महाकाय को इस प्रकार छिन्नमस्तक भूमि पर गिरते देख, राक्षस हाहाकार करते चारों ओर भाग चले। उन भागते हुओं को उदग्रवीर्य वानरों ने उछल-उछल कर और दबोचकर पीस डाला। जो जीवित बच रहे, लंका पहुंच रक्षराज के सम्मुख आ, भूपतित हो रुदन करने लगे। इस प्रकार

सोलह दिन राक्षस सेनानायकों ने घोर युद्ध किया।

जैसे अंशुमाली भुवनभास्कर उदयाचल में चढ़ता है, उसी प्रका महातेज, जगज्जयी रावण लंका के कोट के कंगूरों पर चढ़कर, समर क्षेत्र का निरीक्षण करने लगा। उसने एक विषादपूर्ण दृष्टि लंका के अपरिसंख्य स्वर्ण राज-मंदिरों पर डाली, जो अपनी मनोहरता से म को मोह लेते थे। पुष्प-वाटिकाओं में कनक विहार-हर्म्य, कमलालय में सरोवर की रजत-छटा तथा पुष्पित तरुराजि युवती के यौवन की भांति नेत्रों में मद दान देते थे। नगर की हाट-बाट रत्नों से भरी-पूरी थी, जैसे विधाता ने जगत् की सम्पदा सुचारु स्वर्ण-लंका के पदतल में पूजा-विधि से सजाई हो। हाय, आज यह राक्षसपुरी श्रीहीन शव की भांति हो रही है!

उन्नत, अटल, अचल, प्राचीरों पर सिंहविक्रम भट जो निर्भय सिंह की भांति घूमते थे, वे अब कहां हैं? लंका के सिंहद्वार सब बन्द हैं। उनके आसपास असंख्य रथ, गज, अश्व और पदातिकों की रेल-पेल हो रही है। दूर तक फैली हुई बालुका में राम-सैन्य ऐसी दीख रही है, जैसे आकाश में नक्षत्र। वह देखो, पूर्व द्वार पर संग्राम में दुर्निवार वीर नल, केहरी के समान सावधान बैठा है। दक्षिण द्वार पर हाथी के समान अप्रमबल अंगद और पश्चिम द्वार पर मारुति हनुमान सिंहनाद कर रहा है और उत्तर द्वार पर श्रीहीन राम—कौमुदीहीन चन्द्र के समान—सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण के साथ आसीन हैं। एक मास से इन्होंने तो मेरी लंका को ऐसा घेर लिया है, जैसे व्याध गहन कानन में सिंहनी को जाल में फंसा लेता है। शृगाल, गिद्ध शकुनि, श्वान और पिशाच निर्भय कोलाहल करते विचर रहे हैं। मृतकों की आंतों को खींच-खींचकर परस्पर लड़ रहे हैं। कोई रक्त पीकर तृप्त हो रहा है। मरे हुए हाथी कैसे भयानक प्रतीत हो रहे हैं! कितने रथ, रथी, अश्व, सादी, निषादी, शूली चकनाचूर खण्ड-खण्ड पड़े हैं। टूटे-फूटे भिन्दिपाल, वर्म, चर्म, असि, धनु, तूण, शर, मुद्गर और परशु पड़े हैं। तेजस्कर वीरों के शिरस्त्राण, मणिमय किरीट और कभी उन्हें धारण करने वाले सिर लुढ़क रहे हैं। हाय, हाय, जैसे किसान धान काटता है उसी भांति इस भिखारी राम ने मेरा सब कटक काट डाला है।

उसने आंख उठाकर दूर तक फैले हुए अनन्त सागर को देखा

सागर में बंधे सेतु को देखा—जिसपर बली वानरों का पहरा था। रावण ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"वाह रे, जलदलपति, क्या ही सुन्दर विजयमाल तूने कण्ठ में डाली है! अरे अधम सागर, आज तू भी बन्धन में पड़ गया! रे जलदलपति, धिक्कार है तुझे! अब तू न अजय रहा, न अलंघ्य। तू भी इस दाशरथि राम का क्रीत दास हो गया। तूने भी दासत्व की बेड़ियां पहन लीं। अरे निर्लज्ज, उठ। इस सेतु को तोड़-फोड़ कर इस प्रबल रिपु को अतल तल में डुबोकर मेरे हृदय की ज्वाला को शान्त कर। अरे, तेरे ही बल पर स्वर्ण-लंका अजेय कहाने का गर्व करती थी।"

वीर दशानन के ऐसे कातर वचन सुनकर मंत्रियों ने कहा—"महाराज, अब हमें राक्षसों के रक्षक महातेज कुम्भकर्ण की सहायता लेनी चाहिए। वह हमसे खिन्न और उदासीन हो अपनी रत्नगुहा में कूटस्थ जा बैठे हैं। सो यह काल कूटस्थ होकर बैठने का नहीं है, वीर्य-प्रदर्शन करने का है। आज राक्षस-जाति के सम्मुख कुलक्षय का संकट समुपस्थित है, यह जानकर महातेज कुम्भकर्ण उदासीन नहीं रह सकते। वे हमसे क्रुद्ध होकर भी रक्षेन्द्र विभीषण की भांति वैरी राम के शरणापन्न नहीं हुए। इससे उनका हमारे प्रति प्रेम और आपके प्रति सौहार्द प्रकट है। फिर वे आपके सहोदर हैं। उन्होंने अपने प्रबल प्रताप से देव-दैत्य जय किए हैं। कौन ऐसा वीर्यवान् पुरुष संसार में है, जो सम्मुख समर में महातेज तपस्वी कुम्भकर्ण का सामना कर सके? महाराज, आप हमारे—सब राक्षसों के स्वामी हैं। आप जगदीश्वर हैं, पृथ्वीपति हैं, महातेज के ज्येष्ठ भ्राता हैं। सो मंत्रियों-सहित आप जब उनके पास पहुंचेंगे, तो उनका क्रोध विगलित हो जाएगा। वे शस्त्रपाणि हो समर-भूमि में जाएंगे। उनके समरांगण में जाते ही हमारी पराजय जय में बदल जाएगी। उनके महत् तेजाश्रय हो, हम सब राक्षस वीर बात की बात में इन क्षुद्र वानरों को काट डालेंगे। हमारा तो यही मत है, आगे देव प्रमाण हैं।"

मंत्रियों के ऐसे हितकर, सारगर्भित, समयोपयोगी वचन सुनकर रावण महातेज कुम्भकर्ण के पास जाने को राज़ी हो गया। उसने आज्ञा दी—"ऐसा ही हो, सब कोई कुम्भकर्ण के पास चलें। बहुमूल्य उपानय साथ ले लो।" सौ स्वर्ण-कलश सुगन्धित मदिरा, सौ महिष, बहुत-से स्वर्णखचित वस्त्र और मणि ले महिदेव रावण, भाई कुम्भकर्ण को मनाने मंत्रियों-सहित उसकी रत्नगुहा पहुंचा। भेरी, शंख और मृदंगों का महानाद सुन कुम्भकर्ण रत्नगुहा से बाहर आया।

उसने रक्षेन्द्र की प्रदक्षिणा कर उसका पूजन किया, चरण-वन्दन की, फिर कहा—"राजन्, किस अभिप्राय से आपने मेरी एकान्त शान्ति भंग की ? ऐसा क्या विषम संकट आपपर आया ? आप तो स्वयं जगज्जयी, सर्वेश्वर हैं; मुझ मन्दकाम से आपका क्या प्रयोजन है ?"

रावण ने भाई का आलिंगन किया, फिर लज्जित-सा होकर कहा—"भ्राता, यह कुलक्षय का संकटकाल रक्ष जाति पर आ उप स्थित हुआ है। सीताहरण से संतप्त राम ने सब प्रमुख राक्षस धनु र्धरों को मार डाला है। एक मास से वह इस प्रकार रक्षकुल को भस्म कर रहा है, जैसे दावानल वन को भस्म करता है। अब यह तेरे क्रुद्ध होने का काल नहीं है वीर, तू ही रक्षकुल का रक्षक और मेरी दक्षिण भुजा है। तेरे ही बल से मैं जगज्जयी कहाता हूं। तेरे बल से मैं लंका पर अबाध शासन करता हूं। कुलद्रोही विभीषण ने वैरी का आश्रय ले रक्षकुल को कलुषित किया। अब तू प्रसन्न हो, महातेज कुम्भकर्ण, राक्षसों की डूबती नैया को उबार ले। उस भिखारी दाशरथि से लंका को महाभय उत्पन्न हो गया है। हे वीरबाहु, अब तू ही उस भय से लंका की रक्षा कर सकता है।"

रक्षपति जगज्जयी रावण के ऐसे कातर वचन सुन महातेज कुम्भकर्ण शोक और क्रोध से अभिभूत हो अश्रुपूरित नयनों से हततेज रक्षेन्द्र को देख दुखी होता हुआ बोला—"राजन्, मैंने तो पहले ही आपसे निवेदन किया था कि शत्रु-पत्नी सीता को लौटा दें। एक स्त्री के लिए राक्षसों के कुल को संकट में मत डालें। पर उस समय आपने अपने हितैषियों की बात पर कान नहीं दिया। आपने परम धर्मज्ञ आज्ञाकारी विभीषण को अपमानित कर शत्रु की गोद में धकेल दिया और मेरी भी अवमानना की। आज उसीका दुष्परिणाम आपके सामने आ रहा है। अपने हित की बात न मानकर अपने बल के घमण्ड पर ही आपने यह कुकर्म कर डाला जो आप जैसे प्रतापी जगज्जयी के लिए अशोभनीय था। आप महाप्रज्ञ, सब शास्त्रों के ज्ञाता, वेदोपदेष्टा जगदीश्वर हैं, पर आपने परिणाम पर विचार ही नहीं किया। महाराज, जो काम देश-काल के विपरीत किए जाते हैं, उनसे तो दुःख होता ही है। जो राजा नीतिशास्त्र के विपरीत आचरण करता तथा अपने मंत्रियों की शुभ सम्मति की अवहेलना करता है, वह सदा ऐसे ही दुःख भोगता है। परन्तु जो राजा मंत्रियों की उचित राय-को स्वीकार कर लेता है तथा अपने सुहृज्जनों को ठीक-ठीक पहचानता है, वही

कर्तव्याकर्तव्य का ठीक-ठीक निर्णय कर सकता है। नीतिनिपुण पुरुष धर्म, अर्थ, काम इन तीनों का यथासमय उपभोग करता है। जो नृपति अपने बुद्धिमान हितैषी मंत्रियों से परामर्श करके समयानुसार साम, दाम, दण्ड, भेद और पराक्रम इन पांच प्रकार के योग का, नीति-अनीति का, धर्म, अर्थ, काम का यथावत् सेवन करता है, उसे कभी भी ऐसे संकट का सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए राजा को तो अर्थशास्त्री मन्त्री की सम्मति पर ही चलना चाहिए। परन्तु जो मन्त्री अहित की बात को हित का रूप देकर कहते हैं, वे निश्चय ही आपके और समूची रक्ष जाति के शत्रु हैं। खेद है कि लका में ऐसे ही मंत्रियों की प्रधानता है। यही देख मैंने राजसभा से किनारा किया। अब मुझसे आपका क्या प्रयोजन है ?"

भाई कुम्भकर्ण के ऐसे नीतिवाक्य सुन रावण चुपचाप पृथ्वी की ओर देखता रहा। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। कुम्भकर्ण ने फिर कहना आरम्भ किया—"महाराज, जो राजा अपनी चंचल बुद्धि के कारण हितैषी पुरुषों को नहीं पहचानते, वही राजा शत्रुओं के अधीन होते हैं और जो राजा शत्रु की उपेक्षा कर अपनी रक्षा का प्रबन्ध नहीं करते, वे ही विपत्ति में पड़ते हैं। आपकी राजमहिषी भगवती मन्दोदरी ने भी यही उचित राय दी थी। भाई विभीषण ने भी यही कहा था और मेरी सम्मति भी उन्हींके अनुकूल थी, पर आपने कुछ भी विचार नहीं किया। अपने हठ पर अड़े रहना ही आपने ठीक समझा।

"महिदेव, सोचिए तो, कहां आपकी कनक लंका और कहां अयोध्यापुरी ! कहिए भाई, किस लोभ और किस कारण राम यहां आया है ? मैंने तो सुना है—यह क्षुद्र नर सरयू-तीर बसता था, पर क्या वह आपका स्वर्ण-सिंहासन पाने के लिए यहां आकर युद्ध कर रहा है ? हे वीर, उसे आप शत्रु कहते हैं। पर विचार तो कीजिए, इस कालरूप समराग्नि को किसने लंका में प्रज्वलित किया है। रक्षेन्द्र, आप तो स्वयं ही अपने कर्म-दोष से लंका को डुबोकर स्वयं भी डूब रहे हैं।"

रावण ने खिन्न-मन होकर कहा—"कुम्भकर्ण, तू इस प्रकार तिरस्कार क्यों करता है ? भाग्यदोष से दोषी की निन्दा कोई नहीं करता।" इतना कह रावण शोक-निमग्न हो बैठ गया।

यह देख कुम्भकर्ण ने खड़े हो ऊर्ध्वबाहु होकर कहा—"अथवा इन बातों से अब क्या ? मैं रक्षेन्द्र का अनुगत हूं। अन्नभुक्त हूं, आश्रित

हूं। लंका का संकट मेरा भी संकट है। राक्षसों का क्षय मेरा भी क्षय है। मैं जगज्जयी रक्षेन्द्र का सहोदर हूं। जो आपका शत्रु है, वही मेरा भी है। मैं जब तक जीवित हूं, रक्षेन्द्र को क्या चिन्ता है! मैं पृथ्वी के किसी वीर की आन नहीं मानता। अब आप अपने भवन में निश्चिन्त आनन्द कीजिए। मैं समरांगण में जाता हूं। मैं आज ही राम-लक्ष्मण-सहित सम्पूर्ण वानरी सेना को रण में जय करके ही रक्षेन्द्र का मुख देखूंगा। वानरों के रक्त-मांस से राक्षसों का तर्पण करके राम-लक्ष्मण का गर्म रक्त स्वयं पान करूं, तभी मैं महातेज कुम्भकर्ण विश्रवा का पुत्र कहाऊं। हे राक्षसेन्द्र, अब सन्ताप छोड़ दें, रोष को त्याग दें, स्वस्थ हों, मैं आपका सब ताप हरूंगा। आपके वैरी का समूल नाश कर डालूंगा। जो हित-वचन मैंने कहे, वे तो बन्धु-भाव से, भ्रातृस्नेह से कहे थे। अब आप शीघ्र शत्रु का क्रन्दन सुनेंगे। राम-लक्ष्मण को अब मरा ही समझिए। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान का तो मैं भक्षण ही करूंगा।"

इतना कह महातेज, अमितविक्रम कुम्भकर्ण ने रक्षेन्द्र की प्रदक्षिणा की और सिर नवाकर प्रणाम किया। रावण ने आलिंगन कर रथि-श्रेष्ठ, यम वरुण से भी अवध्य महाबल कुम्भकर्ण को अश्व, गज, रथ तथा महारथ के सहस्र गुल्म दिए।

विजय की दुन्दुभि और भेरीनाद से दिशाओं को प्रकम्पित करता हुआ अजेय गिरिकूट के समान महाकाय कुम्भकर्ण समरांगण में प्रविष्ट हुआ।

४०

पृथ्वी पर अतुलनीय, स्फटिकग्रथित, रत्नजटित सभा में, जहां रंग-विरंगे रत्नस्तम्भों पर सुनहरी छत—जैसे फणीन्द्र के असंख्य फणों पर भूभार। मोती, पन्ना और हीरक की झिलमिल झालरों के चंदोवों के नीचे हेमकूट पर शृंग-समान कान्तिमन्त महिदेव रावण स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा। चारों ओर बन्धु, मंत्री, सेनापति सभासद्। बन्दनवारों में गुंथे ताजे पुष्प, पल्लव, चम्पा, चमेली, मौलश्री, जहां की दीप्ति नयनों में चकाचौंध करती थी। चारुलोचना किंकरी भुज मृणाल से चंवर हिलाती-डुलाती। छत्रधर छत्र लिए सन्नद्ध कामरूप, अनुरूप, मनहर—शूलपाणि के अनुरूप शूल-हस्त द्वारपाल द्वार पर सन्नद्ध।

शीतल, मन्द, सुगन्ध, कोमल सामुद्र समीर विहंगों के कूजित कलरव को वहन करती, प्राणों को तृप्त करती प्रवाहित।

जगज्जयी महिदेव लंकापति अधोमुख, भग्नमन, शोक-संतप्त, मूक—मौन! अजस्र अश्रुधारा से बुझे हुए ज्योतिर्ज्वाल नयनों के ज्वलन्त अग्नि-स्फुलिंग। शरविद्ध मेघ से झर-झर झरती जलविन्दु धार-सी अश्रुधार।

भूलुण्ठित समरदूत, रक्तप्लुत। क्षत-विक्षत, भग्नप्राण, हत-जीवन, हतौज, स्खलित-वचन, गद्गद-वाक्य, जड़-कम्पित, दीन पंकलिप्त।

"कह रे कह, वीरपुंगव कुम्भकर्ण के निधन का समाचार कह!"

"महाराज, राक्षसों में श्रेष्ठ कुम्भकर्ण के साथ सहस्रों योद्धा आज समर-सागर में विलीन हो गए। उस सर्वग्रासी कालरूप राम ने सबको ग्रस लिया।"

"तो महातेज मृत्युंजय कुम्भकर्ण अब पृथ्वी पर नहीं रहे? अरे, जिसके भुजबल से देवता और दैत्य भी संतापित रहते थे, उसे उस भिखारी राम ने सम्मुख समर में मार डाला? तेरी यह बात तो स्वप्नवत् है। भाग्य ने शाल को फूल की पंखुड़ी से काट डाला। हा वीर-चूड़ामणि, हा भाई कुम्भकर्ण, किस पाप के फलस्वरूप आज मैंने तुझे खो दिया! अरे, मेरा दक्षिण बाहु ही टूट गया! कैसे मैं यह शोक सहन करूंगा? यह दुरन्त शत्रु तो इस प्रकार प्रतापी रक्षकुल का नाश कर रहा है, जैसे लकड़हारा एक-एक शाखा को काटकर सारे वृक्ष को समूल ही नष्ट कर रहा हो। हाय, अब कौन मेरे विपुल कुल को बचाएगा? अरे सर्वजित्, अमितविक्रम, राक्षस-कुल-रक्षक कुम्भकर्ण क्या सचमुच ही काल-कवलित हो गए? यह तो अनहोनी-सी बात है। अरी अभागिनी सूर्पनखा, किस कुक्षण में तूने पंचवटी में इस काल-सर्प को छेड़ा था! अरी, मैं तो तेरे ही दुःख से संतप्त हो इस दाहक अग्नि-शिखा, जान की गाहक को हेमगृह में लाया था। हाय-हाय, कुसुम-गुम्फिता, दीपावलि-उज्ज्वलिता मेरी यह अद्वितीय स्वर्णलंका तो जैसे श्मशान हो गई, सुनसान हो गई। अब वीरों की वाहिनी यहां कहां चलती हैं! अरे, कोकिलकण्ठी रक्षकिशोरियां वीणा, मुरज, मुरली बजाकर लंका के रमणीय उद्यानों में नृत्य क्यों नहीं करतीं? लंका की वधुएं मधुर गान के स्थान पर रुदन क्यों कर रही हैं? हा, मेरे ही पाप से!" इतना कह रावण ने दोनों हाथों से अपनी छाती पीट ली।

लंकापति के ये शोक-विदग्ध उद्‌गार सुन और रक्षेन्द्र को शोकाभिभूत देख मंत्री सारण ने बद्धांजलि कहा—"हे देव, दैत्य, नर और नागपूजित जगज्जयी महाराज, दास का अविनय क्षमा हो। आप साक्षात् जगदीश्वर हैं, महाज्ञानी हैं। आपको समझा सके, ऐसा जगत् में कौन है? महाराज, यदि वज्रपात से हिमशिखर खण्डित हो जाए, तो, क्या उसकी पीड़ा से हिमशैल कहीं अधीर होता है? इस भवमंडल में सुख-दुःख प्राणी को स्पर्श करता ही है। परन्तु अज्ञानी ही इससे मोहित होते हैं।" रावण ने शोकसंतप्त नेत्रों से मंत्री की ओर देखकर कहा—"सब जानता हूं, पर मेरा हृदय हाहाकार कर रहा है।" फिर दूत की ओर देखकर कहा—"अरे, विस्तार से कह। कैसे मेरे वीर अजेय भ्राता का उस दाशरथि ने हनन किया?"

"महाराज, मैं वह अबूझ कहानी कैसे कहूं? जब मतवाले हाथी की भांति धनुर्धर ने शत्रु-दल में प्रवेश किया, तब उसकी हुंकृति से शत्रु थर-थर कांपने लगे। वज्राग्नि की भांति उसके धनुष की टंकार सुनकर शत्रु भागने लगे। हे महाराज, उस समय वीरेन्द्र के गजयूथ और हाथीदल के पदाघात से जो घनाकार धूल उड़ी, उससे आकाश आच्छादित हो गया और देखते ही देखते वीरवर ने बाणों से समरांगण को छा दिया। वर्षा की बौछार के समान बाणों ने छूट-छूटकर काल-सर्प की भांति सहस्रों वानरों को ग्रस लिया। महाराज, महातेज महाराज कुम्भकर्ण ने अपने चरणों के आघात से पृथ्वी को कंपायमान करते हुए समरांगण में धनुष लेकर सात दिन विचरण किया तो वानरदल हाहाकार कर भाग चले।

"यम और वरुण से भी अवध्य महाबल कुम्भकर्ण को इस प्रकार अचल, अटल देख सातवें दिन अंगद ने सेना-नेतृत्व ले सेना को धैर्य दिया। समाश्वस्त किया। तब शत-सहस्र वानर-यूथ विविध शस्त्रास्त्र ले कुम्भकर्ण पर पिल पड़े। परन्तु दुर्मद कुम्भकर्ण ने उन सहस्रों वानरों को इस प्रकार मसल दिया, जैसे हाथी फूलों को कुचल डालता है। उनमें से बहुतों को समुद्र में फेंक दिया, बहुतों को आकाश में उछाल दिया, बहुतों के खण्ड-खण्ड कर डाले, बहुतों का हृदय विदीर्ण कर उनका रक्तपान किया। वानर प्राण ले भाग खड़े हुए। वानरों का ऐसा भयानक क्षय देख क्षोभ से हतप्रभ हो वानरेन्द्र अंगद ने ललकारा—'अरे ठहरो, ठहरो! भागते क्यों हो? चलो, आज या तो समर में शत्रु का हनन करेंगे या स्वयं क्षुद्र प्राणों को त्याग स्वर्गारोहण करेंगे। भय करने से क्या!'

" अंगद के ऐसे वचन सुन, मरने की ठान, जीवन की आशा छोड़ वानरों के यूथों ने फिर महातेज को घेर लिया। परन्तु महाराज कुम्भकर्ण ने सभीको मसल डाला और प्रबलपराक्रम अंगद के वक्ष मे शूल का प्रहार किया, जिससे अंगद मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गया। यह देख वानरेन्द्र सुग्रीव ने भीमविक्रम से रथीन्द्र को आक्रान्त किया। मुहूर्त-भर दोनों का परम क्षोभकारी युद्ध हुआ। सुग्रीव रक्त से लथपथ होकर भूमि पर गिर गया। इसी समय दाशरथि लक्ष्मण ने घोर रौद्रास्त्र वीरवर पर प्रयोग किया। उस अस्त्र से विद्ध होकर वह रक्षशिरोमणि राम के सम्मुख दौड़ा। तब महाबली लक्ष्मण ने फुर्ती से अनेक बाणों से उसके हृदय को छेद दिया। वे बाण इस प्रकार वीरेन्द्र के वक्ष में घुस गए, जैसे सर्प बांबी में घुस जाता है। वीरेन्द्र के हाथ से गदा खिसक गई, शरीर से इस प्रकार रुधिर चूने लगा जैसे पर्वत से गेरू झरता है। तब वीरवर ने अन्तक के समान लक्ष्मण पर सहस्र भार का शूल फेंका। पर लक्ष्मण ने उसे मार्ग में ही काट डाला। यह देख कुम्भकर्ण धन्य-धन्य कहकर बोला—'अरे रामानुज, तेरा पराक्रम स्तुत्य है। पर मैं अभी दाशरथि राम से युद्ध चाहता हूं।'

" वीरेन्द्र के ये वचन सुन राम ने कालबाण हाथ में लेकर युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। हाय, अब आगे क्या कहूं ? "

"कह-कह, मैं सुन रहा हूं। तू वैरी राम का पराक्रम बखान कर।"

"कैसे कहूं ? ज्योंही राम ने अपना कुल-गोत्र कहकर धनुष-टंकार की और वीरेन्द्र ने लाल-लाल आंखें कर, काल की भांति छलांग मारी, त्योंही उस वैरी राम ने बाणों से वीरेन्द्र को ढांप लिया। दाशरथि का हस्तलाघव देख रक्षेन्द्र विस्मित हो गया। वह क्षतविक्षत हो, वानरों को मारकर वहीं भक्षण करने लगा। इसी बीभत्स व्यवहार से संत्रस्त हो वानर 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' करने और भागने लगे। फिर तो ऐसा युद्ध हुआ कि देव-दैत्य स्तम्भित हो गए। तब राम-लक्ष्मण ने फुर्ती से शत-सहस्र बाणों से महातेज के दोनों हाथ काट डाले। तब वेदना और कुण्ठा से मुंह फैलाकर कुम्भकर्ण दोनों को खाने दौड़ा। इसपर लक्ष्मण ने उसका मुंह बाणों से भर दिया। पैर भी काट डाले। इसी समय दाशरथि ने ब्रह्मास्त्र धनुष पर रखकर फेंका जिससे रथीन्द्र का सिर कटकर चार धनुष दूर पृथ्वी पर जा गिरा। इसके बाद मुहूर्त-भर कबंध ने युद्ध किया। अन्त में समरांगण में उसका भूपात हुआ। हे राक्षस-कुलपति, रक्षेन्द्र महातेज कुम्भकर्ण के साथ सभी राक्षस तिल-तिल करके कट मरे। भाग्यदोष से अकेला मैं ही स्वामी को

यह दारुण संदेश देने को जीवित बच गया हूं। मैं महातेज मृत्युञ्जय महाराज कुम्भकर्ण को असंख्य योद्धाओं के साथ शर-शय्या पर सोता छोड़ यहां आया हूं। हे महाराज, मेरा वध कराइए।"

रावण ने गहरी सांस खींचकर कहा—"धन्य है वीरधात्री लंका! हे वीर भ्राता, आज तू जिस वीर-शय्या पर सो रहा है, उसपर सोने की कौन महाभाग इच्छा न करेगा! किन्तु हे वीरेन्द्र, तेरे बिना मैं जीवित कैसे रहूंगा? अरे वीर, एक बार उठकर शत्रुदल को अतल जल में डुबा दे। देखो, यह वीरधात्री कनकपुरी वीरशून्या हो गई, जैसे ग्रीष्म में वनस्पति पुष्पशून्य और नदी जलरहित हो जाती है।"

कुछ देर आंसू बहाकर रावण ने फणीन्द्र की भांति सांस भरते हुए कहा—"हे भ्राता, तेरे पराक्रम से मेरा वंश उज्ज्वल हो गया। अब इस काल-समर में मैं किसे भेजूं? कौन राक्षस-कुल का मान रखेगा? अब मैं ही जाऊंगा। अरे! लंका के विभूषणों, आओ, युद्ध-साज सज लो। देखूंगा उस राघव को, उसमें कितना बल-वैभव है। अब पृथ्वी रावण या राम से रहित होने वाली है। उठो रे राक्षस वीरो, उठो; देव-दैत्य-विजेताओ, उठो! जगज्जयी राक्षसकुमारो, आज मैं काल का साम्मुख्य करूंगा।" इतना कहकर रावण ने स्वर्ण-सिंहासन त्याग दिया।

मेघ-गर्जन की भांति दुन्दुभि बज उठी, जिसके भैरव रव से देव, दानव, नर, नाग त्रस्त हो गए। योद्धा अंग पर शस्त्र धारण करने लगे। वज्रग्रीव घोड़े अश्वशाला से निकलने पर हिनहिनाने लगे। सुनहरी छतों से सुशोभित सहस्रों रथ घंटियों की झंकार करते हुए बढ़ चले। वीर सिरों पर लौहावरण पहन, बड़ी-बड़ी अमोघ ढालें हाथों में लिए, सुनहरी म्यानों वाली तलवारें कमर में बांध, शरीर को लौह-कवच से आवृत कर श्रेणीबद्ध होने लगे। हाथों में अंकुश लिए, भीम-काय मदमत्त हाथियों को वश में करते हुए महावत साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र की भांति प्रतीत होने लगे। बड़े-बड़े डील के सुभट अपना विकराल परशु कन्धे पर उठाए, मृत्यु को चुनौती देते-से आगे आए। रण-वाद्यों के गम्भीर निनाद से लंका हिल उठी। अश्वव्यूह उल्लास से हिनहिनाने तथा गजसमूह चिंघाड़ने लगा। शंखों का भैरवनाद, धनुषों की कर्णकटु टंकार, तलवारों की झनझनाहट ने कानों को बहरा कर दिया। वीरों के पद-भार से कनक-लंका धरती में धंसने लगी।

अन्तःपुर में जाकर लंकेश्वर ने देखा कि राजमहिषी मन्दोदरी का केशपाश विशृंखल है। उसकी भूषणविहीन देहश्री ऐसी हो गई है, जैसे पाला गिरने से लता कुसुमहीन हो जाती है। उसके अश्रुमय नेत्र, शिशिर की रात में जैसे पद्मपर्ण होता है, वैसे हो गए हैं। शोकरूपी आंधी में जैसे उसके निःश्वास प्रलय-वायु-से जल्द-जल्द निकल रहे हैं। किंकरी नेत्र-वारि में भीगी त्रस्त हस्तों में कठिनता से चंवर वहन कर रही हैं।

शय्यागत होने पर भी महिदेव ने विलास नहीं किया, पान नहीं किया, नृत्य में अभिरुचि प्रकट नहीं की, केवल फणीन्द्र की भांति गहरे-गहरे निःश्वास लेता छटपटाता रहा। तब रक्षराजमहिषी मन्दोदरी ने अश्रुपूरित नेत्रों से रक्षेन्द्र को देखकर कहा—"हे लंकानाथ, अब इस भांति शोकदग्ध होने से क्या होगा? हाय, देखो तो, इस मणि-महालय में कैसा विषाद छाया है! एक-एक करके लंका वीरशून्य हो गई। अब इस कालसमर में स्वयं रक्षेन्द्र इस अभागिनी दासी को असहाया छोड़कर जा रहे हैं। हाय, इस दुर्भाग्या सीता ने अपने अश्रु-सागर में देवदुर्लभ मणिमहालय सहित रम्या स्वर्णपुरी को भी डुबा दिया! सुवासित मद्य की धार के स्थान पर अब तो मणिमहालय में अश्रुधार ही दीख पड़ती है। आनन्द के उल्लास के स्थान पर महिदेव फणीन्द्र की भांति दीर्घ श्वास ले रहे हैं। जिनके भय से देव, दैत्य, नाग, यक्ष थर-थर कांपते थे, वे जगज्जयी वीर शय्या पर वैकल्य से पीड़ित हैं।"

रावण ने कहा—"देवि, यह नियति-नियत भाग्य की रेख है, इसे कौन मिटा सकता है! अब तो कल का सूर्य देखेगा कि पृथ्वी राम या रावण रहित होनेवाली है। अब तुम मेरा प्रलयंकर युद्ध देखना!" इतना कह रावण गहरे-गहरे श्वास लेने लगा।

महिषी ने पति को अपने कोमल अंक में भर लिया। उसके सिर को अश्रु-जलसिक्त कर उसने कहा—"हे जगदीश्वर, अब आप तनिक निद्राधीन हों, मन को शांत करें, अधीर न हों, शत्रु का विनाश तो कल होगा। यह रात्रि तो आप सुख से व्यतीत कीजिए।"

राजमहिषी के यत्न से महाशोकी रावण निद्रागत हुआ। तब महिषी ने मेघनाद की धात्री प्रभाषा को बुलाकर कहा—"हे चतुरे, तू अभी जा, वीरबाहु पुत्र मेघनाद से कह—'मृत्युञ्जय महातेज कुम्भकर्ण को काल-समर ने ग्रस लिया, लंका वीरशून्या हो गई। अब शोकसंतप्त महिदेव जगदीश्वर स्वयं युद्धसाज सज रहे हैं। पुत्र पिता

के लिए अपना धर्म निर्वाह करे, इसका यही समय है।' "

कामचारिणी प्रभावा तुरन्त प्रमद वन की ओर चल दी, जहां रथीन्द्र इन्द्रजित् आनन्द से सुरा-सुन्दरियों का उपभोग कर रहा था। प्रभावा ने जाकर देखा, प्रमद वन के स्वर्णद्वार पर हाथ में धनुष-बाण लिए वामाएं निर्भय घूम रही हैं। उनके तरकश के शर मणिमय फणियों के समान शोभित हैं। उन्नत कुचों पर कसे हुए स्वर्ण-कवच ऐसे लग रहे थे, जैसे स्वर्ण कमल को बाल रवि-किरणों ने आच्छादित कर लिया हो। उनके तीक्ष्ण कटाक्ष तो उनके बाणों से भी तीखे थे। अपने यौवन में मत्त हथिनी-सी वे फिर रही थीं। उनके भारी नितम्बों में स्वर्ण-करधनी किंकिणि हो नुपुर की गूंज को द्विगुणित कर रही थी। प्रमद वन के संगीत की तरंगों से वातावरण मुखरित हो रहा था। रथीन्द्र इन्द्रजित् यहां वारांगना-कुल के साथ स्वच्छन्द लीला-विलास कर रहा था। लंका पर प्रलय-मेघ छा रहे हैं, इस बात से वह सर्वथा अपरिचित था। दानवनन्दिनी सुलोचना प्रमिला ने हरित मणिपात्र में लाल-लाल मदिरा भरकर प्रियतम मेघनाद को देते हुए कहा—"पियो वीर स्वामी, इस मधु के साथ इस चिर किंकरी का चिर प्रेम भी पान करो।"

मेघनाद ने एक हाथ में पात्र लिया, दूसरी भुजा प्रियतमा के कण्ठ में डालकर बोला—"वाह, आज तो जीवन भी इस मद्य की भांति उन्माददाता हो रहा है। यह पृथ्वी कितनी सुन्दर है प्रिये!"

"केवल वीर पुरुष के लिए स्वामी! कृमि-कीट की भांति जीवित रहने वालों के लिए यही धराधाम नरक-तुल्य है।"

"अधम कायर कीटों की बात क्या! आओ, हम लोग एक-एक पात्र इस सुवासित मद्य का और पीकर इस सुरभित वासन्ती वायु में भांति झूमें।"

"पियो, वीर स्वामी!"

सुलोचना ने पात्र भरा। इसी समय धात्री प्रभावा ने वहां प्रवेश किया।

वीरेन्द्र धात्री प्रभावा को देखते ही मणिपीठ से उठ खड़ा हुआ। उसने धात्री के चरणों में प्रणाम कर कहा—"मातः, आज इस असमय में तू किस अभिप्राय से इस भवन में आई है? लंका में कुशल तो है?"

धात्री ने मेघनाद का सिर सूंघकर नेत्रों से अश्रु विसर्जित करते हुए कहा—"पुत्र, लंका में कुशल कहां? लंका के रक्षक कुम्भकर्ण सहित सब सुभट समरांगण में उस दुर्जय राम के बाणों के भोग हो गए

अब तो लंका वीरशून्या हो गई। देवजयी वीरबाहु भी मारा गया और अब जगदीश्वर रक्षेन्द्र स्वयं ही रण-साज सज, उस महाकाल राम के सम्मुख समरांगण में जा रहे हैं। महिषी ने कहलाया है—पिता के लिए पुत्र के कर्त्तव्य-पालन का यही काल है।"

धात्री की बात सुनकर मेघनाद ने कहा—"यह कैसी बात ? भगवति, किसने महातेज, अमितविक्रम कुम्भकर्ण का वध किया ? किसने मेरे अजेय चाचा वीरबाहु का हनन किया ? क्या उस राम ने ही ? मैंने तो उसे उस दिन प्रचण्ड युद्ध में मार डाला था। लंका को अपनी ओर से निष्कंटक करके ही मैं यहां आया था। यह तू क्या अद्-भुत-अनहोनी बात कह रही है जननी ! मुझ दास से सत्य बात स्पष्ट कह !"

प्रभापा ने कहा—"अरे पुत्र, वह राम तो मायावी मानव है। वह तो मरकर भी जी उठा और एक-एक ग्रास से इस प्रकार लंका के वीरों को ग्रस लिया है, जैसे दावानल वन को ग्रस लेता है। अब यह लंका वीरों की हुंकार से भरी वीरधात्री नहीं है, अब तो श्मशान-भूमि हो रही है। अब यहां कोकिलकंठी दिव्य बालाओं की मधुर तान सुनाई नहीं देती। अब तो सद्यःविधवाओं के नयन-नीर लंका के राज-पथ पर बह रहे हैं। हे वीर चूड़ामणि, अब तू कमर कस और जगदीश्वर का संकट टाल। उस दुरात्मा राम को भाई-सहित मारकर लंका के अकंटक राज्य को पुनर्जीवित कर !"

धाय के वचन सुन क्रोध में भरकर इन्द्रजित् मेघनाद ने अपने कण्ठ में पड़ी कुसुम माल को तोड़कर फेंक दिया। कानों में हीरक-कुण्डल खींच पदतल में रौंद डाले। मणिमय पान-पात्र दूर फेंक दिए। उसने सिंह-विक्रम से कहा—'धिक्कार है मुझे ! वैरी ने स्वर्ण-लंका को आक्रांत किया है और मैं यहां रमणी-दल में विहार कर रहा हूं !" उसने गरजकर कहा—"लाओ मेरा रथ, मेरे शस्त्र और कवच ! मैं अभी रिपुदल का संहार करूंगा।"

रथीन्द्र ने तत्क्षण ही वीराभरण सजा ; रथचक्र विद्युत्-छटा दिखाने लगा। अब सुन्दरियों में मूर्धन्या सुलोचना प्रमिला ने अपने को उसके वक्ष पर डालकर कहा—"हे वीरमणि, तुम मुझ दासी को यहां खण्डित कर कहां चले ? अरे, तुम्हारे वियोग में मैं एक क्षण भी नहीं जी सकती। हे प्राणेश्वर, किस अपराध पर तुम आज मुझ किंकरी को त्याग रहे हो ?"

मेघनाद ने हंसते हुए कहा—"प्रिये, तूने जिस स्नेह-बन्धन में

मेघनाद को बांध रक्खा है, उससे मुक्त होने की सामर्थ्य भला मुझ दास में कहां है ! अरी सुभगे, तू चिन्ता न कर। मैं उस भिखारी राम का भ्राता-सहित समर में नाश कर शीघ्र ही लौट आऊंगा। अब तू मुझे जाने दे।"

इतना कह, बलपूर्वक प्रेममयी प्रमिला के आलिंगन से छूट रथी रथ पर चढ़ गया। रथ घोर रव से इस प्रकार चला, जैसे मैनाक शैल पंख फैलाकर उड़ चला हो। सुलोचना प्रमिला छिन्न लता-सी भूमि पर गिर गई।

रथीन्द्र मेघनाद के अविरत धनुष-टंकार से लंका कांप उठी। समुद्र उथल-पुथल हो गया। रक्षेन्द्र रण-साज मज रहा था, रण-वाद्य बज रहे थे। हाथी चिंघाड़ रहे थे, घोड़े हिनहिना रहे थे। रथी लोह-वर्म पहने हुंकार भर रहे थे। रथों पर रंग-विरंगी ध्वजाएं उड़ रही थीं। रथ द्रुतगति से इधर से उधर जा रहे थे कि मेघनाद सिर पर कनकटोप पहने, विकराल खड्ग, शूल धारण किए, पीठ पर अभेद्य ढाल लिए द्रुतगति से वहां जा पहुंचा। राक्षसदल में जय-जयकार होने लगा। रथीन्द्र ने जगदीश्वर के चरणों में साष्टांग दण्डवत् किया। रावण ने पुत्र को उठाकर छाती से लगाया। वीरेन्द्र ने कहा—"पिता, यह क्या ? मैंने सुना है, मायावी राम मरकर भी जी उठा। यह तो अद्भुत बात है ! अब आप मुझे अनुमति दीजिए कि उस पतित को शरानल से भस्म कर, भस्म को वायु में उड़ा दूं या उसे बांधकर आपके पाद-पद्म में अर्पित करूं !"

रक्षेन्द्र ने पुत्र का बारम्बार आलिंगन करके कहा—"अरे पुत्र, अब तू ही तो रक्षकुल का एकमात्र आधार बच रहा है। इस काल-समर में तुझे कैसे भेज दूं ? अरे, भाग्य मेरे प्रतिकूल है। भला किसीने सुना था कि जल में शिला तैरती है, मनुष्य मरकर जी उठता है ?"

"राजेश्वर, राम तो एक तुच्छ नर है। आप उससे भयभीत क्यों हैं ? मुझ दास के रहते आप समरांगण में जाएं, भला यह कभी संभव हो सकता है ! हे पिता, यह सुनकर देवेन्द्र हमारा उपहास करेगा। पृथ्वी के वीर हंसेंगे। मैंने तो राम को परास्त कर छोड़ दिया। अब आप एक बार मुझे और आज्ञा दीजिए। मैं देखूं, इस बार वह कैसे मेरे हाथ से बचता है।"

"अरे पुत्र मैंने महातेज, अमितविक्रम कुम्भकर्ण को युद्धार्थ भेजा

था। देख, उसका निर्जीव शरीर सिन्धु-तीर पर पड़ा है जैसे वज्राघात से गिरि-शृंग खण्डित हो गया है। फिर भी पुत्र, समय ही जब उपस्थित है तो तू जा। मैं तुझे सम्पूर्ण राक्षस-चमू का सेनापति नियुक्त कर रहा हूं।"

इतना कह राक्षस-राज ने समुद्र-जल ले यथाविधि पुत्र का अभिषेक कर दिया। बन्दीजन गुणगान करने लगे। वीणा बजने लगी। राक्षसपुरी में आनन्द और उत्साह की लहर व्याप्त हो गई।

रावण ने भुजा ऊंची कर कहा—"राज-सुन्दरी लंके शोक दूर कर! देख, राक्षस-कुल-सूर्य उदय हुआ है। दुःख-रात्रि बीत रही है। सुप्रभात होनेवाला है। वीरेन्द्र के कोदण्ड-टंकार से सुरपति कांप रहा है। उसके तूणीर में पाशुपति महास्त्र भरे हैं। प्रिये मन्दोदरी, देखो-देखो यह कौतूहल। अरिन्दम इन्द्रजित् युद्ध-साज सज रहा है। अब राक्षस-कुल-कलंक विभीषण, दण्डकारण्य का वह निष्कासित मानव राम और तुच्छ वानर जीवित न रहेंगे। अरे, बाजे बजाओ, उत्सव मनाओ और जय-जयकार करो!"

कनक-लंका एक बार फिर वाद्यों की ध्वनि और जय-जयकारों से परिपूर्ण हो उठी।

४१

आठ दिन से इन्द्रजित् मेघनाद का राम से घोर संग्राम चल रहा था।

देवेन्द्र पुरन्दर अत्यन्त औत्सुक्य से रावणि और राम के युद्ध के परिणाम को देख रहे थे। जब तक रावण और रावणि मेघनाद जीवित हैं, तब तक देवेन्द्र देवलोक में सम्पन्न नहीं है। उसे वह क्षण खल रहा था, जब लंका में बारहों आदित्यों के प्रतिनिधियों और पृथ्वी के सब देव, दैत्य, नाग, असुर, जनों के सम्मुख देवराट् इन्द्र ने बन्दी-दशा में सप्त समुद्रों, सप्त तीर्थों, सप्त महाकूपों का जल मणिकलश में भर मेघनाद के मूर्धा पर अभिषेक किया, और सप्तद्वीप-पतियों ने उसके पीछे खड़े होकर उसके मस्तक पर छत्र लगाया था। नृवंश के सात सौ नरपतियों ने अतिरथी मेघनाद के रथ के अश्वों की वल्गु पकड़ उसका रथ हांका था। लोक-लोक के आगत-समागत, लक्ष-लक्ष नृवंश के प्रतिनिधियों ने महिदेव, सप्तद्वीप-पति सर्वजयी रावण और इन्द्रदमन करनेवाले अतिरथी मेघनाद मृत्युंजय का जय-घोष किया था। उस

जयघोष से पृथ्वी की दिशाएं कम्पित हो गई थीं। भूलोक चलायमान हो गया था।

ये सारी ही बातें देवेन्द्र पुरन्दर भूला न था। सब दृश्य उसकी आंखों में शूल के समान चुभ रहे थे। इस दुरन्त रावणि के रहते देवलोक के साम्राज्य ही की नहीं, देव-संस्कृति की भी कुशल न थी। अब राम ही पर उसकी आशा केन्द्रित थी। संयोग ऐसा आ लगा कि राम ने कटक ले समुद्र-बन्धन कर असाध्य साधन कर लिया और लंका की सारी समृद्धिश्री को श्रीहत कर दिया। महातेज कुम्भकर्ण-सहित रावण के पुत्र-परिजन-परिवार को मार डाला, तो अब उसे आशा की कोर दिखाई देने लगी थी। पर वह यह भी भली भांति जानता था कि जब तक राक्षसेन्द्र रावण जीवित है, जब तक मृत्युंजय, अमितपराक्रम मेघनाद है, राम के प्राण संकट ही में हैं। राम की जय, राम के भगीरथ प्रयत्न बेकार हैं। उसने राम को सब संभव सहायता देने का निश्चय किया।

देवेन्द्र हेमासन पर बैठा, चारुनयनी दानववाला पौलोमी शची वामांग में बैठी। सिर पर मणि-मुक्ताखचित राजछत्र। समीर नन्दन कानन का सुखद-मृदु सौरभ ला रहा था। दिव्य बाजे बज रहे थे। सुचारुहासिनी रम्भा, उर्वशी, चित्रलेखा, सुकेशिनी, मिश्रकेशी अप्सराएं नृत्य-गान कर रही थीं। देव-देवेन्द्र सोम-पान कर रहे थे। गन्धर्व हेम-पात्रों में सोम भर-भरकर दे रहे थे। कोई किंकर कुंकुम, कोई कस्तूरी, कोई केसर, कोई चन्दन और कोई सुगन्धित कुसुम-माल लाकर अर्पण कर रहे थे। इसी समय देवर्षि नारद ने इन्द्रलोक में प्रवेश किया। देवेन्द्र ने आनन्दित होकर कहा—

"स्वागत देवर्षि, भले पधारे! मैं तो बड़े औत्सुक्य से आपकी बाट देख रहा था।"

"देवराट् देवेन्द्र के औत्सुक्य का कारण क्या है? यह लीजिए वेदसूक्त मैंने रच दिया। इसमें देवेन्द्र की अक्षय स्तुति मैंने गान की है।" इतना कह नारद देवर्षि ने वेदसूक्त गान किया।

सुनकर त्रिदिव देव प्रसन्न हो 'धन्य-धन्य' कहने लगे।

देवेन्द्र के आदेश से गन्धर्वों ने देवर्षि को हेमपात्र में मधुपान कराया, सोमपान कराया।

सोमपान कर, मधुपान कर देवर्षि नारद ने हर्ष और सन्तोष प्रकट करते हुए हंसकर कहा—"हां, देवेन्द्र के औत्सुक्य का कारण क्या है?"

"देवर्षि, वह दुरन्त रावणि, जिसका मुझ देवेन्द्र को तीर्थोदक से ऐन्द्राभिषेक करना पड़ा, मेरे औत्सुक्य का विषय है।"

"महिदेव पर दाशरथि राम ने अभियान किया है, अभी उसका दूत गन्ध-संजीवनी ले गया है।"

"गन्ध संजीवनी से क्या होगा, दुरन्त रावणि तो मरेगा नहीं।"

"कैसे मरेगा, उसके पास नागसिद्ध अक्षय तूणीर है, दिव्य-धनुष है, धूर्जटि रक्षकुल पर प्रसन्न हैं! रावणि रौद्रतेज से सम्पन्न है!"

"तो जब तक यह दुरन्त रावणि मरता नहीं, देवलोक में देवेन्द्र की मर्यादा नहीं है।"

"किन्तु देवेन्द्र, मृत्युञ्जय रावणि देवाधिदेव से दिव्यास्त्र पा, दिव्य रणकौशल सीख, अदृष्ट रह, स्वयं अलक्ष्य हो, शत्रु को लक्ष्य कर सकने में समर्थ है। सम्मुख युद्ध में वह नहीं मर सकता।"

"देवर्षि ऐसा कोई उपाय नहीं है?"

"है। देवेन्द्र धूर्जटि की सेवा में जाएं, धूर्जटि को राम पर सदय करें। कुमार कार्तिक के पास वैसा ही अक्षय नाग-तूणीर और दिव्य धनुष है, वह प्राप्त करके राम को दें, तभी मेघनाद मर सकता है।"

"देवाधिदेव रुद्र क्या राम पर यह अनुग्रह करेंगे?"

"वे रावण पर प्रसन्न हैं। रावणि उनका शिष्य और वरलब्ध पुरुष है। धूर्जटि को प्रसन्न करना कठिन है, परन्तु देवेन्द्र यदि शैल-नन्दिनी पार्वती को अनुकूल कर सकें तो काम बन सकता है।"

"शैलनन्दिनी क्या सदय होंगी?"

"शची पौलोमी यदि जाएं तो असंभव नहीं।"

"तो हम दोनों ही देवाधिदेव की सेवा में जाते हैं। आपने अच्छी सम्मति दी।"

"और भी बात है!"

"वह क्या?"

"राम पादातिक हैं, देवेन्द्र उन्हें अपना दिव्य रथ लेकर मातुलि को भेज दें।"

"ऐसा ही होगा देवर्षे!"

देवेन्द्र के संकेत से गन्धर्वों ने देवर्षि वामदेव नारद को फिर मधु दिया सोमपान कराया और विदा किया।

देवेन्द्र जानता था कि मेघनाद के पास नागसिद्ध अक्षय तूणीर और दिव्य धनुष है, जो उसे देवाधिदेव रुद्र की कृपा से प्राप्त हुआ है। रावणि रौद्रतेज से सम्पन्न है। धूर्जटि उसपर कृपालु हैं। जब

तक राम के पास भी रौद्रास्त्र न हो, वैसा ही नागसिद्ध अक्षय तूणीर न हो, दिव्य धनुष न हो तब तक मेघनाद का मारना शक्य नहीं है। उस दिव्य अक्षय नाग-तूणीर और दिव्य धनुष ही के द्वारा वह रौद्र कौशल से सम्पन्न हो अदृश्य रह चतुर्मुखी बाण-वर्षा कर सकता है। स्वयं अलक्ष्य रह शत्रु को लक्ष्य बना सकता है। प्रतापी से प्रतापी शत्रु को नागपाश में बांध सकता है। राम पादातिक हैं, उनके पास नाग-तूणीर नहीं, नाग-धनुष भी नहीं, तब कैसे वह सम्मुख समर में इस दुरन्त मेघनाद को मार सकते हैं! पुरन्दर ने अपना दिव्य रथ, जो अभेद्य और मनोरम था, सारथि मातुलि-सहित राम की सेवा में भेजने का संकल्प कर लिया। साथ ही दिव्य रौद्र धनुष और रौद्र तूणीर, जैसे भी संभव हो, राम के लिए प्राप्त करने तथा राम पर देवाधिदेव रुद्र को सदय करने के लिए कृतोद्यम हुआ।

४२

पौलोमी शची इन्द्राणी ने मदन-प्रिया रति को बुलाकर कहा—"अरी मन्मथ-वधू, आज मैं हेमवती शैल-सुता उमा की चरण-शरण में कैलास जा रही हूं। आ, तू मुझे शृंगारित कर दे।" रति ने हंसकर इन्द्राणी को सुवासित तैल लगा केशविन्यास किया; हीरा, मोती, मणिखचित भूषण, चन्दन, कुंकुम और कस्तूरी आदि सुगन्धों का लेप अंग-उपांगों पर किया। फिर रत्नसंकलित, आभायुत पटवस्त्र धारण करा पैरों में महावर दी। शची का रूप हेमकान्ति के समान देदीप्यमान हो उठा। इस रूप-माधुरी को देखकर रति ने हंसते-हंसते कहा—"देवि, इस भुवनमोहन रूप को लेकर तुम भवन से बाहर कैसे जाओगी? इस रूप को देखकर तो जगत् मत्त हो जाएगा। तुम्हारे अधरामृत को देख देव-दैत्य अमृत को भूल जाएंगे। वेणी को देख नाग लजाकर भाग जाएंगे। उन्नत कुचों को देख मन्दराचल अचल हो जाएगा।"

रति के ये वाक्य सुन चारुमती शोभना शची ने अपने अवयवों को ऐसे ढंक लिया जैसे भस्म-राशि से अग्नि ढकी जाती है। वह गंधावृत उषा की भांति हस्तिदन्त-रचित गृहद्वार से बाहर आई।

देवेन्द्र ने पौलोमी शची सहित देव-लोक से कैलास को प्रस्थान किया। हिमगिरि-शृंग पर हेमकूट के समान धवलध्वज ऐरावत धीर-मन्थर गति से उर्ध्वगत होता जा रहा था। निरभ्र आकाश में बालो-

दित अरुण की स्वर्णाभा से हिमशृंग की शोभा अकथ्य हो रही थी। उस शोभा को निरख देवेन्द्र ने कहा—"पौलोमी, प्रस्फुटित कमल से जैसे मृणाल की शोभा बढ़ती है, वैसे ही तेरे सान्निध्य में मैं सम्पन्न हूं।"

शची ने हंसकर कहा—"ठीक ही तो है, पारिजात परिमल के कारण ही पवन का आदर होता है। परन्तु, अम्ब से मैं कहूंगी क्या, यह तो बताओ!"

"जैसा अवसर हो। तू तो प्रत्युत्पन्नमति है। वह दुष्ट इन्द्रजित् नामधारी राक्षस जैसे मरे, वही तू कर।"

"तो धूर्जटि की सेवा में क्यों? पितृचरण में चलकर क्यों न निवेदन करें? वह तथाकथित इन्द्रजित् क्या पितृचरणों का भी साम्मुख्य करने की सामर्थ्य रखता है?"

"प्रिये, उसकी सामर्थ्य का अन्त नहीं है। धूर्जटि को छोड़ हमें और आसरा नहीं है। हमें धूर्जटि को उस दुरात्मा से विमुख करना ही होगा।"

"अम्ब क्या मेरे कहने से सुनेंगी?"

"क्यों नहीं, त्रिभुवन में कौन है जो तेरे कटाक्षपूरित अनुरोध को टाल सके? फिर, अम्ब तो तुझपर बाल्य-काल से सदय हैं।"

"कैलास पर क्या हम आ पहुंचे? यह पर्वत जो श्याम तरुराशि में है, इसके उस पार, वह जो स्वर्णिम उत्तुंग हिमकूट है, वही तो कैलास है।"

"वही है प्रियतमे!"

"शरवन से तो यह अति मनोरम है, इसीसे कैलासी शरवन को छोड़कर यहां आ बसे हैं।"

"तब क्या! तू तो जानती ही है कि कामदहन के समय ही रुद्र ने क्रुद्ध हो शरवन भी भस्म कर दिया था। अब तो उसे अगम्य क्षेत्र मान लिया गया है। नृवंश के चरण वहां नहीं पड़ सकते।"

'देखो तो प्रियतम, यह निर्मल निर्झर कैसी शोभा धारण कर रहा है। इसकी शुभ्र जल-राशि, श्याम शिला पर ऐसी प्रतीत हो रही है, जैसे श्यामा वामा ने उत्तरांग में चन्दन लगाया हो।"

"ऐसा ही है, लो आ गए हम कैलासधाम के द्वार पर। वह देख, द्वार मधुर निनाद से आप ही खुल गया। धूर्जटि के किंकर इस दास के इस ऐरावत को पहचानते हैं। यहां कैसे पक्षी कलरव गान कर रहे हैं। सरोवर में पद्म अभी सूर्योदय अच्छी तरह न होने के कारण पूरे

खिले नहीं हैं। वे कुछ मुदे-से, कुछ खुले-से ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे लज्जावती नववधू ने भोर में कुसुमारुण शय्या त्याग व्रीड़ावनत हो अपना कमलवदन ढांप लिया हो।"

"और निर्मल जल में जो बालारुण की रक्तिम रश्मियां खेल रही हैं, वे ऐसी प्रतीत हो रही हैं जैसे ढीठ नायक उस व्रीड़ावनता लज्जावती का अवगुंठन हटाने को उंगलियों से गुदगुदा रहा हो।"

देवाधिदेव के किंकरों ने ऐरावत को घेर लिया। देवेन्द्र शची-सहित हाथी से उतर शैलबाला अम्बिका पार्वती की सेवा में किंकरों के बताए मार्ग पर चलकर जा पहुंचे। अम्ब स्वर्णासन पर बैठी थीं, जया चंवर डुला रही थी, विजया छत्र लिए थी। महेन्द्र ने इन्द्राणी-सहित महामाया अम्बिका के चरणों में प्रणाम किया।

अम्ब ने हंसकर शची को अंक में बैठाया और फिर संघा। देवेन्द्र की ओर कृपा-कटाक्ष कर कहा—"देवेन्द्र, देवकुल में, देवलोक में कुशल तो है? अब फिर कोई नया झंझट तो नहीं आ खड़ा हुआ?"

"अम्ब, देवद्रोही लंकापति रावण और दुर्जय रावणि पर जब तक धूर्जटि का अनुग्रह है, तब तक भला देवलोक और देवकुल में कुशल कहां? देव-कुल तो उस दुरन्त रावण से लड़ ही नहीं सकता और मुझ दास को उसके दुरात्मा पुत्र का कन्धे पर कलश रख तीर्थोदक से ऐन्द्राभिषेक करके ही मुक्ति मिली। मेरा विकराल वज्र भी उस दुरात्मा के अक्षय तूणीर और दिव्य धनु के सामने निस्तेज हो गया।"

"किन्तु अब तो रावण का देव-कुल से कोई विग्रह नहीं है?"

"अम्ब, रावण और उसका वह पुत्र, जो अब मुझ दास को कलंकित करने के लिए इन्द्रजित् कहाता है, जब तक जीवित है, तब तक सब देव-कुल के साथ आपका यह दास मृतक ही है। उसने देवों ही की नहीं, आर्यों की परम्परा भी भंग की है। वह देव, दैत्य, असुर, नाग गन्धर्व, आगत, समागत सभीको एक करना चाहता है। उसकी यज्ञ-विधि भी हमारे अनुकूल नहीं हैं।"

"उसके कार्यों और आदर्शों से तो देवाधिदेव सहमत हैं। वह और उसका पुत्र दोनों ही देवाधिदेव के किंकर हैं, फिर तुम मुझसे और देवाधिदेव से उसके अमंगल की क्यों आशा करते हो?"

अब शची ने कहा—"अम्ब, देवाधिदेव के ही संकेत से मेरे पिता ने दानववंशी होने पर भी देवेन्द्र को मुझे दिया। आप ही के आशीर्वाद की छाया में हम सम्पन्न हैं, निरापद हैं। किन्तु आपके आशीर्वचन की अवज्ञा करके उस दुःस्सह दुरात्मा ने देवेन्द्र को बन्दी बनाया, देवेन्द्र

को समूचे नृवंश के प्रतिनिधियों के सामने कन्धे पर तीर्थोदक रख उस अधम का ऐन्द्राभिषेक करना पड़ा। कैसे अब आप देवकुल का यह अपमान देख सकेंगी, अम्ब ?"

हेमवती ने सब सुनकर कहा—"परन्तु सुन, तेरे अनुरोध की रक्षा करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। देवाधिदेव राक्षस-कुल-रक्षक हैं। वे आज वृषभध्वज योग में कूटस्थ, दुर्गम गौरीकूट पर बैठे हैं। वहां तक जाना भी शक्य नहीं है। उनकी एकान्त साधना में विघ्न करना भी निरापद नहीं है। तू तो जानती ही है, संक्रुद्ध रुद्र के निःश्वास से मकरध्वज मीनकेतु काम भस्म हो चुका है।"

"तो यह तो और भी अच्छा है अम्ब, विरूपाक्ष देवाधिदेव यहां नहीं हैं, वे विकट शिखर पर कूटस्थ हैं। अब आप ही देवों का प्रिय कर दीजिए। हमें देवाधिदेव से क्या प्रयोजन है ! हम तो आप ही के प्रसाद से सम्पन्न होना चाहते हैं।"

पौलोमी शची के ये वचन सुन हंसकर उमा ने कहा—"अरी इन्द्रसखी, तू बड़ी वाचाल है। तभी तो देवराज तुझे देख ऐसा विमुग्ध होता है, जैसे ऋतुपति वनस्थल की कुसुम कुन्तला को देखकर मोहित होता है।"

देवेन्द्र ने उमा की प्रसन्न मुद्रा देखकर कहा—"अम्ब, देवकुल के अपमान का परिष्कार करो। मैं दास इसी आशा से आपकी शरण आया हूं। मातेश्वरी ! जब दुरन्त तारक ने मुझे पराजित कर स्वर्ग हस्तगत कर लिया था, तब देवकुल-रक्षक कुमार कार्तिकेय को वृषभ-ध्वज रुद्र ने नागसिद्ध धनुष और अक्षय तूणीर दिया था। उसीसे कुमार ने दुर्जय तारक का वध किया था। वृषभध्वज रुद्र की कृपा से मेघनाद के पास भी वही महास्त्र है। इसीसे वह दुरन्त राक्षस अदृश्य रहकर चतुर्मुखी बाण-वर्षा करता है। उसका वध सम्भव ही नहीं है। अब अम्ब, कृपा कर मुझे कुमार का वही अक्षय तरकश दो, धनुष की अभेद्य सुवर्ण-मण्डित ढाल दो और मृत्युंजय खड्ग दो, जिससे राम उस देव-वैरी दुरन्त मेघनाद का वध कर सकें।"

देवराज इन्द्र का ऐसा अनुनय-अनुरोध सुन, शरणागतवत्सला अम्बिका शैलबाला पार्वती ने महामाया को आज्ञा दी कि वह देवेन्द्र की इच्छा पूर्ण करे। महामाया ने वे जाज्वल्यमान शस्त्रास्त्र देवेन्द्र को ला दिए। इन्द्र ने वह कालधनुष हाथ में लेकर कहा—"मुझ दास का यह रत्नधनुष इस दिव्य धनुष के सम्मुख तुच्छ है। यह महातेजस्कर खड्ग और सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान ढाल तथा कालसर्प की

भांति नागशरों से भरा अक्षय तरकश पाकर मैं धन्य हो गया ! देवकुल पुनर्जीवित हो गया !"

उमा हेमवती ने कहा—"देवेन्द्र, तुम मेरे अभ्यागत हो, देवराट् हो, तुम्हारा विचार शुभ है, आर्यों और देवों का अप्रिय मैं भी सहन नहीं कर सकती। धूर्जटि क्रुद्ध भी होंगे तो मैं सहन करूंगी। तुम इन महास्त्रों को ले जाकर राम को दे दो। इन्हींसे कुमार कार्तिकेय ने तारक का वध किया था। इन्हींसे तुम्हारे चिरशत्रु मेघनाद का हनन होगा। परन्तु मैं तुम्हें कहे देती हूं कि मेघनाद की वीरता मैंने देखी है। वह त्रिपुरारि का सम्पूर्ण रौद्र तेज धारण करता है, त्रिभुवन में कोई वीर शस्त्र रहते उसका वध नहीं कर सकता, इसलिए उसे निरस्त्र ही वध करने का संकेत रामभद्र को देना। सीता का असह्य संताप अब मुझे भी सह्य नहीं है। रावण अब अपने ही चरित्र-दोष से विनष्ट होगा। जाओ देवेन्द्र, लंका का सौभाग्य-सूर्य अब अस्ताचल में डूब चुका।"

इन्द्र ने आनन्दमग्न हो उमा की वन्दना की। अम्ब ने शची को अंक में भर विदा किया। देवलोक में पहुंच इन्द्र ने देवसारथि मातुलि को बुलाकर कहा—"हे बहुज, तू अभी मेरा दिव्य रथ लेकर लंका में चला जा। वहां राम-कटक में पहुंचकर इन अस्त्रों को अत्यन्त सावधानी से रामभद्र की सेवा में पहुंचाकर निवेदन कर कि इन्द्रलोकनिवासी आपके मंगल की कामना करते हैं और रुद्रप्रिया शैलबाला उमा आपपर प्रसन्न हैं। इन दिव्यास्त्रों से निरस्त्र मेघनाद का वध कीजिए। शंका को मन में स्थान न दीजिए तथा तू भी रथसहित रामभद्र की सेवा में रह और मेरा अनुरोध निवेदन कर आपके पिता महात्मा दशरथ देवप्रिय थे। उन्होंने देवों के लिए युद्ध किए थे। मैं शम्बर का वध उनकी सहायता के बिना नहीं कर सकता था। वास्तव में शम्बर-वध का श्रेय आपके पिता महात्मा दशरथ ही को है। अब रावण का वध आपके हाथ से हो, यही सम्पूर्ण देवकुल की कामना है। यह दुरात्मा रावण नृवंश की सारी ही मर्यादा को उलट-पलट रहा है। निरन्तर बारह दारुण देवासुर-संग्राम कर, देवों ने दैत्यभूमि को सुरलोक बनाया है। अब पृथ्वी पर चार ही प्रबल अनार्य देवद्विष नृपति थे। एक वैजयन्तीपुरी का तिमिरध्वज शंबर, जिसे पांचालपति दिवोदास के साथ आपके यशस्वी पिता दशरथ ने सम्मुख समर में हनन किया। दूसरा वर्चिन, जिसकी एक लाख दानव-सैन्य का दिवोदास के पुत्र सुदास ने महासागर में समूल नाश कर मार डाला, यद्यपि अनेक आर्य

राजाओं ने भी वर्चिन का साथ दिया था। तीसरा भेद, जिसने वर्चिन की मृत्यु के बाद सुदास की अधीनता स्वीकार कर ली है। अब केवल रह गया यही महाबली रावण, जो इन सबसे भयानक, दुर्जय और दुरन्त है। सो हे रामचन्द्र, आप इसका वध करके अनार्य जातियों का समूल उच्छेद कीजिए। आपके इस विकट संग्राम के परिणाम पर ही आर्यों और देवों का अस्तित्व निर्भर है। कदाचित् इस बार यह रावण जीवित बच गया तो निश्चय ही न आर्यावर्त रहेगा, न देवलोक। त्रिलोक का नृवंश राक्षस हो जाएगा।"

देवेन्द्र का संदेश ध्यान से सुन, दिव्यास्त्रों को सावधानी से ले, महाप्रज्ञ देवसूत मातुलि ने बद्धांजलि हो देवेन्द्र की प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया और दिव्य रथ पर चढ़ लंका की ओर चला। सहस्रों घंटियों की झनकार से उस समय वातावरण मुखरित होकर जैसे राम का जय-जयकार कर उठा।

४३

विधुमुखी सुलोचना, दानवनन्दिनी प्रमिला प्रियतम के जाते ही कटे वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर गई। किंकरी दासियों ने उसे प्रबोध दिया। पर वह विरहविदग्धा खण्डिता मानिनी बाला नागिन की भांति लम्बी-लम्बी सांसें लेती हुई अश्रु बहाने लगी। उसका केशजाल अस्त-व्यस्त हो गया। मणिमाल उसने उतार धरी। बांसुरी, वीणा, मृदंग, मुरज सब नीरव हो गए। कोकिलकण्ठी गायिकाएं स्तब्ध हो गईं। स्वामिनी के विरह-विदग्ध हृदय के हाहाकार को देख प्रमदवन की सभी प्रमदाएं अधोमुखी हो रोने लगीं।

रात हुई तो उसने वसन्त-सी सौरभवाली सखी वासन्ती की ग्रीवा में भुजमृणाल डालकर गहरी-गहरी उसांसें लेते हुए कहा—"अरी सखी, देख तो यह रात्रि कालभुजंगिनी की भांति मुझे डंसने आई है। अरी कह तो, इस रीती रात में अरिन्दम कहां हैं? वह तो 'अभी आऊंगा' कहकर गए थे। अभी तक तो आए नहीं। यह विलम्ब तो अब सहा नहीं जाता। अरी, लंका तो शत्रु मानव ने घेर रखी है। उसने त्रिलोकजयी, महातेज कुम्भकर्ण को मार डाला है। सुना है, सागर-तीर पर उस पुण्यपुरुष का शरीर निर्जीव पड़ा है। अरे, यह तो बड़ी भयानक बात है!"

सखी ने कहा—"देवि, चिन्ता न करो, अरिंदम इन्द्रजित् को पृथ्वी

पर किसका भय है ? वीरवर सुरासुर-वन्द्य हैं, अभेद्य हैं, रुद्र-वरलब्ध सिद्धपुरुष हैं। उनसे कौन युद्ध कर सकता है ? जब तक महारथी, समर जय करके नहीं आते हैं; तब तक हम दासियों को आप माला गूंथने का आदेश दीजिए अरिन्दम के प्रमदवन में आते ही आप विजय-माल वीर पति के कण्ठ में डाल देना।"

कौमुदी सरोवर-सलिल में नवोढ़ा नायिका के समान अवगुण्ठन-वती-सी लग रही थी, भ्रमर गुंजार कर रहे थे, कोयल कूक रही थी, पुष्प-सौरभ-सनी वासन्ती वायु बह रही थी, परन्तु पतिप्राणा, बाला प्रमिला की आंखों में अन्धकार ही छा रहा था।

उसने कहा—"अरी, मैं तो विरह-ज्वाला में जल रही हूं। चन्द्रमा, चन्दन, चांदनी मेरे अंग-अंग में दाह कर रहे हैं। हाय, प्रियतम के जाते ही विश्व उलट गया। अरी सखी, मैं नहीं सह सकती। तू अभी लंका चलने की तैयारी कर, जिससे मैं प्राणेश्वर को प्राप्त कर सकूं।"

सखी ने कहा—"देवि, तुम लंका में कैसे जाओगी ? दुर्लंघ्य राम-कटक ने लंका को घेर रखा है। अनगिनत लौहवर्मधारी अस्त्र-पाणि वरिष्ठ वानरों का लंका के द्वार पर पहरा है।

प्रमिला ने गुस्से होकर कहा—"अरी, समुद्रगामिनी नदी की धारा को विमुख करने की सामर्थ्य किसमें है ? मैं दानव-नन्दिनी, राक्षस-कुलवधू हूं। जगज्जयी महिदेव राक्षसपति रावण मेरा श्वसुर और इन्द्रजित् मेरा पति है। मैं क्या वैरी राम से डरकर प्रियमिलन की इच्छा छोड़ दूंगी ? देखूंगी, आज मैं राम का भुजबल देखूंगी; देखूंगी, कौन मुझे लंका में प्रवेश करने से रोकता है।"

स्वर्ण-हर्म्य में जाकर उसने वीरांगना का वेश धारण किया। केशों पर मणिकिरीट, भाल पर चन्दन की रेख, कुचों पर कवच, कमर में रत्नजटित कमरबन्द, जिससे बंधी विकराल कराल खड्ग और पीठ पर बड़ी-सी ढाल। हाथ में उसने शूल लिया। वह बड़वा नाम की अश्विनी पर सवार हुई।

सौ सखियां भी सज्जित हुईं। सबने खड्ग कोष से निकाल लिए। वे धनुष-टंकार करतीं, पीठ पर तरकश कस, ढालों को हिलाती, नूपुर की झन-झन, किंकिणी की किन-किन को अश्व के हिनहिनाने की ध्वनि से एकरस-सा करतीं, डमरू की डम-डम से काल-सर्प जैसे नाचता है, उसी भांति अश्वों को नचाती, समरवाद्य बजाती, एक हाथ में शूल और दूसरे में जलती हुई मशाल लिए, लंका की ओर अग्रसर हुईं।

राम-कटक को सम्मुख देख तेजस्विनी प्रमिला ने कहा—

"वीरांगनाओ, आओ, अपने भुजबल से राम-कटक का छदन कर, हम लंका में प्रवेश करें। मैं वीरवर के निकट जा रही हूं। हम सब दानव-कुलनन्दिनी हैं। शत्रु के शोणित में डूब मरना या शत्रु का वध करना हमारा कुल-धर्म है। आओ, आओ, आज हम उस भिखारी राम का रूप देख लें, जिसपर राक्षसनन्दिनी पंचवटी में मोहित हो गई थी। उस दुरन्त सौमित्र को भी देखेंगी, जिसके भय से राक्षसवधुएं लंका में सुख की नींद नहीं सोती हैं। आज हम उस राक्षस-कुलांगार विभीषण का हृदय भी शूल से विद्ध करेंगी। जैसे मत्त हथिनी नलिनी-दलन करती है, वैसे ही हम दानव-बालाएं शत्रु का दलन करेंगी। आओ, हम विद्युत-वेग से शत्रु-दल पर टूट पड़ें।"

दानवनन्दिनी सुलोचना प्रमिला का यह अभिभाषण सुन दानव-बालाओं ने दर्प से हुंकार भरी। वे अपने-अपने नग्न खड्ग हवा में ऊंचे उठा, समुद्र की भांति गरजती हुई आगे बढ़ चलीं।

इस वामादल की अग्रवाहिका मालिनी हाथ में शूल लिए आगे बढ़ी। उसके पीछे दावानल की भांति एक हाथ में शूल और दूसरे में मशाल लिए वामादल। धनुषों को टंकारती, शस्त्रास्त्रों को ध्वनित करती वे जा पहुंचीं पश्चिम द्वार पर, जहां मारुति का जाग्रत् पहरा था। मारुति ने दावानल के समान वामादल को आते देख ललकारा—"तुम कौन हो और इस अन्धनिशा में तुम्हारे यहां आने का क्या प्रयोजन है? शीघ्र कहो। यहां मारुति जग रहा है, जो राक्षसों का प्राण-वैरी है। कहो-कहो, तुमने यह कैसा वीरांगना का मायावेश धारण किया है? मैं मारुति हनुमान बाहुबल से राक्षसों की माया का मर्दन करता हूं।"

मारुति के क्चन सुन, मालिनी ने धनुष की टंकार दी और क्रुद्ध होकर कहा—"अरे मूढ़, तुम नगण्य के मुंह कौन लगे? हम सेवकों को नहीं मारतीं, इसीसे तुम अबोध को मैं छोड़ देती हूं। तू जाकर अपने स्वामी से कह कि अरिंदम इन्द्रजित् की साध्वी पत्नी, दानव-नन्दिनी, प्रमिला सुन्दरी, वामादल के साथ पतिपद पूजने लंका में प्रविष्ट होती हैं। जिस योद्धा में सामर्थ्य हो, रोके।"

हनुमान ने विस्मित होकर दानवनन्दिनी रक्षवधू को आगे बढ़कर देखा, जो सौ वीरांगनाओं के बीच चपल अश्व पर अग्निशिखा की भांति आसीन थी। उसके किरीट का मणि मशालों के प्रदीप्त प्रकाश में नवोदित सूर्य की भांति चमक रहा था। उभारदार वक्ष पर कसा स्वर्ण-

खचित वर्म स्वर्ण-शैल-सा दीख रहा था।

हनुमान ने सोचा—अहा, ऐसा ज्वलन्त रूप, ऐसा दुर्धर्ष तेज तो राक्षसमहिषी मन्दोदरी में भी नहीं है। भगवती सीता की रूप-माधुरी भी इसकी समता नहीं कर सकती। धन्य है रावणि मेघनाद, जिसके स्नेह-बन्धन में यह वज्रध्वंसिनी तड़िद्दामिनी बंधी है। उन्होंने कहा—"सुन्दरी, मेरे स्वामी रामभद्र, दुर्लंघ्य सागर को शिलाओं से बांध लक्षावधि वीरों के कटक सहित इस राक्षस-पुरी स्वर्ण-लंका को घेरे पड़े हैं। राक्षसराज रावण उनका वैरी है। तुम अबला, इस असमय में यहां क्यों आई हो, सो निर्भय होकर कहो! क्या तुम उनके अनुग्रह की कामना करती हो? मैं हनुमान राम का दास हूं। तुम्हारा जो भी अभिप्राय होगा, मैं प्रभुपद में अभी निवेदन कर दूंगा।"

इसपर दानवनन्दिनी प्रमिला सुन्दरी ने आगे बढ़, वीणा-विनिन्दित स्वर में कहा—"हे वीर, तेरा स्वामी राम मेरे पति का वैरी अवश्य है, पर उससे युद्ध करने का मेरा प्रयोजन नहीं है। तू मेरी इस दूती को अपने साथ, अपने स्वामी दाशरथि राम के पास ले जा। वह मेरा अभिप्राय सीता-पति राम से निवेदन कर देगी।"

दानवी वामा अभय मुद्रा से शत्रु-बल में घुस पड़ी। हनुमान मार्ग दिखाते आगे-आगे चले। वानरों के झुंड अग्निशिखा के समान उस दानवी बाला को देखने चारों ओर से आ जुटे। हाथ में भीमाकार शूल लिए, कटि पर धनुष, पीठ पर तूणीर, सिर पर चन्द्ररेखांकित मयूर-पुच्छ का चूड़ा, कुच-युगल पर देदीप्यमान मणि, पीठ पर रत्न-ग्रथित वेणी, पैरों में नूपुर। नव मातंगिनी की भांति दिशाओं को दीप्त करती वह दानव-बाला रघुमणि राम की सेवा में आ उपस्थित हुई।

सहसा सेना में सागर-कल्लोल की भांति 'जय राम' की ध्वनि उठी। विभीषण ने त्रस्त भाव से राम की ओर देखकर कहा—"रोधवेन्द्र, तनिक बाहर आकर देखिए तो यह क्या चमत्कार है। यह प्रकाश कैसा है? क्या असमय में ही उषा का उदय हो गया?"

राम ने बाहर आ, आती हुई वामा को विस्मय से देखकर कहा—"प्रिय, यह भैरवीरूपिणी वामा कौन है और यहां मेरे पास आने का इसका क्या प्रयोजन है? क्या यह भी कोई मायाजाल है? रक्षपति रावण काम रूप है। तनिक भली भांति देखो कि यह क्या रहस्य है? इस विपत्काल में इस दुर्बल सैन्य की रक्षा तुम्हीं कर सकते हो रक्षेन्द्र!"

राम के वाक्य सुन गदापाणि विभीषण आगे बढ़े। लक्ष्मण धनुष टंकार कर राम के आगे आ खड़े हुए। भैरवमूर्ति सुग्रीव राम के पार्श्व

में खड़े हो गए। हनुमान के साथ आकर दूती ने राम के सम्मुख आ बद्धांजलि निवेदन किया—"सीतापति राम और सब गुरुजनों के पदों में प्रणाम करती हूं। मेरा नाम मालिनी है। मैं अरिन्दम इन्द्रजित् की पत्नी, दानववाला प्रमिला सुन्दरी की किंकरी हूं।"

राम ने दाहिनी भुजा उठाकर कहा—"तुझे अभय, तू यहां आने का प्रयोजन निवेदन कर। कह, किस प्रकार मैं तेरी स्वामिनी को सन्तुष्ट कर सकता हूं?"

दूती ने कहा—सीतापते, दानवनन्दिनी प्रमिला सुन्दरी पतिपद पूजने लंका में जाना चाहती हैं। आप बाहर आकर हमसे युद्ध कीजिए या हमें लंका में जाने दीजिए। आपने अपने बाहुबल से अनेकों राक्षसों का वध किया है, अब राक्षसकुल-वधुएं आपसे युद्ध करना चाहती हैं। राक्षसराज-वधू का यही निवेदन है। हम सब एक सौ रमणियां हैं, आप जिसे कहेंगे वही अकेली युद्ध करेगी। चाहे धनुष-बाण लीजिए या कृपाण। मल्लयुद्ध में भी हमें आपत्ति नहीं। अब जैसी आपकी रुचि हो। परन्तु शीघ्रता कीजिए, विलम्ब मेरी स्वामिनी को सह्य नहीं है।"

राम ने कहा—"सुन्दरी, मैं अकारण किसीसे विवाद नहीं करता। रावण मेरा शत्रु है, परन्तु रक्षकुल-वालाओं और कुलवधुओं से मेरा कुछ वैर नहीं है। तेरी स्वामिनी स्वच्छन्दता से लंका में प्रवेश करे। मेरी ओर से तू दानवनन्दिनी से कह दे कि उसकी पतिभक्ति की राम शत-सहस्र मुख से प्रशंसा करता है। राम का जन्म वीर-कुल में हुआ है। तेरी स्वामिनी वीरपत्नी एवं वीरांगना है। धन्य है इन्द्रजित् और धन्य है प्रमिला सुन्दरी दैत्यवाला। मैं धनहीन वनवासी राम तुझे तेरे उपयुक्त प्रसाद देने योग्य नहीं हूं, केवल तुम सबको मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम प्रसन्न रहो!"

इतना कह श्री राम ने हनुमान से कहा—"वीर मारुति, वामादल को शिष्टाचारपूर्वक सन्तुष्ट कर तुरन्त लंका के द्वार पर छोड़ आओ।"

दूती सीतापति को प्रणाम कर चली गई। राम ने हंसते हुए विभीषण से कहा—जाओ मित्र, कृपा कर सुग्रीव और लक्ष्मण को साथ ले लो। द्वार-द्वार जाकर सारी सेना का निरीक्षण कर, सबको यथायोग्य व्यवस्थित कर दो। महाकाल कुम्भकर्ण ने ही हमारी समूची सैन्य को अस्त-व्यस्त कर दिया। अब इस अजेयसत्त्व रावणि के साथ भोर में काल-संग्राम का हमें साम्मुख्य करना है। इस भिक्षुक राम की लाज तुम्हारे ही हाथ है, मित्र! यहां मैं हूं, तुम सारे मोर्चों

पर घूम आओ। शत्रु की गतिविधि का भी पता लगाओ।"

राम के वचन सुन गदापाणि विभीषण तुरन्त लक्ष्मण को साथ चल दिए। राम व्यग्र भाव से धनुष-बाण ले सावधानी से चारों ओ देखने लगे।

४२

इसी क्षण एक चमत्कार हुआ। पश्चिमी दिशा उज्जवल प्रका से भर गई। गम्भीर मेघ-गर्जन ध्वनि सुन राम ने भीत होकर म ही मन कहा—यह अनभ्र वज्र-गर्जन कैसा? यह बिना ही दामिन के प्रकाश कैसा?

सहसा देवसारथी मातुलि ने राम के सम्मुख आकर कहा— "दाशरथि राम की जय हो। मैं मातुलि, देवेन्द्र का सूत, देवेन्द्र स सन्देश लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हूं। दाशरथि प्रसन्न हों। देवकु आपके अनुकूल है। हेमवती उमा भी आप पर सदय हैं। वे स आपकी जय के अभिलाषी हैं। देवेन्द्र ने इसी कारण मुझे भेजा है।"

राम ने खड़े होकर कहा—"आपके आगमन से तथा देवेन्द्र और अम्ब उमा के अनुग्रह से सम्पन्न होकर मैं कृतार्थ हुआ। आप बहुत कष्ट हुआ होगा। देवदूत के बैठाने योग्य मेरे पास स्वर्णासन न है, तथापि मुझ दास पर अनुग्रह कर इस आसन पर बैठिए। मैं अर्घ पाद्य निवेदन करता हूं।"

इतना कह राम ने अपने हाथ से कलश उठाकर, मातुलि अर्घ्य-पाद्य से सत्कृत कर, आसन पर बैठाया, मधुपर्क दिया, तब देवे की कुशल पूछी और कहा—"मुझ दास को देवेन्द्र की क्या आज्ञा है?

स्वस्थ होकर मातुलि ने कहा—"स्वस्ति रामभद्र, यह तो तु ज्ञात है कि देव, आदित्य और आर्यों के चार शत्रुकुल थे जिनमें तिमि ध्वज शंबर का देवमित्र दिवोदास ने तुम्हारे यशस्वी पिता दशरथ सहायता से निरन्तर चालीस वर्ष युद्ध कर, उसके सौ दुर्गों का दह कर हनन किया। इसके अनन्तर दुर्जय वर्चिन को, उसकी एक ला दानव-सैन्य का हनन कर देवपुत्र सुदास ने समूल नाश कर डाल इसके बाद महाविक्रमशाली भेद सुदास का शरणागत हो गया। रह गया है केवल यह रावण, जो अपने को जगदीश्वर, महिदेव, ज ज्जयी कहता है। तुम जानते हो, इसके दुरन्त पुत्र मेघनाद ने देवे को बन्दी कर उनसे पृथ्वी के नरपतियों के सम्मुख दासकर्म करा

था। तभी से देवेन्द्र संतप्त हैं। जब तक यह दुरात्मा मेघनाद नहीं मरता, तब तक देवलोक में देवराट् और देव दुःखित हैं और जब तक जगज्जयी रावण जीवित है, आर्य, आदित्य, देव-देवर्षि, ब्रह्मर्षि सभीका अस्तित्व खतरे में है। तो यही विचार तुम्हारा संकट देख, देवेन्द्र धूर्जटि के सान्निध्य में कैलास-शिखर पर गए थे और वहां प्रसन्नमयी अम्ब उमा को प्रसन्न कर, नागपाशयुक्त तूणीर और नागदमन धनुष, जिससे कुमार कार्तिकेय ने स्वर्गजयी तारक का वध किया था, तुम्हारे लिए मांग लाए हैं। साथ ही इन्द्र ने रौद्रतेजपूर्ण यह अभेद्य ढाल और विकराल खड्ग भी दिया है। सो राघव, तुम इन दिव्यास्त्रों को ग्रहण कर, इन दुरन्त राक्षसों का समूल विध्वंस कर दो। इस समय रावण हततेज है। अतः यही समय है, जब रावण सपरिवार मारा जा सकता है। अब उसके सब विषदन्त झड़ चुके हैं। यह दुराचारी मेघनाद शेष है, सो आज तुम इन दिव्यास्त्रों से उसका वध करो। इन महास्त्रों के कारण ही वह रावणि अदृश्य रहकर चहुंमुखी बाण-वर्षा करता है, नागपाश में दुर्जय शत्रु को भी बांध लेता है। अब यही कौशल तुम भी कर सकोगे। परन्तु राघव, दिव्य उमा का तुम्हें एक गुप्त संकेत है। उमा ने कहा है कि रावणि का निरस्त्र ही वध सम्भव है। दिव्यास्त्रों के रहते उसका वध नहीं होगा। सो हे परंतप, जैसे बने, आज तुम उसका निरस्त्र वध करो। यह रहस्य मत भूलो। इसके अतिरिक्त रावण से तुम बिना रथ के युद्ध नहीं कर सकते थे, सो देवेन्द्र की आज्ञा से इस दिव्य रथ सहित संग्राम की समाप्ति तक मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हूं। अब तुम प्रसन्न होकर देवों का प्रिय करो।"

राम ने कहा—"देवेन्द्र और अम्ब के प्रति मैं अज्ञ कैसे कृतज्ञता प्रकट करू?" राम ने धनुष हाथ में लेकर देखा और फिर शोकपूरित स्वर में कहा—"मैंने वैदेही-स्वयंवर में अपने बाहुबल से हर-धनु भंग किया था। किन्तु आज मैं इस धनुष को खींचने में भी असमर्थ हूं।"

इसी समय लक्ष्मण और विभीषण वहा आ पहुंचे। राघवेन्द्र ने उनसे देवदूत के आगमन का समाचार कहा, देवेन्द्र और हेमवती के संदेश-संकेत कहे। फिर वह दिव्य धनुष उन्हें दिखाया। उसे खींचने की अपनी असामर्थ्य पर खिन्न हुए।

इसपर वीर-दर्प से सौमित्र ने धनुष हाथ में ले, क्षण-भर ही में उसे खींच टंकारा, जिससे दसों दिशाएं ध्वनित हो गईं। राम ने भाई को हृदय से लगाकर कहा—"भाई, तू ही अब डूबते रघुवंश का सहारा है। किन्तु इस राक्षसपुरी में अकेले राक्षसराज विभीषण ही हमारी

नौका के खिवैया हैं। न जाने आज सूर्य उदय होने पर भूतल पर कौन-सा दृश्य देखेंगे।"

लंका के सिंह-द्वार पर दुन्दुभि गड़गड़ा उठी। असमय में सिंहपौ[illegible] कहा—पर दुन्दुभि निनाद सुन प्रहरी राक्षसों के गुल्म भी गर्जना करने लगे। किन्तु असमय मेघ-गर्जना के समान गर्जन-तर्जन सुन द्वार-रक्षकों का गुल्मप[illegible] वह पति विरूपाक्ष और द्वारपालों का नायक तालजंघ गदा उठाकर द्वार की ओर दौड़ चले। गुल्मपतियों ने गुल्मों को तुरन्त तैयार होने के आदेश दिए। घोड़े हिनहिनाने लगे, हाथी चिंघाड़ने लगे, रथों का घर-घर शब्द होने लगा। दुरन्त कौन्तिक कुन्त घुमाने लगे। धनुर्धर प्राचीरों और कंगूरों पर चढ़ बाण-संधान करने लगे। जनरव और गर्जना से उस अर्धनिशा में लंका हिल उठी। जैसे अभी-अभी ज्वालामुखी का प्रलयंकर विस्फोट हुआ हो, उसी भांति विद्युत्-प्रभा से जगमग मशालों को लिए, शूलधारिणी वामादल को वानर-सैन्य से सिंहद्वार की ओर आते देख राक्षस-दल चल-विचलित हो गया।

द्वार के सम्मुख आ, दण्डधारिणी मालिनी ने पुकारकर उच्च स्वर से कहा—"अरे भीरुओ, तुम किसपर अंधकार में अपने शस्त्र तान रहे हो? आंखें खोलकर देखो, हम राक्षस-शत्रु नहीं, राक्षसकुलवधुएं हैं। अरिन्दम वीरेन्द्र इन्द्रदमन की वामांगी दानवनन्दिनी प्रमिला सुन्दरी पतिपद पूजने लंका में आई हैं। भयत्रस्त राम ने हमें निरापद मार्ग दे दिया है। अरे मूढ़ो, अब झटपट तुम द्वार खोल दो!"

प्रहरियों ने द्वार में बड़ी-बड़ी चाभियां घुमाईं, चक्र घुमाए। यन्त्र चालित किए, लौह वर्म आच्छादित लंका के सिंहद्वार तुरन्त खुल गए। वामादल ने आनन्द से लंका में प्रवेश किया। दीप-शिखा पर जैसे पतंगा टूटता है, उसी प्रकार चारों ओर से पौरजनों ने वामादल को घेर लिया। कुलवधुएं मंगलध्वनि करके पुष्पवृष्टि करने लगीं। बन्दी बाजे बजाकर वन्दना करने लगे। वाद्यंकरी और विद्याधरी वीणा, वांसुरी और मंदिरा बजाकर नृत्य करती चलीं, अश्व हिनहिनाते वामादल के खड्ग कोशों में झनझनाते चले। रक्षकुल की स्त्रियां झरोखों से और गोखों से सती सुलोचना को देखने दौड़ चलीं।

पति-मन्दिर में पहुंचकर सुन्दरी प्रमिला प्राणपति से ऐसे मिली, जैसे मणिधारी फणि अपने खोए मणि से। अरिन्दम इन्द्रजीत ने प्रियतमा को हृदय में समेटकर हंसते हुए कहा—"यह क्या रक्तबीज का

नाश कर विधुमुखी दुर्गा निजधाम आई हैं ? हे देवि, आज्ञा हो तो यह दास तेरे पदतल में गिरे।"

सुलोचना ने अपने मृणाल-भुज अरिंदम के कण्ठ में डालकर कहा—"हे प्रिय, तुम्हारे पद-प्रसाद से यह किंकरी भव-विजयिनी है, किन्तु यह तुम्हारा वियोग नहीं सह सकती। दु सह वियोग की ज्वाला से वह भस्म हो रही है। अरे निर्दयी, तुम कैसे मुझे अकेली सूनी रात में छोड़ चले आए ? ओ प्रियतम, जिसे मन सदा चाहता है, मैं उसी के पास आई हूं। दुरारोध वर्षा-नदी ने सागर के हृदय में प्रवेश किया है।"

"तो प्रिये, अब आनन्द की रात्रि व्यतीत कर !"

प्रमिला सुन्दरी ने मन्दिर मे प्रवेश किया। वीर-वेश त्यागा। स्नान-मज्जन किया। रत्नमय अंचल का कौशेय धारण किया। पीन स्तनों पर कंचुकी कसी। कमर में मणिमेखला धारण की। हीरों का हार कण्ठ में पहना। हृदय पर मुक्तमाल धारण की। भाल पर हीरक-मणि-ग्रथित मांग दी। कानों में नीलमणि के कुण्डल पहने।

उस समय सहस्र मणिदीपों के उज्ज्वल प्रकाश में मणिमूर्ति के समान प्रभामयी, दीपशिखा-सी ज्योतिर्मयी, कुसुम-गुच्छ के समान सुषमामयी और जीवन के समान प्रेममयी प्रियतमा दानवनन्दिनी सुलोचना प्रमिला को देख राक्षस-चूड़ामणि मेघनाद आनन्द के समुद्र में डूबकर सुध-बुध खो बैठा। रणरंग, वैरी राम, विपन्न लंका, शोक-मग्न राक्षसेन्द्र रावण—सभीको भूल, मेघनाद उस त्रैलोक्यदुर्लभ रूप-सुन्दरी दानवेन्द्रनंदिनी प्रमिला को हृदय से लगा, तृप्त हो उसका जीवनामृत पान करने लगा। जैसे चन्द्र-दर्शन से समुद्र में ज्वार आता है, उसी भांति विरहदग्धा वाला प्रमिला भी इस प्रकार पतिपर्यंक पर बिखर गई, तब वह ऐसी थी जैसे शरद् के पूर्ण चन्द्र की चन्द्रिका धवल सौध पर बिखरती है।

बन्दी गान कर रहे थे, गन्धर्वियां नृत्य कर रही थीं, वादक विविध वाद्य-यंत्र बजा रहे थे। फव्वारे जलराशि उछाल रहे थे, सुरभित वसन्तानिल वह रही थी, वसन्त ऋतु वहां मूर्त हो रही थी और अनिन्द्य सुन्दरी प्रमिला मणिपात्र में सुवासित मद भर-भरकर प्राणाधिक प्रियतम से होंठों से लगा, मृणाल-भुज कण्ठ में डाल, वक्ष सटा, अपना अधरामृत भी पात्र में लगा अधरामृत के साथ सुरामृत को पिलाती हुई प्राणप्रिय पति को आनन्द-सागर में झकझोर रही थी।

ऐसे सुख-सागर में डूबकर अरिन्दम सो गया। उषा का उदय

हुआ। राजद्वार पर दुन्दुभि बजने लगी। पक्षी जगकर कलरव करने लगे। बन्दियों ने विरुद-गान किया। वीरेन्द्र चूणामणि मेघनाद ने जगकर देखा—उसके वक्ष पर सोती हुई सुन्दरी प्रमिला ऐसी लग रही थी, जैसे कसौटी पर सोने की लकीर। उसने भुजपाश में भरकर प्रियतमा का चुम्बन लिया और कहा—"उठ प्रिये, यह देख, प्राची में श्वेत रश्मि फैल गई। वनकुसुम झूम-झूमकर हंसते हुए तेरा आह्वान कर रहे हैं। उठ दैत्यराज-नन्दिनी, आज विश्व में अघट घटना घटने वाली है। आज समुद्र को शिलाओं से बांधने का दुष्कर्म करने वाले दाशरथि राम को उसके भ्राता सौमित्र के साथ मारकर, मैं उसका हृत्खण्ड पूज्य पिता की सेवा में अर्पण कर परन्तप का ताप दूर करूंगा। उठ चारुलोचने, उठ सुहासिनी! मुझे परिरम्भण दे, अपने प्यार से सम्पन्न कर!"

सुलोचना प्रमिला के प्रस्पन्दमान अर्धमुकुलित सुलोचनों में कृष्ण तारिका झांकती-सी ऐसी दीख पड़ी, जैसे मधुलोलुप षडंघ्रि रात को पंकज में कोषबद्ध हो गया हो और अब उषा-वेला में पंकज-कोष खुलते ही वह चीखने लगा हो। उसने नेत्रारविन्द खोल, लज्जा से नमित हो वस्त्रों को ठीक किया। फिर मन्दहास करती हुई व्याकुल दृष्टि से प्रियतम को निहारकर बोली—"क्या आज इतनी जल्दी प्रभात हो गया, वह सुखरात्रि इतनी शीघ्र विलीन हो गई?"

मेघनाद ने प्रिया का चुम्बन लिया। फिर उसकी अलकावलि से खेलते हुए कहा—"प्राणसखी, तू मेरे भाग्य का सर्वोत्तम फल है। मेरे प्राणरूपी सूर्यकान्त की तेज रश्मि है। अब चल, विलम्ब का काम नहीं। जननी के पादपद्म में प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करें। आज मैं निकुम्भलागार में वैश्वानर की विधिवत् पूजा कर कठिन संग्राम में जाऊंगा। आज मैं प्रबल वैरी का आमूल नाश करूंगा।"

इसी समय रावणि ने त्रिजटा वेत्रवती को सम्मुख आते देखकर कहा—"अरी सुभगे, आज मैं निकुम्भलायज्ञागार में वैश्वानर का पूजन कर वैरी राम का युद्ध में हनन करूंगा। परन्तु मैं सर्वप्रथम मातृपद वन्दना करना चाहता हूं। देख तो, महिषी क्या कर रही हैं। उनसे तू ही जाकर निवेदन कर कि उनका अकिंचन दास यह पुत्र और पुत्रवधू उनकी चरण-वन्दना के अभिलाषी खड़े हैं।"

त्रिजटा ने कहा—"आयुष्मन्, तेरी जय हो! आज रात महिषी ने रुद्रालय में जागरण-उपवास करके तेरी मंगल-कामना की है और देव प्रसाद ले इधर ही आ रही हैं।"

मन्दोदरी ने आकर पुत्र का सिर सूंघ उसे हृदय से लगाया। पुत्र और वधू ने साष्टांग दण्डवत् किया। महिषी ने अश्रुजल बहाते हुए कहा—"पुत्र, शत्रुजयी हो, अमित-पराक्रम हो!"

मेघनाद ने कहा—"मातः, मुझ दास को आशीर्वाद दे कि आज मैं रक्षकुल-विनाशक पापिष्ठ राम का वध कर सकूं। अम्ब, तू केवल मुझे पद-धूलि दे। फिर मैं देखूं कि मेरे कराल बाणों से कौन उसके प्राणों की रक्षा करता है। तेरे प्रसाद से आज मैं उन दोनों दुरात्मा दाशरथियों को बांध लाकर पितृ-चरण का सब संताप हरण करूंगा।"

मन्दोदरी ने आंखों से अश्रुजल-विमोचन किया। उसने कहा—"अरे पुत्र, अब तो तू ही रक्षकुल का एकमात्र आधार बचा है। कैसे मैं तुझे इस काल-समर में जाने को कहूं? अरे, मेरे हृदय-आकाश का तू ही तो पूर्ण चन्द्र है। तुझे भेजकर अन्धकार में मैं कैसे रहूंगी? अरे, देवबलयुक्त राम और दुरन्त लक्ष्मण के साथ कुलद्रोही विभीषण भी मिल गया। जैसे सर्प अपने ही बच्चों को खा जाता है, उसी भांति यह राज्य-लोलुप विभीषण अपने कुल का घात कर रहा है।"

मेघनाद ने हंसकर कहा—"अम्ब, तू क्यों उन दोनों राज्यभ्रष्ट वनवासियों से डरती है? तेरे पद-प्रसाद से यह दास पृथ्वी में अजेय-अयोध्य है। फिर वह तुच्छ नर क्या है?"

"अरे पुत्र, राम मायावी है, वह मरकर भी जी उठता है। देव उसके सहायक हैं, शिलाएं उसके संकेत पर जल में तैरती हैं, अग्नि बुझ जाती है। अरे पुत्र, उस राक्षसरिपु ने तो महाकाल कुम्भकर्ण को भी मार डाला। महाकाल आदि राजपुत्र भी समर-क्षेत्र में कटे पड़े हैं। अब मैं कैसे तुझे काल-समर में भेजूं?"

मेघनाद ने माता के वक्ष में सिर छिपा लिया। उनके आंसू पोंछ कर कहा—"अम्ब, घर में आग लगने पर भला कौन सुख की नींद सोता रहेगा? जब शत्रु ने स्वर्ण-लंका घेर रखी है, तब भला मैं कैसे युद्ध से विरत रह सकता हूं? भला इन्द्रजित् के रहते राक्षस-कुल भयभीत रहेगा? मातामह दनुजेन्द्र मय और मेरे श्वसुर विश्वजित् कालनेमि क्या सोचेंगे? देवेन्द्र हंसेगा। अब पक्षी बोलने लगे, प्रभात में अब देर नहीं। अम्ब, मुझे आज्ञा दीजिए। अरुणोदय से पूर्व ही मैं वैश्वानर की पूजा सम्पन्न करना चाहता हूं।" उसने भूमि में गिर माता को प्रणाम किया। मन्दोदरी ने कहा—"जात, अब मैं क्या कहूं! इस काल-समर में शूलपाणि शंकर तेरी रक्षा करें। जा, भगवान वैश्वानर को आहुति देकर सन्तुष्ट कर और वधू, तू मेरे नेत्रों को मेरे सामने

रहकर शीतल कर। तुझे देखकर मेरे दग्ध प्राण शीतल रह
हैं।"

"जा सुलक्षणा, माता की पद-वन्दना में रह। तब तक मैं वैश्वा
के प्रसाद से समर जय कर लौटता हूं।"

सुलोचना सास की लाज छोड़, रोकर कहने लगी—"प्रिय
शशिकला तो रवि-तेज से ही उज्ज्वल रहती है।"

"जा प्रिये, अब समय नहीं है, पूर्वाकाश में ललाई दीखने लगी
तू लंकेश्वरी के साथ जा, विधाता ने तेरे सुलोचन अश्रु बहाने को न
सिरजे। जा शुभे, प्रकाश फैल रहा है। अनुमति दे प्रिये, मैं चला

इतना कह रावणि मुंह फेरकर चल खड़ा हुआ। सुलोचना ने
पद बढ़ा, दोनों हाथ उठाकर, अश्रुपूरित नेत्रों से देखते हुए कहा—
कुलदेव, लंका पर दया कर, विग्रह में राक्षसकुल की रक्षा कर!
वैश्वानर, अपने अभेद्य कवच से शूल को परावृत कर! हे कुलदे
तुम साक्षी हो, इस छिन्नलता का आश्रय यही तरुराज है, इसे शत्रु
कुठार स्पर्श न कर सके!"

४५

राहु चन्द्रमा को छोड़ देगा, जगत् सुधांशु को देखकर तृप्त होग
इस आशा में राक्षस घर-बाहर आनन्दमत्त लंका में घूम रहे थे। उन
हर्षनाद, जय-कल्लोल, वीणा, मुरज, मुरलि-निनाद, वेदध्वनि, आह
प्रस्तार देख; हाथी-घोड़ों का, सेना का प्रचण्ड घोष, दुन्दुभि का घो
गर्जन, भेरी-स्वर सुन-सुनकर पिंजरबद्ध कुकरी की भांति असहा
भयत्रस्ता, पतिवियुक्ता, रामसखी सीता—विधुमुखी—जनक-नन्दि
अशोक कानन में शोकविदग्धा बैठी भाग्य के झकझोरों में उलझी अके
अश्रुपात कर रही थी। 'रक्षिका राक्षसियों का दल उत्सव-कौतुक देख
चला गया था। राम-कटक को अकंटक पार कर वामादल-सहि
वीरांगना प्रमिला सुन्दरी दैत्यनन्दिनी हठात् लंका में आई है
अरिन्दम, दुर्जय, वीरेन्द्रधुरी, इन्द्रजित् आज राम लक्ष्मण का वध क
लंका का उद्धार करने निकुम्भला यज्ञागार में वैश्वानर की उपास
करेगा, ये सब समाचार उस तक भी कृत-विकृत हो पहुंच रहे थे
इस शत्रुपुरी में कौन उसका सहायक है, कौन उस साध्वी के दुःख
देखने वाला है? उसके लिए भागीरथ प्रयत्न कर दुर्लंघ्य समुद्र
शिलाओं से बांध, धीर-वीर, दृढ़प्रतिज्ञ राम वानर-कटक लेकर अ

हैं। दो-दो बार महाबली दुर्जय रावणि ने उन्हें परास्त कर मृत्युबाणों से बींधा है। आज फिर वह अजेय भीमविक्रम इन्द्रजित्, रुद्रसान्निध्य से सम्पन्न, वैश्वानर-वरलब्ध, राघवेन्द्रों के प्राणों का वैरी, सम्पूर्ण राक्षस-कटक सम्भार सम्पन्न कर रहा है। हाय, आज तो प्रलय ही हो जाएगी। कौन काल-समर में आज राघव-बन्धुओं की रक्षा करेगा? अरे, मुझ हतभागिनी के लिए आर्यपुत्र के प्राण दो-दो बार संकट में पड़ चुके हैं। अब आज क्या होगा, कौन जानता है! अरे, किसीने भरत को हमारी इस विपदा की सूचना नहीं दी। अभी तक अयोध्या से रघुओं की अक्षौहिणी सेनाएं नहीं आईं। अरे, इस वीर मेघनाद ने तो देवेन्द्र को भी बांध लिया था। अब ऐसा कौन है जो रघुमणि की इस काल-सर्प से रक्षा करे? मैंने ही क्या कुमति की जो जीवित रही और आर्यपुत्र को यहां बुलाकर संकट में डाल दिया! हाय, अब क्या होगा? आज क्या होने वाला है? पवन से इस अशोक वन के पत्ते हिल-हिल-कर मर्मर शब्द कर रहे हैं जैसे वे भी मेरे विषाद से हिल-हिलकर विलाप कर रहे हों। शाखाओं में पक्षी जैसे मेरे ही दुःख में रुदन कर रहे हैं। कुसुमराशि तरुमूल में पड़ी है, मानो वृक्षों ने मनस्ताप से तप्त होकर अपना शृंगार छिन्न-भिन्न कर डाला है। नदियां जैसे रोती हुई सागर-वक्ष पर पछाड़ खा रही हैं। हाय, अब इस विपत्-सागर से कौन रघुकुल को उबारेगा?"

वैदेही वैकल्य-भाव में मग्न, अकेली बैठी अश्रुपात कर रही थी। एक ही मलिन वस्त्र उसके अंग पर था। उसने घुटनों को वक्ष में छिपा लिया था। सिर झुककर वक्ष पर मिल गया था। शोकशीर्ण उसका क्षीण कलेवर, ग्रीष्म शुष्क पार्वत्य नदी-सा हो रहा था। इसी समय सरमा राक्षसी आकर रोती हुई सीता के चरणतल में बैठ गई। उन निर्दय राक्षसियों के वृन्द में यही एक उसकी सदय सखी थी। उसने कहा—"महाभागे, सब दुष्ट चेटियां तुम्हें छोड़कर आज महोत्सव देखने चली गईं। वे सब मद्य पी-पीकर मत्त हो नृत्य-गान कर रही हैं। इसीसे सुयोग्य पा, मैं तुम्हारी चरण-वन्दना करने आई हूं।"

सीता ने अश्रुपूरित दृष्टि से सरमा को देखकर कहा—"हे सखी, इस राक्षसपुरी में तू ही मुझपर सदय है। हाय, मैंने तो कभी स्वप्न में भी किसी प्राणी का अहित-चिंतन नहीं किया। पिता की आज्ञा से जब आर्यपुत्र राज्य त्याग चुपचाप वन चल दिए, तो छाया की भांति मैं भी उनके पीछे चल दी। हम गोदावरी के तट पर उसी प्रकार रहते थे, जैसे ऊंचे वृक्ष पर कबूतर-कबूतरी घोंसला बनाकर रहते हैं। हाय!

किस दुर्भाग्य से मेरे वे सुदिन लुप्त हो गए ! अब क्या मेरे ये दग्ध चक्षु इस जीवन में उन पादपद्मों को देख सकेंगे ?"

सरमा ने कहा—"विधुमुखी, इस प्रकार हताश और कातर न हो ! मेरी बात सुनो। शिलाएं सागर की लहरों पर तैर रही हैं। महातेज, दुरंत, दुर्जय, सर्वजयी, देव-दैत्य-नर-त्रास कुम्भकर्ण का छिन्न-भिन्न शरीर सागर-तट पर पड़ा है। रावण के सब पुत्र, परिजन, सुभट, गुल्मपति, अजेय योद्धा मरण-शरण हो गए। त्रिभुवन-विजयी योद्धाओं की लाशें सागर-तट पर गिद्ध और शृंगाल खा रहे हैं। लंका अब वीरशून्या हो गई है। रक्षेन्द्र रावण शोकदग्ध, भग्न-मन, ठंडी सांसें लेता है। मणि महालय के सब रास-रंग मौन हैं। लंका पर चीलों और गिद्धों के मंडराने से अशुभ छाया छा रही है। अब लंका की विधुमुखी युवतियां मंगल-गान नहीं करतीं, वे अपने नव वैधव्य के दुर्भाग्य में मग्न विलाप करती हैं। लंका के घर-घर शोक मूर्तरूप घूम रहा है। यह अब वह लोकविश्रुत लंका नहीं रह गई है। हे रघु-वधू, रक्षेन्द्र की आशा का आधार अब केवल यही दुरन्त, सर्वजित मेघनाद है। यह रौद्र तेज से सम्पन्न, दिव्यास्त्रों से सज्जित, अमित वीर्यवन्त पुरुष है। इसके मरते ही रक्षेन्द्र को तुम मृतक ही समझो और लंका का यह आज का हर्षोल्लास तो बुझते हुए दीपक की लौ है।"

सरमा के ये वचन सुन सीता आश्वस्त होकर बोली—"किन्तु सखी, यह दुरन्त रिपु दो-दो बार दोनों रघुकुमारों को जय कर चुका है। आज ही सुना है, वह पूर्ण रौद्र तेज से अभिभूत हो, साक्षात् कालरूप समरांगण में जा रहा है। आज कैसे इस दुरन्त शत्रु से आर्य-पुत्र की रक्षा होगी ?"

सरमा ने कहा—"देवि, मेरी बात सुनो, दिव्यास्त्रों के रहते रौद्र तेजसम्पन्न इस दुरन्त मायावी का वध असंभव है। पृथ्वी का कोई वीर, देव, दैत्य, दानव इस अजेय का वध नहीं कर सकता।" फिर उसने सीता के कान के पास मुख लाकर मन्द स्वर में कहा—"अभी कुछ क्षणों में यह दुरन्त रावणि शस्त्ररहित निकुम्भला यज्ञागार में एकाकी जाएगा। यही समय है कि राघवेन्द्र किसी तरह वहां पहुंचकर उसका वध कर डालें। अभी सूर्योदय नहीं हुआ है, परन्तु प्रभात होने में देर नहीं है। मणि-महालय की दुन्दुभियां बज रही हैं। अभी वीरेन्द्र मातृपद-वन्दना करने जाएगा। पीछे वह निकुम्भला यज्ञागार में एकाकी निरस्त्र बैठ वैश्वानर को आहुति देगा। इसमें उसे आधा याम समय लगेगा। अभी भी यदि राघवेन्द्र को कोई यह सूचना दे दे और

राघवेन्द्र यह दुस्सह साहस कर सकें, तो निश्चय ही यह मृत्युञ्जय मरण-शरण हो सकता है।"

सीता ने विकल भाव से सरमा का हाथ पकड़ लिया। उन्होंने कहा—"सखि, यह सत्य है कि यह अवसर चूका सो चूका। सो सखि, तू ही यह प्राणान्तक उद्योग मेरे लिए करे तो हो सकता है, नहीं तो नहीं।"

"मैं ही करूंगी वैदेही, तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुम्हारा दुःख नहीं देख सकती। तुम्हारे भाग्य से रघुमित्र गदापाणि धीर विभीषण राम की सेवा में हैं। चाहें तो अनायास ही गुप्त रूप से निरापद राघवेन्द्र को या उनके भ्राता को निकुम्भला यज्ञागार के अगम क्षेत्र में ले जा सकते हैं, जो सहस्र भट-रक्षित है और जहां बिना अनुमति वायु का भी प्रवेश नहीं हो सकता।" इतना कह सरसा तुरन्त वहां से अदृश्य हो गई। रह गई वैकल्य-विकल, भाग्यदग्धा, एकाकिनी, प्रिय-वियोगिनी वैदेही—आशा-निराशा के झूले में झूलती-सी।

४६

उषा का उदय हो रहा था। राम-कटक सज रहा था। पर राम सब सेनानियों सहित व्याकुल भाव से बैठे परामर्श में मग्न थे। इसी समय वानर-सैन्य को विस्मित करते हुए मारुति सरमा को राम के सम्मुख ले आए। उन्होंने कहा—"यह राक्षसबाला आपके पादपद्म में कुछ कूट निवेदन करना चाहती है।" राम ने कहा—"कह भद्रे, मैं तेरा क्या प्रिय कर सकता हूं!"

सरमा ने प्रथम राम-लक्ष्मण को, फिर विभीषण को प्रणाम करके कहा—"धर्मात्मा राक्षसराज विभीषण मुझे पहचानते हैं, पहले ये साक्षी दें तो मैं कूट निवेदन करूं।"

विभीषण ने कहा—"मैं तुझे पहचानता हूं, तू सरमा किंकरी है। मुझे स्मरण होता है, तू अशोक वन की रक्षिका राक्षसी सैन्य की अधिष्ठात्री है।"

"और वैदेही की किंकरी भी।"

"यह भी मैंने सुना था, भगवती से सौहार्द रखने के कारण राक्षसेन्द्र की धर्षणा भी पा चुकी है।"

"तो राघवेन्द्र प्रसन्न हों और किंकरी के वचन पर विश्वास करें। क्या मैं यहां सबके समक्ष कूट निवेदन करूं?"

"कह भद्रे, ये सब हमारे विश्वस्त सेनापति हैं।"

"तो रथीन्द्र मेघनाद इस क्षण एकाकी निकुम्भला यज्ञागार में वैश्वानर की पूजा कर रहा है। राघवेन्द्र साहस करें तो इसी क्षण उसका निरस्त्र वध कर सकते हैं। बस, यह क्षण चूके तो चूके।"

यह सुनते ही सौमित्रि उछलकर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—"हे कल्याणी, क्या तू निकुम्भला यज्ञागार का मार्ग जानती है? क्या तू मार्ग बताकर अपना अनुग्रह शतगुण कर सकती है?"

"गदापाणि राक्षसशिरोमणि धर्मात्मा विभीषण को आपका वरद सान्निध्य प्राप्त है। ये चाहें तो आपको गुप्त रूप से अगम्य यज्ञागार में सशस्त्र निरस्त्र-एकाकी रावणि के सम्मुख एक मुहूर्त में ही ले जाकर खड़ा कर सकते हैं।"

"तो आर्य, अब विलम्ब मत कीजिए, अनुमति दीजिए, उषा का उदय हो रहा है।"

राम ने आर्द्रनयन होकर कहा—"भाई, जिसे देखकर देव-दैत्य सभी भयभीत होते हैं, जिसने देखते ही वानर-कटक से रक्षित हमें बात की बात में शरबिद्ध कर दो-दो बार भूपतित किया, उसके सम्मुख मैं तुम्हें कैसे जाने दूं? जिस विषधर के विष से देव-नर तुरन्त भस्म हो जाते हैं, कैसे मैं उसकी बांबी में तुम्हें अकेला भेजूं? अरे सौमित्रि, सीता के उद्धार का अब कुछ प्रयोजन नहीं है। मैंने व्यर्थ ही समुद्र पर सेतु बांध शत्रु-मित्र के रक्त से पृथ्वी को रंगा। भाग्य-दोष से मैंने राज्यपाट, माता-पिता, बन्धु-बान्धव सभीको खोया। इस मेरे अन्धकारावृत जीवन में एक जनक-सुता सीता ही दीपशिखा थी, सो अदृष्ट ने उसे भी बुझा दिया। अब एक तुम्हीं मेरी आशा के आधार हो, तुम्हें मैं नहीं खोऊंगा: चलो सौमित्रि, वन को लौट चलें।"

लक्ष्मण ने कहा—"आर्य, ये कैसे वचन मैं आपके मुंह से सुन रहा हूं! लंका का सौभाग्य-सूर्य डूब गया। लंका के जगज्जयी सुभटों के शवों को गिद्ध और शृंगाल खा रहे हैं। लाइए देवास्त्र, मैं अभी—इसी क्षण नराधम रावणि का हनन करता हूं।"

विभीषण ने अब धीर स्वर में कहा—"राघव, सौमित्र ठीक कहते हैं, मैं उनके साथ हूं, आप चिन्ता न करें। सरमा का कूट निवेदन बहुमूल्य है। यह भगवती की शुभचिन्तिका किंकरी है, इसपर संदेह का कोई कारण नहीं है। यह कूट योग हमें चूकना नहीं चाहिए।"

"मित्र,"—राम ने संतप्त स्वर में कहा—"जब मैंने पिता की आज्ञा से वनगमन किया तो वीरवर लक्ष्मण तरुण यौवन में सब सुखों

को तिलांजलि दे, स्वेच्छा से मेरे पीछे वन को चल दिए। तब माता सुमित्रा ने नयनाश्रुपात कर कहा था—'राम, मेरे इस नयन-मणि को, मेरे हृदय-धन को यत्न से रखना!' सो अब मैं इस भ्रातृरत्न को कैसे संकट में डालूं, अथवा परिणाम जो हो, सो हो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूं?"

विभीषण ने कहा—"महाराज, आप कातर न हों। धैर्य के कुछ क्षण ही आते हैं, जब धैर्यवान की परीक्षा होती है। सरमा का कूट योग बहुमूल्य है, अब आप हमें आज्ञा दीजिए। ये क्षण व्यर्थ जा रहे हैं।"

राम ने मस्तक नवा आंखों से अश्रु गिराए और कहा—"लाओ देवास्त्र, मैं अपने हाथों सौमित्रि का वीर-शृंगार करूंगा।" उन्होंने दिव्य कवच धारण करा कर, कमर में कृपाण, पीठ पर उमादत्त ढाल, हाथ में नागसिद्ध दिव्य धनुष, पीठ पर अक्षय तूणीर कस दिया। मस्तक पर लौह त्राण सजा दिया। सौमित्रि ने राघवेन्द्र की प्रदक्षिणा करके साष्टांग दण्डवत् किया और कहा—"आर्य, आशीर्वाद दीजिए, मैं आज दुर्धर शत्रु का संहार करूं!"

"भाई, जैसे पीठ दिखाते हो, वैसे ही मुंह दिखाना। मित्र रक्षेन्द्र विभीषण, मेरे जीवन और मृत्यु तुम्हारे ही हाथ हैं। मैं अपना अमूल्य रत्न तुम्हें सौंपता हूं। अब और क्या कहूं? मातुलि, सौमित्रि को तुम ले जाओ और ऐसे ही ले आओ देव!"

इतना कह राम विकल भाव से उद्विग्नमन खड़े रहे। सौमित्रि और विभीषण दिव्य देवरथ में बैठ द्रुतगति से निकुम्भला यज्ञागार में नीलपद्म की मंत्रपूत आहुति देते हुए यज्ञदीक्षित रावणि का निरस्त्र वध करने चल पड़े।

कनक-लंका में आनन्दोत्सव होने लगे। दुन्दुभियां गड़गड़ाने लगीं। वीरवाहिनियां सज-सजकर चतुष्पदों पर एकत्र होने लगीं। घर-घर बाजे बजने लगे। आज का प्रभात लंका में आशा आनन्द के प्रवाह को लेकर आया था। वीरेन्द्र राम को मारेगा, लक्ष्मण का भी वध करेगा। राक्षस-दल वानर-कटक को मार-मारकर समुद्र के अतल तल में डुबो देगा। राज-प्रासाद के प्रांगण में सैन्य सज्जित हो रही थी। घोंसे गड़गड़ा रहे थे। हाथी, घोड़े, पैदल पंक्ति बांधे खड़े थे। सेना-नायक तालजंघ गुल्मों का व्यूह रच रहा था। पुरजन इधर-उधर आते-जाते बातें कर रहे थे। एक ने कहा— 'जल्दी कर मित्र, प्राचीर पर चढ़ा जाए, जिससे आज का युद्ध देखने को मिल जाए। फिर स्थान

नहीं मिलेगा।"

दूसरे ने कहा—"अरे, अभी ठहर, अरिन्दम इन्द्रजित् अभी भगवान् वैश्वानर की उपासना कर रहा है। वह अभी आकर सम्पूर्ण राक्षस-व्यूह का निरीक्षण करेगा।

तीसरे ने कहा—"आज भिक्षुक राम का निस्तार नहीं है। कुल-द्रोही महाराज विभीषण भी आज अपने कर्म-फल भोगेंगे।"

"अरिन्दम इन्द्रजित् तो पल-भर ही में राम को मार डालेगा।"

"सच कहते हो। जैसे अग्नि सूखी घास को भस्म करती है, वैसे ही युवराज शत्रु-संहार करता है। उस-सा योद्धा पृथ्वी पर और नहीं है।"

"धन्य है महीन्द्र, महिदेव, रक्षपति, पौलस्त्य, जगदीश्वर रावण रक्षेन्द्र, वह जगत् में महिमा का समुद्र है। कहो भला, पृथ्वीतल पर और किसका ऐसा वैभव है? परन्तु इस भिखारी राम ने इस रत्न-मयी लंका को विधवा बना दिया। देखा, समुद्र-तीर पर पर्वत के समान कुम्भकर्ण महाराज समरभूमि में पड़े हैं। भला इस बात की भी कोई कल्पना कर सकता था?"

"अरे, तभी तो लंका के हेमकूट के समान गगनचुम्बी प्रासादों की हाथीदांतजड़ी खिड़कियों और स्वर्णद्वारों से, निहत वीरों की म्लान-वदना राक्षस-वधुएं साश्रुनयन समर क्षेत की ओर देख रही हैं।"

"हां भाई, सच है। लंका की भांति वैभव इस लोक में भला कहां था? पर जगत् में स्थिर कौन है? सागर-तरंग की भांति एक वस्तु आती और दूसरी जाती है। चलो भाई, चलो देखें; अब तो प्राचीर पर नरमुण्ड दीखने लगे।"

अगम्य, सहस्र-सहस्र सुभट-रक्षित निकुम्भला यज्ञागार में रथीन्द्र इन्द्रजित् कुशासन पर अकेला बैठा था, रक्त कौशेय और ऊर्ण यज्ञोपवीत पहने। भाल पर रक्तचन्दन का लेप, कण्ठ में जवापुष्प की माल। धूपदानों में गन्धद्रव्य जल रहे थे, एक सहस्र घृत के दीपक जल रहे थे। नीलोत्पलों का ढेर लगा था। स्वर्णघटों में समुद्र-जल भरा था। सम्मुख स्वर्णघट था। रत्नपात्रों में पूजा-सामग्री थी। रथीन्द्र निमीलितनेत्र वेद-मंत्र-पाठ कर आहुति दे रहा था।

क्षुधातुर व्याघ्र जैसे गोशाला में प्रविष्ट होता है, उसी भांति बली सौमित्रि ने झपटते हुए, विकराल देवदत्त खड्ग कोश से खींच रथीन्द्र को ललकारा।

ललकार तथा शस्त्रों की झनझनाहट सुन रथीन्द्र मेघनाद ने चौकन्ने होकर नेत्र खोल, सौमित्रि की सौम्य मूर्ति को देखा। उसने समझा, प्रसन्न हो भगवान् वैश्वानर ने ही प्रत्यक्ष दर्शन देने का अनुग्रह किया है। उसने उठकर, दूर ही से भूतल में गिर, साष्टांग प्रणाम कर बद्धांजलि हो कहा—"देव वैश्वानर, यह दास आज आपकी आराधना कर रहा है, क्या इसीलिए आपने इस रूप में प्रकट होकर दास पर अनुग्रह किया है? हे देव, मैं आपको प्रणाम करता हूं!"

लक्ष्मण ने कहा—"सावधान रावणि, मैं वैश्वानर नहीं—तेरा काल सौमित्रि हूं। मैं अभी तेरा वध करता हूं।"

मेघनाद ने भयभीत होकर विस्मित नेत्रों से सौमित्रि को देखकर कहा—"तू सौमित्रि मानव है! कह, किस कौशल से तू इस अगम्य यज्ञागार में घुसा? इसकी प्राचीर दुर्लंघ्य है, असंख्य योद्धा चक्रावलि के रूप में चारों ओर शस्त्रपाणि घूम रहे हैं, द्वार पर दुर्जय योद्धाओं का पहरा है। देवों और मानवों में ऐसा कौन वीर जन्मा है, जो अकेला इस रक्षित आगार में आने का साहस कर सके? नहीं-नहीं, आप अवश्य ही भगवान् वैश्वानर हैं। इस दास को प्रवंचना से मुक्त कर वर दे कि मैं राम का वध कर लंका को निश्शंक करूं। देखिए, सेनाएं शृंगनाद कर रही हैं, मैं अब विलम्ब नहीं कर सकता।"

लक्ष्मण ने कहा—"अरे दुरन्त रावणि, मैं तेरा काल यहां उपस्थित हूं। आयुहीन जन को काटने के लिए काल-सर्प धरती फोड़कर निकल आता है। रे देवकुलद्रोही, आज मैं यहीं तेरा हनन करूंगा।"

सौमित्रि खड्ग लिए आगे बढ़े। मेघनाद ने पीछे हटते हुए कहा—"ठहर, तू यदि सत्य ही रामानुज लक्ष्मण है, तो मैं अभी तेरी युद्ध-कामना पूरी करता हूं। हे वीर, तू मेरे धाम में पहली बार आया है, इसलिए शत्रु होने पर भी अतिथि है, क्षण-भर मेरा आतिथ्य ग्रहण कर। मैं तनिक वीर-साज सज लूं, अस्त्र ले लूं।"

लक्ष्मण ने गरजकर कहा—"अरे, मूढ़, बाघ के जाल में फंसने पर क्या किरात उसे छोड़ देता है? मैं तुझे इसी क्षण निरस्त्र वध करूंगा।"

मेघनाद ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे, अधम मानव, निरस्त्र शत्रु पर आघात करना वीरकुल की मर्यादा नहीं। तूने चोर की भांति मेरे मन्दिर में प्रवेश किया है। ठहर, मैं तुझे चोर ही की भांति दण्ड दूंगा।" उसने एक शृंगपात्र उठाकर लक्ष्मण के सिर पर दे मारा।

सिर पर करारा आघात खाकर लक्ष्मण घूमकर भूमि पर गिर

पड़। अब मेघनाद उनकी तलवार लेने को झपटा। इसी समय भीमकाय शूल हाथ में लिए विभीषण ने उसका मार्ग रोक लिया। विभीषण को सम्मुख देख रावणि ने क्रोध और घृणामिश्रित स्वर में कहा—"अहा, अब समझा कि रामानुज ने किस कौशल से शत्रुपुरी में प्रवेश किया। तात, आपको धिक्कार है! अरे, महिदेव जगदीश्वर आपका सहोदर, महातेज कुम्भकर्ण आपका भाई और यह दास आपका भ्रातृपुत्र इन्द्र-विजयी। सो आपने अपने घर का द्वार चोर को दिखाया? क्या कहूं, आप पितृतुल्य गुरुजन हैं। कृपा करके राह छोड़ दीजिए। मैं शस्त्रागर में जाकर शस्त्रपाणि हो, अभी इस चोर रामानुज को मृत्यु की गोद में सुलाकर लंका के कलंक को दूर करूंगा।"

विभीषण ने कहा—"तेरा अनुरोध वृथा है, मैं राम का अनुगत हूं।"

"अहा, यह आपने क्या कहा? हाय, आप! राम के दास! अरे, कहां आप महाकुल में जन्मधारी और कहां अधम राम! यह रामानुज कितना क्षुद्र है जो निरस्त्र योद्धा पर शस्त्राघात करता है? यह क्या महारथियों की प्रथा है? हटिए, मुझे शस्त्र ले आने दीजिए। मै देखूंगा, इस काल के मुख में आए हुए हतायु रामानुज को अब कौन मेरे हाथ से बचाता है? हटो. द्वार छोड़ो!" परन्तु विभीषण ने द्वार नहीं छोड़ा! उन्होंने कहा—"रावण तो अपने कर्मदोष ही से लंका-सहित रक्षकुल को डुबो रहा है। मैंने तो धर्माश्रय लिया है।"

मेघनाद ने गरजकर कहा—"तुमने धर्माश्रय लिया है? किस धर्म के मत से तुमने भ्रातृत्व और जातित्व को तिलांजलि दी है? अरे, अरे!"

इसी क्षण हठात् सौमित्रि ने सावधान हो दिव्य धनुष से बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। मेघनाद के शरीर में बाण छिद-छिदकर रक्त की धार बह चली। मेघनाद ने आहत पशु की भांति चीत्कार करते हुए कहा—"अरे अधम चोर, ठहर, ठहर, रे ठहर!" उसने यज्ञपात्र, घंटा उठा-उठाकर लक्ष्मण पर फेंकने आरम्भ किए। लक्ष्मण ने दिव्य धनुष से चौमुखी बाण-वर्षा कर मेघनाद के अंग-प्रत्यंग को छलनी कर दिया। वह बचने को इधर-उधर दौड़ने और चिल्लाने लगा। लक्ष्मण की चतुर्मुख बाण-वर्षा से चमत्कृत होकर आर्तनाद करता हुआ मेघनाद बोला—"हाय-हाय, अब मैं ऐसे मरता हूं जैसे राहु चन्द्र को ग्रस लेता है अथवा जैसे सिंह व्याघ्र के जाल में फंसकर।" लक्ष्मण ने उसके दोनों पैरों को झटपट बींध डाला। रथीन्द्र भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा।

अब लक्ष्मण धनुष छोड़ खड्ग हाथ में ले उसपर पिल पड़े। उन्होंने बारम्बार निर्दय आघात करते हुए कहा—"मर रे अधम, मर! मर रे देवों के शत्रु मर! पृथ्वी को अशान्त करने वाले, मर! मर! मर!" रथीन्द्र रावणि के अंग-प्रत्यंग कटकर छिन्न-भिन्न हो गए। वह रक्त में लथपथ छटपटाने और लम्बी-लम्बी सांसें लेने लगा। उसने टूटते स्वर में कहा—"अरे नराधम पामर, मुझे मृत्यु का शोक नहीं। पर तुझ चोर के आघात से मेरी मृत्यु हुई, इसीकी लज्जा है। अरे नराधम, रक्षेन्द्र जब सुनकर क्रोध करेंगे तो उनसे तेरी रक्षा कौन करेगा? दानवों और मानवों में कौन ऐसा समर्थ है?" वह मृत्यु यातना से हांफने लगा। कुछ रुककर उसने कहा—"हे पिता, विदा! हे अम्ब विदा! आपके चरणों से मुझ अपुत्र की विदा! प्रिये सुलोचने, दानव-नन्दिनी, चारुभाषिणी, प्राणाधिके, विदा! चिर विदा!"

उसकी आखों से अश्रुधारा और शरीर से रक्तधारा अविरल बह चली। अन्त में उसका सिर गिर गया, नेत्र उलट गए। प्राण-पखेरू उड़ गए।

विभीषण शूल फेंक रोते हुए उससे लिपट गए। रोते-रोते वे कहने लगे—"अरे पुत्र, राक्षसराज रावण के आशास्तम्भ, मन्दोदरी के नयनतारे, सुलोचना प्रमिला के प्राण, तुझे यह क्या हो गया? उठ वत्स, उठ! मैंने तो तुझे घुटनों पर खिलाया था। अरे, एक बार उसी भांति हंसकर बोल! प्रिय, मैं कुलांगार विभीषण तेरा पितृव्य हूं। मैं अभी द्वार खोलता हूं, तू शस्त्र लेकर लंका का कलंक दूर कर। हाय-हाय, राक्षस-कुल का सूर्य तो मध्याह्न में ही अस्त हो गया! अरे वीर-मणि, तू भूतल में क्यों पड़ा है? अरे, राक्षस-सैन्य जयोल्लास से गरज रही है, श्रृंगीनादी नाद कर रहे हैं। घोड़े भैरवनाद से हिनहिना रहे हैं, राक्षस सुभट वीर साज सजे तेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं। उठ वीर, उठ!"

लक्ष्मण ने विभीषण के कन्धे पर हाथ धरकर कहा—"राक्षसपति, दुःख का दमन कीजिए, वृथा शोक से क्या लाभ है! चलिए, अब शीघ्र आर्य राघवेन्द्र की सेवा में पहुंच उनकी आशंका दूर करें।"

उन्होंने गदापति विभीषण को हाथ का सहारा देकर उठाया और गुप्त राह से जैसे आए थे, उसी भांति दोनों वहां से पलायन कर गए।

महीपति रक्षेन्द्र ने आज भोर ही में सभाभवन में आ रत्न-सिंहासन सुशोभित किया। मंत्री, सभासद् सभी उदग्रमन अपने-अपने आसन पर

बैठे। रक्षेन्द्र गम्भीर भाव से मौन बैठा रहा। फिर उसने कहा—"क्या वीरपुत्र का वैश्वानर-यज्ञ सम्पूर्ण हुआ? राक्षस-सैन्य क्या रणक्षेत्र को प्रस्थान कर गई। पुत्र ने राजमहिषी की तो चरण-वन्दना की, पर मेरे निकट मेरा आशीर्वाद लेने नहीं आया? मैं आशीर्वाद देता हूं—वह आज शत्रु का हनन कर लंका-कंटक दूर करे। परन्तु मैं जय-निनाद नहीं सुन रहा हूं? हाथी नहीं चिंघाड़ रहे, न घोड़े हिनहिना रहे हैं? यह मेरे हृदय में हूक-सी कैसी उठ रही है! सभासदो, मैं तो अब स्वर्णासन पर स्थिर नहीं रह सकता। मेरे प्राण अधीर हो रहे हैं। क्या सेना प्रस्थान कर गई?"

सारण ने अधोमुख हो कहा—शृंगी-नाद तो नहीं सुनाई दे रहा है। किन्तु यह कोलाहल कैसा है?"

"यह तो बढ़ता ही जा रहा है। यह सेना का जयनाद नहीं है। अय, युद्ध के धौंसे एकबारगी ही कैसे बजने बन्द हो गए? भेरी-नाद कहां सुनाई दे रहा है?"

रावण ने विकल दृष्टि से चारों ओर देखा। इसी क्षण एक चर आकर—'हे परमेश्वर, हे रक्षेश्वर, हे महिदेव कहता, भूमि में आ गिरा।

इसके बाद दो-चार-दस-पचास-सौ।

"यह क्या? कोई बोलता क्यों नहीं?" रावण ने गरजकर कहा। परन्तु दूतों के मुख से बात नहीं फूटी। वे—'रक्षा करो, रक्षा करो'—कहकर सिर धुनते हुए भूमि में पड़े रहे।

रावण का मन हाहाकार कर उठा। उसने कहा—"कोई भी कुछ नहीं कहता। ये सब तो अक्षत हैं, निरापद हैं, फिर इतने कातर क्यों हैं?" रक्षेन्द्र मणिपीठ त्यागकर खड़ा हो गया। उसने कहा—"अरे, कहो, क्या संवाद है? क्या वीरपुत्र ने प्रस्थान कर दिया? चतुरंगिणी सेना क्या शत्रु के सम्मुख पहुंच चुकी?"

दूत सिर धुनने और विलाप करने लगे।

रावण ने कहा—"अरे कहो, तुम सब इतने शोकातुर क्यों हो? क्या तुम कोई अमगल वार्ता कहना चाहते हो? यदि अरिन्दम ने राम को मार डाला हो तो कहो, मैं सभीको राजप्रसाद दूंगा।"

एक वृद्ध दूत ने सिर उठा, मुख में तृण दाब कांपते-कांपते कहा—"हे पृथ्वीनाथ, यह अधम दास अमंगल-वार्ता कैसे कहे? हाय! वह बात कहने से पूर्व ही मेरी जीभ कटकर गिर जाए।"

"अमंगल-वार्ता? कैसी अमंगल-वार्ता? अच्छा, शुभाशुभ जो हो, वही कह! शुभाशुभ तो विधि का विधान है। झटपट कह—मैं तुझे

अभयदान देता हूं।"

"हे जगदीश्वर! मृत्युंजय, रथीन्द्र, इन्द्रजित् युवराज का निकुम्भला यज्ञागार में किसी अज्ञात छली ने वध कर डाला। उनका रक्त-प्लुत अंग-भंग निष्प्राण शरीर यज्ञभूमि में पड़ा है।"

यह सुनते ही रावण कटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर गया। सभासदों ने दौड़कर मूर्च्छित महिदेव को उठाया। सहसा सैकड़ों-सहस्रों राक्षस भट रोते-चिल्लाते, छाती कूटते सभाभवन में घुस आए।

रावण ने चैतन्य होकर अपने चारों ओर देखा। मंत्रिवर सारण ने बद्धांजलि निवेदन किया—"हे स्वामी, इस समय आप शोकावेग को न सहेंगे तो राक्षस-कुलांगनाओं के चक्षुजल में पृथ्वी डूब जाएगी। हे त्रिलोकजयी, अभी आपको भीमास्त्र से पुत्रघाती का हनन करना है।"

रावण ने उन्मत्त की भांति कहा—"कौन है वह वीर? किसने रणंजय पुत्र का वध किया?"

"महाराज, रामानुज लक्ष्मण ने छद्मवेश में यज्ञागार में प्रविष्ट होकर यह दुष्कृत्य किया। रथीन्द्र जब भगवान् वैश्वानर को वेद मंत्रों से अभिमंत्रित कर नील कमल की आहुति अर्पण कर रहा था, तभी सौमित्रि ने हठात् प्रविष्ट होकर निरस्त्र महारथी का वध कर डाला।"

रावण ने वज्र गर्जना करके कहा—"अरे वीरो, युद्ध-साज सज लो। आज मैं इस शोक-ज्वाला से विश्व को भस्म करूंगा।"

सहसा प्रलय-गर्जन की भांति शत-सहस्र दुन्दुभियां बज उठीं।

महिदेव मत्त गजेन्द्र की भांति लड़खड़ाता हुआ अन्तःपुर में पहुंचा। मन्दोदरी रोते-रोते चित्रांगदा और सखियों-सहित आकर उसके पैरों में लोट गई।

रावण ने आहत पशु की भांति कराहकर कहा—"प्रिये, धैर्य धारण करो। अभी तुम शून्यगृह में बैठो। मैं इस समय रण-यात्री हूं। अभी तो मुझे पुत्र की मृत्यु का बदला लेना है। देवियो, अभी तो मुझे रण-साज सजाकर विदा करो, विलाप के लिए तुम्हें बहुत समय मिलेगा। मैं तनिक उस कपटी चोर सौमित्रि का हृदय विदीर्ण कर उसका हृत्खण्ड निकाल लाऊं। फिर इस निरर्थक राज्य-सुख को तिलांजलि दे, एकान्त में बैठकर तुम्हारे पुत्र का स्मरण करूंगा। अरे महिषियो, रोती क्यों हो? यह रोषाग्नि क्या तुम्हारे अश्रु-जल से बुझ जाएगी? आज तो गिरिश्रृंग ही चूर्ण हो गया। चन्द्रमा के खण्ड-खण्ड हो गए। रविमण्डल का तेज ही बुझ गया।"

मन्दोदरी ने कहा—"देव, राक्षसकुल के अन्तिम नक्षत्र आप तो शेष हैं। भला हम कैसे आपको उस मायावी राम के सम्मुख जा दे ? हे महाराज, कैसे हम धैर्य धारण करें ?"

राजमहिषियों के विलाप से विचलित हो रावण ने कहा—"जिसके पराक्रम से देवलोक और नरलोक मैंने जय किया, जिसके से अतलतल में नाग भयभीत रहते थे देवेन्द्र सुख की नींद नहीं सो था, जिसके मस्तक पर नृवंश के छत्रपतियों के सम्मुख दास की भां कंधे पर तीर्थोदक का कलश रख देवराट् ने अभिषेक किया, उस राक्ष कुलदीप का चोर सौमित्रि ने अन्यायपूर्वक पशु की भांति वध कर डाला हाय, वीरमणि निरस्त्र ही मारा गया ! मैंने व्यर्थ ही देव, दैत्य, न कुल को जय किया। झूठ ही जगज्जयी नाम धराया। पर अब विला से क्या ? इससे क्या पुत्र फिर से जी जाएगा ? मैं आज अधर्मी सौमि का वध करूंगा। नहीं तो लंका में नहीं लौटूंगा। अरे, मेघनाद व वध हो गया, यह सुनकर कौन राक्षस जीता रहना चाहेगा ? कोई चलो, सम्मुख समर में पुत्र का शत्रु के रक्त से तर्पण करें।"

रावण ने अश्रुमोचन किए। मंत्रिगणों ने सिर झुका लिया। से ने सिंहनाद किया।

दानवनन्दिनी सुलोचना प्रमिला ने स्नानादिक से निवृत्त अलंकार धारण किए। दासियों ने प्रसाधन किया। एक-एक उसके अंगों से अलंकार खिसकने लगे। उसने कहा—"अरी सखि यह क्या हुआ ? मणिमय भुजबन्ध पहनने से मेरा हाथ क्यों दु लगा ? अंग से अलंकार क्यों खिसकने लगे ? यह मेरा दाहिना फड़का। अरी वासन्ती, वीरेन्द्र चूड़ामणि यज्ञागार में वैश्वानर पूजा कर रहे हैं। तू अभी जाकर उनकी सेवा में मुझ दासी का निवे कर कि आज वे रणांगण में न जाएं। आज न जाने क्या हो, मेरा तो डूबा जा रहा है।"

वासन्ती ने कहा—"देवि, तनिक सुनो तो, यह आर्तनाद कैसा कौन रो रहा है ? अरे, शत-सहस्र कण्ठ रो रहे हैं।"

"सुन रही हूं। सेना का हुंकार बन्द हो गया, दुन्दुभि की गर्ज विलीन हो गई, शृंगी-नाद नहीं सुनाई दे रहा। हाहाकार और रोद ध्वनि बढ़ती आ रही है। अरे, ये सब पुरवासी क्यों रो रहे हैं ? रघी के रहते लंका पर अब यह कौन-सी विपत्ति आई है ? चलूं, देखूं

हिषी के मन्दिर में क्या हो रहा है।"

अधीर हो, वह अर्धवस्त्रालंकार पहने ही सखियों-सहित महिषी-न की ओर गिरती-पड़ती चली, पीछे-पीछे सब सखियां, जहां वाता-ण घोर क्रन्दन से कंपित हो रहा था, जहां रथीन्द्र के निधन-समाचार -सहस्र मुखों के हाहाकार के साथ निकल रहे थे। पतिप्राणा साध्वी मला सुन्दरी, दानवराज-नन्दिनी प्राणाधिक पति का निधन सुन न्न लता की भांति मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गई।

४७

रुद्र ने क्रुद्ध निःश्वास छोड़कर कहा—"हेमवती प्रिये, तूने यह क्या कृत्य कर डाला? मेरे अनुगत किंकर रावण और प्रिय रावणि का हित करने को दिव्यास्त्र दे दिए। अब रावण क्या समझेगा? महा-न बाण सुनेगा तो क्या समझेगा भला!"

"महादेव प्रसन्न हों, मुझे देवहित प्रिय है। देवेन्द्र ने शची-सहित ास में आकर मेरी स्तुति की। आपको भी तो देव प्रिय हैं। रावण र उसके पुत्र पर आपका अनुग्रह है, यह तो ठीक है, परन्तु क्या देव ल का पराभव आपको अभीष्ट है?"

"अरी शैलजा, तू इन देवों के पतित जीवन को देखती नहीं क्या? रन्तर सोमपान कर मत्त हो अप्सराओं के नृत्य-गान, भोग-संभोग व्यस्त रहते हैं। आत्मसुख ही उनका चरम ध्येय है। इनसे भला भी नृलोक की भलाई हो सकती है?"

"रावण ही विश्व की कौन-सी भलाई कर रहा है? उसकी -संस्कृति से आप सहमत हों, मैं नहीं हूं। क्यों भला वह देव-दैत्य नव-दानव सबकी संस्कृतियों को आक्रांत करता है? रक्त की द्धि मुझे मान्य है। मैं वंश-परम्परा पर श्रद्धा रखती हूं। आर्यों ने पितृ-संज्ञा स्थापित की है, विवाह-मर्यादा बांधी है, सौर-चन्द्र डल स्थापित किए हैं, यज्ञविधि वेद-विहित की है, कृषि, वाणिज्य, ज्य-स्थापना, राज्य-व्यवस्था की जो मर्यादाएं बांधी हैं—उन्हींने नृवंश में सभ्यता और नीति की मर्यादित संस्कृति स्थापित की है। गर्जा रावण ने ऐसा किया है? वह दुरन्त तो अपने परशु ही को सर्वो-रोदरे समझता है। युद्ध ही से सब बातों का निर्णय करता है। विचार-वना उसमें कहां है? जन, जनपद-रक्षण वह कहां कर रहा है? प उसपर प्रसन्न हैं, मैं नहीं हूं। फिर वह पतित परस्त्री को बलात्

हरण करता है, यह तो अत्यन्त अमर्यादित है, असह्य है, गर्हित
कैसे आप देव-कुलपूज्य देवाधिदेव उसके एक दुष्कृत्य का सम
करते हैं ?''

''देवगण ही कौन-सा सुकृत कर रहे हैं ! इस पतित देवेन्द्र ही
ले लो । इसने माता को मारा, पिता की हत्या की, यतियों को
को खिला दिया, चोरी की, भ्रूण-हत्या की, वृत्र और विश्वरूप
छल से वध किया । इसके अनाचारों का कुछ ठिकाना है ? ब्राचीन
की शह पाकर इस दुरात्मा ने महात्मा बलि को बांध सारा दैत्यादित
साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया । अब ये देव कौन-सा सुकर्म
कर रहे हैं ? यह धूर्त वामदेव नारद, अरे, इलावर्त का वही भुशुंडी
ऋषि, जिसे मैंने कैलास में आने की मनाही कर दी है केवल मधु
सोम के लालच में उस पातकी इन्द्र की स्तुति में ऋचाएं रच रहा है

''परन्तु ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने भी तो इन्द्र की स्तुति में ऋचाएं
थीं । वे भी तो उसका स्तुति-गान करते हैं !''

''दासों के आश्रित हैं ना, इसीसे । दिवोदास और सुदास
देवेन्द्र और देवों का अनुग्रह हो, यही तो उनका ध्येय था । सो
हुआ तो उसे छोड़-छाड़ आर्यावर्त में चले आए । मित्रावरुण है,
जान सूर्यवंशियों ने उसे पुरोहित बना लिया है, परन्तु मैं तो देवेन्द्र
चर्चा कर रहा हूं ।''

''वह तो देवाधिदेव की स्तुति करता अघाता नहीं है ।''

''तो इससे क्या मैं उसके पातकों पर दृष्टि नहीं दूंगा ? वि
ही को लो, वह दासों का मित्र था; पर जब इन्द्र ने दासों के नेता
पर पंचसिन्धु में आक्रमण कर उनके दोनों अवध्य नगर हरिपायु
महेन्द्रद्वार ध्वस्त किए, तब विष्णु ने क्या दासों की मदद की ?
देखता रहा । सो केवल इसी इन्द्र के कहने से । उसने स्पष्ट कह दिया
'वृत्रमिन्द्रो हनिष्यत्सख विष्णो वितर विक्रमस्व ।' उस समय इल
और सुषा प्रान्तों में आदित्यों का प्राबल्य होने से विष्णु की ही च
थी । दासों का पराभव कर, उनकी उच्च संस्कृति का विध्वंस कर,
चालीस वर्ष तक संग्राम कर, इस पतित चोर ने उनका ध्वंस किया
अपने परम हितैषी वज्रनिर्माता त्वष्ट्रा के पुत्र त्रिशीर्ष विश्वरूप
विश्वासघात करके मार डाला, तब उस ब्रह्मा का किसीने क्या
लिया ? उलटे त्रसदस्यु, पुरुकुत्स ने सहायता देकर इन्द्र का सार्व
राज्य स्थापित करा दिया । यदि मैं महातेज बाण को सहायता
देता तो दैत्यों का तो वंश ही नष्ट हो जाता ।''

"सो देव-सान्निध्य में महातेज बाण सम्पन्न तो है !"

"इसी प्रकार रावण भी संपन्न रहे। अब ये ही तो दो समर्थ वंश रह गए, जो प्राचीन नृवंशों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीसे मैं उनपर सदय हूं। रावण जो आर्य-अनार्य का भेद मिटाकर समूचे नृवंश की एक वैदिक संस्कृति स्थापित करना चाहता है, सो बुरा क्या है ? या पृथ्वी के स्वामी ये आदित्य ही रहेंगे ? दैत्य-दानवों का, नागों का, प्राचीन वंश ही नष्ट हो जाएगा ? मैं कदापि ऐसा न होने दूंगा। आदित्यों ने इलावर्त में देवलोक स्थापित कर लिया और भारतवर्ष आर्यावर्त। अब वे समूचे भारतवर्ष ही को आर्यावर्त बनाना चाहते हैं। जानती हो, अगस्त्य ने दण्डकारण्य में उपनिवेश स्थापित किया है। आर्यावर्त के बहिष्कृत आर्य वहां आ-आकर उसे सम्पन्न कर रहे हैं।"

"तो देव, इसमें हानि क्या है ? आर्यों की संस्कृति व्यवस्थित है, मर्यादित है ?"

"पर वही वैदिक संस्कृति नहीं कही जा सकती। वेद की ऋचाएं केवल आर्यों ही ने नहीं रची हैं। उसमें दासों और एलों का भी उतना ही भाग है, जितना कि आर्यों का। इन्द्र ने दासों पर आधिपत्य जमाकर उनकी महिदेव की परम्परा भंग कर दी। दासों के राज्य में शासन और यजन महिदेव करते थे। इन्द्र ने इस व्यवस्था को भंग कर दिया। अतियों ने उसका विरोध किया तो उन्हें मरवाकर उनका मांस कुत्तों को खिला दिया और सर्वत्र अपनी पूजा प्रचलित की।"

"परन्तु राक्षसों की संस्कृति में तो नरमांस-भक्षण का प्रचलन है !"

"यज्ञ-बलि का प्रचलन तो इसी इन्द्र ने दास-पराभव के बाद किया था। नर-बलि का भी दायित्व उसीपर है। रावण ने तो बाह्य परम्पराओं को सम्मिलित कर सबका समन्वय किया है। उसने कोई नई परम्परा तो नहीं स्थापित की !"

"आप देवाधिदेव हैं, देव-दैत्यपूजित हैं, फिर आप देवराट् पर सदय क्यों नहीं हैं ? देवों का हित-अहित क्यों नहीं विचारते हैं ?"

"मैं तो सभीपर समभाव रखता हूं। कहो, क्या देवेन्द्र की भांति रावण ने अथवा मेरे प्रिय शिष्य रावणि ने भी कोई दुष्कर्म किया है ?"

"यह जानकी-हरण क्या दुष्कर्म नहीं है ?"

"और शूर्पणखा के राज्य में रहकर उसीका बर्बरतापूर्वक अंगच्छेद करना दुष्कर्म नहीं ? कहो तो, शूर्पणखा ने कौन-सा अपराध किया था ? उसने तो वैध स्वयंवर का प्रस्ताव किया था।"

"परन्तु एक स्त्रीव्रती राम ने उस कामचारिणी को स्वीकार नहीं

किया।"

"तो उस महाप्रतिष्ठ वंश की राजपुत्री के प्रस्ताव का उपह क्यों किया ? लक्ष्मण के पास जाने का संकेत क्यों किया ? प्रस्त करने पर लक्ष्मण ने उस राक्षसबाला का अंग-भंग क्यों किया ? यह तो अत्यन्त गर्हित हुआ।"

"पर इसमें सीता का क्या अपराध था ? सीता का हरण हुआ ?"

"मैं तो उसका अनुमोदन नहीं करता। पर रावण को इसके दोषी भी नहीं मानता।"

"तो देव, दाशरथि राम भी महावंशोद्भव है, वह मानवेन्द्र सीता के लिए उसका लंका पर अभियान न्याय्य ही है।"

"सो वह और रावण परस्पर निबटें। देवी ने क्यों उसपर अनु किया ?"

"केवल देवेन्द्र के अनुरोध से और सीता का दुःख समझकर।"

"जिससे वह कपटी देवेन्द्र अकंटक हो देवों-सहित आनन्द से सो पान करे, यौवनोन्मत्त अप्सराओं के नृत्य-गीत में मस्त रहे, आर्यों यज्ञभाग का भोग करे और मनमाने दुष्कर्म करे ?"

"देव, प्रसन्न हों, सोमपान तो देवाधिदेव भी करते हैं। वह वि सोम ला रही है, स्वर्णकलश में भरे, ऊनी छन्नों में छानकर।"

रुद्र ने हंसकर उमा की ओर देखा। विजया ने सोम-पात्र उ सम्मुख रखा। उमा ने पात्र में सोम लेकर धूर्जटि को देते हुए कहा "उस दास सोमपायी देवेन्द्र पर अब तो देवाधिदेव का अनुग्रह हो ही चाहिए।"

धूर्जटि ने सोमपान करते हुए कहा—"प्रिये, जिसे तेरा अनु प्राप्त है, उसे किसका भय है ! तू देवेन्द्र और दाशरथि पर सदय तो रह। पर मैं रावण पर कृपा करूंगा। मैं अभी लंका जाऊंगा।

इतना कह, और एक पात्र सोमपान कर, वृषभध्वज कैलासी अ विकट शूल उठाकर चल दिए।

उमा क्षण-भर स्तब्ध रहीं, फिर उन्होंने कुमार कार्तिक को बु कर कहा—"पुत्र, तू मेरी आज्ञा से दैवकार्य कर। देवेन्द्र के अनु से मैं उसपर सदय हुई थी। मैंने दाशरथि राम को दिव्यास्त्र दे थे, जिनसे वह महाबलि दुर्जय रावणि का हनन कर सके। अब कैं

स्वयं रावण पर अनुग्रह कर शूलपाणि हो लंका गए हैं। वत्स, तू अभी देवलोक जाकर इन्द्र को इस देवाश्रय से सावधान कर दे। देवेन्द्र से कह कि पुत्र के मरने पर रावण रुद्र का आश्रय पाकर, पुत्रशोक-विदग्ध, समर में प्रलयाग्नि प्रज्वलित कर देगा। देवेन्द्र स्वयं रुद्र, मरुत्, यक्ष और आदित्यों को साथ ले समर-भूमि में दाशरथि की सहायता करे। यदि देवेन्द्र अनुरोध करे, तो पुत्र, तू भी उसके साथ जा। मैं दाशरथि राम की विजय की इच्छुक हूं।"

कुमार ने हंसकर उमा को प्रणाम किया और कहा—"अम्ब, यह दास आपकी आज्ञा के अधीन है। जैसा आपका आदेश है, मैं वही करूंगा। मैं दाशरथि राम और देवेन्द्र पुरन्दर की प्रीति के लिए अभी सुरलोक जाता हूं। आप प्रसन्न हों!"

४८

सूर्य के समान देदीप्यमान ऐन्द्ररथ अपनी सहस्र स्वर्ण-घण्टिकाओं की रनकार से दिशाओं को ध्वनित करता हुआ राम-कटक में प्रविष्ट हुआ। रथ में अखण्ड ध्वज देख राम-कटक में हर्ष की लहर दौड़ गई। मातुलि ने अश्वों को ललकारते हुए वीर-गर्जना करके कहा—"अरे, वीरध्वजो, आओ, रामभद्र से निवेदन कर दो। दुरन्त दुर्जय रावणि इन्द्रजित् मर गया!"

"दुरन्त रावणि मर गया!"

"दुरन्त रावणि मर गया!"

"दुरन्त रावणि मर गया!"

शत-सहस्र, लक्ष-लक्ष कण्ठों से ये स्वर जय-निनाद के साथ हवा में तैरते हुए वहां पहुंच गए, जहां राघवेन्द्र राम अत्यन्त विकल भाव से शिलाखण्ड पर बैठ—"हा सौमित्र, हा सौमित्र' कह रहे थे। जय-निनाद के साथ विजय दुन्दुभि भी बज उठी। हर्षातिरेक से उदग्र हो राम ने कहा—"क्या कहा, क्या कहा? सौमित्रि आ गए? कहां हैं सौमित्रि? वे सकुशल तो हैं? अरे, वे अक्षत तो हैं?"

शत-सहस्र वानर भटों ने कहा—

"रावणि दुरन्त मर गया!"

"देवताओं का त्रास मर गया!!"

"मृत्युञ्जय मेघनाद मर गया!"

राम ने कांपते हुए दोनों हाथ उठाकर अश्रुओं से धुंधली आंखों

से सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवन्त और अंगद को देखकर कहा—"क्या यह स्वप्न है या सत्य है? दुरन्त दुर्जय इन्द्रजित्……?"

'मर गया! मर गया!!" शत-सहस्र कण्ठों ने कहा। राम ने देखा—स्वर्ण के समान तेजवान् इन्द्र का दिव्य रथ अखण्ड ध्वजा फहराता, सहस्र-घंटियों को रणकारता आकर रुक गया। विभीषण और सौमित्रि रक्त में लथपथ रथ से उतरकर राघवेन्द्र की ओर चले। राम ने दोनों हाथ फैलाकर दौड़ते हुए कहा—"यह मैं क्या सुन रहा हूं? वीर, क्या अघट घटना हो गई? तेरे शरीर से झर-झर रक्त झर रहा है। रक्षपति मित्र विभीषण का शूल भी टूटा हुआ है। अवश्य ही तुमने कठिन युद्ध किया।"

लक्ष्मण ने राम की परिक्रमा कर राघव के चरणों पर मेघनाद का कटा हुआ सिर रख दिया। उन्होंने कहा—"हे रघुकुलमणि, इन चरणों के प्रताप से यह दास जयी हुआ। दुर्जय मेघनाद मारा गया। विषधर फणी को कुचल दिया गया। देव अब निर्भय हुए। रघुकुल की लाज रह गई।"

राम ने रोते हुए, लज्जावन्त लक्ष्मण को छाती से लगाकर बारम्बार उसका सिर सूंघते और गाढ़ालिंगन करते हुए कहा—"धन्य वीर धन्य, धन्य सौमित्रि धन्य, तेरी जननी सुमित्रा धन्य, तेरे कारण मैं तेरा ज्येष्ठ भ्राता भी धन्य हुआ। तेरा यश अमर रहेगा।"

राम ने फिर विभीषण को अंक-पाश में बांधकर कहा—"साधु रक्षेन्द्र, असुकर कर्म कीर्तिवर्हिनं कृतम्। तुष्टोऽस्मि। रावणेहि विनाशेन जितमित्युपधारयामि।"

सहसा लंका सिंहनाद से हिल उठी। राम ने आतंकित होकर कहा—"अरे, यह क्या हुआ? क्या प्रलय होने वाली है? यह प्रलयनाद कैसा है? यह क्षण-क्षण में बिना अभ्र के विद्युत् कैसी चमक रही है? लंका जैसे भूकम्प से बारम्बार कांप रही है। घनी धूल के बादल उड़-उड़कर सूर्य को ढांप रहे हैं।"

विभीषण ने भय से पाण्डुमुख होकर कहा—रघुमणि, राक्षसपति रावण पुत्रशोक से भस्म हो रहा है। वह युद्ध-साज सज रहा है। वीरों के पद-भार से पृथ्वी कांप रही है। यह राक्षस सैन्य गरज रही है। अब कैसे इस विकट संकट से बन्धु लक्ष्मण और कटक की रक्षा होगी? वह देखिए—राक्षस गुल्मपति प्रलयनाद की भांति शृंगीनाद कर रहे हैं। अग्नि-वर्णवाले स्वर्ण-ध्वज रथ निर्घोष करते हुए बाहर आ रहे हैं। चतुरंगिणी सेनाओं के व्यूह सज रहे हैं। लंका के वीर इस प्रकार

शस्त्रपाणि हो लंका से निकल रहे हैं, जैसे बांबी से काला सर्प निकलता है। उग्र उदग्र रथियों का सेनानायक है। वज्रपाणि इन्द्र के समान पराक्रमी वास्कल गजसेना का नायक है। महावीर अतिलोमा अश्वारोहियों का नायक है। भीमाकृति विडालाक्ष पादातिकों का अधिपति है। महादुर्मद दुर्मद पताकावाहक है महाराज, यह उग्रचण्डा राक्षससेना लंका में युद्ध-सन्नद्ध हो रही है। अब हमें भी तत्परता से तैयार हो जाना चाहिए। आज प्रलय-युद्ध में जगज्जयी जगदीश्वर राक्षसेन्द्र रावण का आपको साम्मुख्य करना है।"

राम ने चिन्ताकुल होकर कहा—"तो मित्र, शीघ्र ही सब सेनानायकों को यहां बुला लाओ। अब इस दास की रक्षा देव ही करेंगे।" विभीषण ने ज़ोर से शृंगी-नाद किया। अंगद, नील, हनुमान, जाम्बवन्त, गयंद, गवाक्ष, सुग्रीव, आदि सब वानर सैन्य सेनानी, गुल्मपति आ-आकर राम को घेरकर बैठ गए।

राम ने कहा—"वीरगण, आज रावण पुत्र-शोक-विह्वल हो कालसमर करेगा। तुम सब त्रिभुवनजयी शूर हो। युद्ध-साज सज इस विपद् में राम की रक्षा करो! मित्रो, अब तो लंका में एक रावण ही रथी बचा है। तुम्हींने अपने बाहुबल से समुद्र को बांधा है। तुम्हींने अमितविक्रम कुम्भकर्ण का वध किया। तुम्हारे ही प्रताप से अजेय मेघनाद मारा गया। हाय! रघु वधू अब भी रावण के कारागार में बन्द है। वीरो, अब रावण को मार उसका उद्धार कर मेरे कुल और मान की रक्षा करो।"

राम की आंखों में आंसू भर आए। सुग्रीव ने राम की आंखों में आंसू देखकर कहा—"रघुमणि, मैं आप ही के प्रताप से राजसुख भोग रहा हूं। सो महाराज, आज या तो मैं रावण को मारूंगा या स्वयं मरूंगा। आप चिन्ता क्यों करते हैं?"

सहस्र-सहस्र उल्कापात की भांति वज्रध्वनि सुन सारी वानर-सैन्य स्तब्ध हो गई। राम ने व्यग्र भाव से पूछा—"अब यह कौन-सी नई विपत्ति आई? अरे वीरेन्द्रो, शस्त्र ले-लेकर सन्नद्ध हो जाओ!"

इसपर मातुलि ने हंसकर कहा—"दाशरथि, प्रसन्न हों। आपकी सहायता के लिए स्वयं वज्रपाणि देवेन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ हो आए हैं। उनके साथ कुमार कार्तिक, सहदेव, सब रुद्र, मरुत्, आदित्य और गरुड़ हैं।"

राम ने ससम्भ्रम कहा—"हे राक्षसराज विभीषण, हे वानरेन्द्र सुग्रीव, चलो, आगे बढ़कर देवेन्द्र की अभ्यर्थना करें। अर्घ्य-पाद्य से

उन्हें सत्कृत करें।"

राम, लक्ष्मण और सब वानर-यूथपति सेनापतियों ने सुग्रीव और विभीषण को संग लेकर देवेन्द्र और कुमार कार्तिकेय का अर्घ्य-पाद्य से सत्कार कर उनकी पूजा की। फिर राम-लक्ष्मण ने बद्धांजलि हो देवेन्द्र कुमार की परिक्रमा कर कहा—

"अपने पूर्व पुरुषों के सुकृत से इस दास को इस विपत्ति में देव-पदाश्रय प्राप्त हुआ है। इससे मेरा कुल प्रतिष्ठित हुआ। मैं धन्य हुआ!"

देवेन्द्र ने हंसकर कहा— 'हे रघुमणि, तुम देवप्रिय हो, अब रथ पर रणसज्जा से सजकर बैठो। आज जगज्जयी रावण काल-समर करेगा। उसमें मैं मरुतों और देव-सैन्य सहित तुम्हारे पृष्ठ की और कुमार सब रुद्रों सहित तुम्हारे अग्रभाग की रक्षा करेंगे।"

वानर-सैन्य ने जय-निनाद से गगनमण्डल को कंपायमान कर दिया। जुझाऊ बाजे बजने लगे। समस्त वानर-सैन्य व्यूहबद्ध खड़ी हो गई।

ज्वालामुखी के लावे के समान ज्वलन्त प्रवाह की भांति राक्षस-सैन्य लंका के सिंहद्वार से बाहर निकली—हजारों दुन्दुभियां गड़गड़ाती, शंख-शृंगी-नाद करती, जयध्वनि से मेदिनी को कंपाती, हय-दल के पदाघात से उड़ी धूल से सूर्यमण्डल को अन्धावृत करती हुई—प्रलय-ज्वाला-सी, मृत्यु की कराल जिह्वा-सी।

राम ने असंयत होकर विभीषण से कहा—"हे लंकेश्वर, यह प्रलय-मेघ के समान प्रचण्ड राक्षस सैन्य आ रही है। पुत्रशोक-दग्ध रावण इस प्रचण्ड सेना में कौन-सा है, इस वीरवाहिनी के नायक कौन-कौन हैं, सो अनुग्रह करके मुझे बताओ।"

विभीषण ने कहा—"राघव, कटक के आगे-आगे बाल रवि के समान जो तेजस्वी पुरुष स्वर्णखचित पर्वत के समान दिग्गज हाथी पर आ रहा है, वह धीरवीर मातुलि अकम्पन है, जो लंका का प्रधानमंत्री है। इसके पीछे सिंह की ध्वजावाले रथ पर आरूढ़ नील मेघ के समान अतिरथी महोदर है। स्वर्ण के साजों से सज्जित चपल अश्व पर जो योद्धा भारी शूल लेकर चल रहा है, वह वज्र है। इसके वाम पार्श्व पर काले अश्व पर सवार त्रिशूलधारी त्रिशिरा है। मेघ के समान स्वरूप वाला, विशाल हाथी पर धनुष-बाण लिए कुम्भ चल रहा है और उसके

पीछे स्वर्णरथ पर जो सहस्रों घंटियां बजाता आ रहा है, वह अपराजेय निकुम्भ महारथ हैं। उसके दायें भाग में अश्व पर सवार अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, जो धनुष-बाण लिए है, नरान्तक है। धनुर्धरों में अग्रगण्य और भयंकर भूतों से परावृत, रत्नजटित रथारूढ़, मंत्रियों और सेनानायकों से रक्षित, पर्वत के समान अचल, वन्दीजन-वन्दित, जिसके मुकुट-मणि धूप में रवि-रश्मि की भांति देदीप्यमान हैं, और जिसके मस्तक पर चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र लगा है, वह रक्षपति महिदेव जगज्जयी रावण है।"

राम ने कहा—"राक्षसराज रावण का तेज तो अपरिसीम है। इसकी अंग-सुषमा देवताओं से भी अधिक शोभायमान है, और इसके पार्षद भी बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं। कौन कहता है कि लंका वीरों से शून्य हो गई है!"

"राघव, जिस प्रकार महातेज रावण इस भयानक आकृति वाले भूतों से घिरा है, उसी प्रकार इसकी अन्तरात्मा भी कलुषित है। यही कारण उसके प्रबल पराक्रम के भंग होने का है।"

राम ने वानर-कटक के व्यूह पर एक विहंगम दृष्टि डाली। दोनों सैन्य परस्पर निकट होने लगीं। दोनों सैन्य वीर-दर्प से गरज रही थीं। राम अविचल भाव से व्यूह में खड़े थे। उनके पीछे लक्ष्मण, हनुमान, जाम्बवन्त और विभीषण थे। इसी क्षण सुग्रीव दुर्धर्ष वेग से उछलकर रावण के व्यूह में घुस गया और अपनी वज्रगदा घुमाते हुए रावण के निकट पहुंच, फुर्ती से धनुष की नोक से रावण के मस्तक पर से मुकुट गिरा दिया। राक्षस सैन्य ने इस हस्तलाघव को लक्ष्य नहीं किया। सुग्रीव ने ललकारकर कहा—"अरे राक्षसों के स्वामी, यह वानरों का राजा सुग्रीव तेरे मस्तक पर चरण रखकर यहां उपस्थित है। कह, क्या तू श्री राम की चरण-शरण आता है?"

रावण ने क्रोधावेशित होकर कहा—"अरे सुग्रीव, ठहर, तुझे अभी अग्रीव करता हूं।" इतना कह उसने झपटकर सुग्रीव को पकड़कर भुजाओं में मसल डाला। परन्तु सुग्रीव ने उसके चंगुल से निकल-कर रावण को रथ से खींच लिया। फिर कूदकर उसके वक्ष पर लात मारी। रावण ने सुग्रीव का पैर पकड़ उसे सिर से ऊपर घुमाकर दूर फेंक दिया। इतने में सहस्रों राक्षस शस्त्र ले-ले सुग्रीव पर टूट पड़े। सुग्रीव पर यह महासंकट आया देख वानर-सैन्य में आतंक फैल गया। राम का संकेत पा तुरन्त ही जाम्बवान, हनुमान, अंगद, नल, नील, गयन्द गुल्मपति राक्षसों को चीरते हुए वानरेन्द्र के निकट

जा पहुंचे और उसे घेर अपने कटक में ले आए। राम ने सुग्रीव को छाती से लगाकर कहा—"वीरशिरोमणि, तूने यह कैसा दुस्साहस किया, मुझसे बिना ही परामर्श किए? राजा को ऐसा साहस नहीं करना चाहिए। भविष्य में ऐसा न करना। तेरे विपत्ति में पड़ जाने से तो मैं सिद्धि से विमुख हो जाऊंगा। यद्यपि तेरा बल अप्रमेय है, फिर भी तुझे प्राण-संकट हो जाता तो तेरे अभाव में स्वयं मैं भी जीवित न रहता।"

सुग्रीव ने लज्जित होकर कहा—"राघव, दुरात्मा रावण को सम्मुख देख, मैं संयत न रह सका।"

इसी क्षण दोनों सेनाएं आमने-सामने आ गईं। राक्षस-सैन्य ने पर्वत के समान अचल वानर-सैन्य को देखा। वानरों ने काल-मेघ के समान राक्षस-सैन्य को देखा। दोनों सेनाओं के तुमुल नाद से पृथ्वी कांपने लगी। काल सर्प के समान बाण छूटने लगे। उन्होंने आकाश-मण्डल को छा लिया। दोनों ओर से भट खड्ग-शैल-शक्ति-शूल ले-लेकर एक-दूसरे पर पिल पड़े। एक मुहूर्त के भीतर ही रणभूमि रक्त से भर गई। मित्र-शत्रु का भेद भी न रहा। वीरों से वीर परस्पर गुंथकर लड़ने लगे। अंगद मृत्यु के समान वेग से गिरिश्रृंग के समान विशाल गदा लेकर नरांतक पर पिल पड़ा। दोनों में घनघोर गदायुद्ध हुआ। अन्त में गदा का करारा घाव खाकर रक्त-वमन करता हुआ नरान्तक भूमि पर गिर गया।

नरान्तक को मरते देख महोदर ने धनुष-टंकार करते हुए अपना रथ आगे बढ़ाया। त्रिशिरा भी शूल हाथ में ले उसके पार्श्व में चला। उसके साथ ही वज्र भी। इन तीनों महारथियों को आता देख हनुमान हुंकार करते आगे आए। महोदर ने मारुति को बाणों से ढांप लिया, परन्तु मारुति ने हठपूर्वक आगे बढ़ गदा में उसके घोड़ों और सारथि को मार उसका शिर चूर्ण कर दिया। महोदर को रथ से गिरते देख क्रोध से फुफकारता हुआ त्रिशिरा महाकाल के समान शूल ले हनुमान पर टूट पड़ा। मुहूर्त-भर हनुमान और त्रिशिरा में लोमहर्षक युद्ध हुआ। अन्त में मारुति ने उसे अश्व से गिराकर उसका शिर चूर्ण कर दिया। तब कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ राक्षसों के गुल्मों को साथ लेकर प्रचण्ड युद्ध करने लगे। वानरेन्द्रों ने उच्च निनाद करते हुए इन राक्षस वीरों से तुमुल संग्राम किया। कालभैरव की भांति वे परस्पर एक-दूसरे को मार-मारकर भूमि पर ढेर करने लगे। वे ले-ले, दे-दे की हुंकृति कर निर्दय वार करने लगे। कुम्भ ने अमित विक्रम प्रकट

किया। उसने अंगद को बाणों से बींधकर व्याकुल कर दिया। तब सुग्रीव ने कनक-भूषण तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके उसके उदर को चीर डाला। वह घोर नाद करता हुआ भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा। निकुम्भ ने भाई को इस प्रकार गिरता देखा तो वह क्रोध से जलता हुआ भयंकर विशाल परिघ लेकर सुग्रीव पर टूट पड़ा। उस भीम परिघ की मार से सुग्रीव झूमकर धरती सूंघने लगा। तब बली मारुति भयंकर सिंहनाद कर अपनी गदा घुमाते निकुम्भ पर झपटे। दोनों ने एक ही काल में एक-दूसरे की छाती पर गदा-प्रहार किया। निकुम्भ का वर्म फट गया और उसकी छाती से खून की धार बह चली। तब मारुति ने उसे पृथ्वी पर गिराकर पैरों से रूंध डाला। इस प्रकार निकुम्भ को मरते देख अकम्पन ने रथ आगे बढ़ाया। ऋक्षराज जाम्बवन्त ने अकम्पन से विकट समर किया। दोनों महारथियों के द्वन्द्व को दोनों सैन्यों के भट चकित होकर देखने लगे। सहसा ऋक्षराज ने अकम्पन का सर शिरस्त्राण-सहित काट डाला। यह देख वानर गर्जना करने लगे। राम-कटक में दुन्दुभि बज उठी। इस हर्षनाद से अधीर रावण उदग्र हो समरांगण में आगे बढ़ा।

अपने महारथियों का इस प्रकार विनाश होते देख रावण ने अमर्ष में भरकर सारथि से कहा—"अरे, आज पुत्र इन्द्रजित् के हत हो जाने पर इन्द्र लंका में आया है। तनिक देख तो, वह किधर है? हमारा रथ वहां ले चल।"

सारथि ने वायुवेगी रथ आगे बढ़ाया। रावण मायास्त्रों को चलाता, इन्द्र के व्यूह को छिन्न-भिन्न करता हुआ देवेन्द्र की ओर बढ़ता चला गया। हठात् कुमार कार्तिकेय ने अग्निरथ में बैठकर रावण का मार्ग रोक लिया। कुमार को सम्मुख देख रावण रथ रोक, हाथ जोड़कर बोला—"देवकुमार, यह दास तो भगवान रुद्र का किंकर है। देवाधिदेव ने मुझ रौद्र तेज से सम्पन्न किया है। आपको मैं कैसे वैरी दल के साथ देख रहा हूं? नराधम राम पर आपका इतना अनुग्रह क्यों है? छली सौमित्रि ने अधर्मपूर्वक मेरे पुत्र का निरस्त्र वध कर अपने हीन कुल को कलंकित किया है। आज मैं उस कपटी योद्धा का वध करूंगा। कृपा कर राह छोड़ दीजिए।"

कुमार ने हंसकर कहा—"रक्षपति, आज मैं देवकार्य-रत हूं। तू मुझे युद्ध करके आक्रान्त कर।"

तब रावण ने हुंकार कर, कुमार पर आग्नेयास्त्र छोड़ा। कुमार तिक शरजाल में छिप गए।

इन्द्र ने पुकारकर कहा—"हे शक्तिधर, रावण रौद्र तेज से परिपूर्ण है। देखो, मैं अभी उसका दर्प दलन करता हूं।" इतना कह देवेन्द्र ने सहस्रों गन्धर्वों को रावण पर आग्नेयास्त्र वर्षा करने की आज्ञा दी। रावण ने दुर्धर्ष वेग से दिव्यास्त्र का निवारण कर ऐरावत के मस्तक पर तोमर का प्रहार करते हुए कहा—"अरे निर्लज्ज, तेरी ही कुटिलता से मेरे पुत्र का वध हुआ। अब तूने पुत्र के वध होने पर लंका में आने का साहस किया है। पर आज तू मेरे हाथ से लक्ष्मण की रक्षा नहीं कर सकता।"

इतना कहकर क्रोध से अधीर हो अपना विकराल परशु ले रावण रथ से कूद पड़ा और उसने ऐरावत को परशु की मार से व्यथित कर दिया। ऐरावत भूमि पर गिर गया। तब इन्द्र ने हाथी से कूदकर रावण पर वज्र का प्रहार किया। इसी समय मातुलि इन्द्र का रथ ले आया। रावण भी रथ पर आरूढ़ हुआ। दोनों भयानक महास्त्रों को धनुष पर चढ़ाकर छोड़ने लगे।

इसी क्षण रावण की दृष्टि दूर क्षेत्र में युद्धरत सौमित्रि लक्ष्मण पर पड़ी। वे कभी रथ पर चढ़कर और कभी रथ से उतरकर युद्ध कर रहे थे। लक्ष्मण को देखते ही रावण ने गर्जना की। उसने कहा—"अरे पुरन्दर, देवकुलकलंक, दास, आज मैं तुझसे अब और युद्ध नहीं करूंगा। आज उस कपटी पामर सौमित्रि को मारूंगा। तू इस पृथ्वी पर एक दिन और निर्विघ्न जीवित रह।"

वह भैरव-नाद करता हुआ आगे बढ़ा। यह देख विडालाक्ष का वक्ष चीर मारुति हनुमान रावण के सम्मुख आ गदा घुमाने लगे।

रावण ने अनवरत बाण मारुति पर छोड़कर कहा—"हट रे बर्बर, मार्ग छोड़कर दूर हट!"

"अरे पामर, परदारारत, लोभी, चोर, तनिक ठहर तो!" हनुमान ने गदा घुमाकर रथ पर प्रहार किया। रथचक्र भंग हो गया। इसी समय सुग्रीव भी उदग्र का वध कर वहां आ पहुंचे।

रावण ने घृणा से हंसकर कहा—"अरे, तू भी अपनी भ्रातृवधू तारा को फिर से विधवा करने इसी कुक्षण में मरने को यहां आ पहुंचा! ठहर, अथवा तुझे छोड़ता हूं, हट—मार्ग छोड़ दे। अभी मैं उस पतित सौमित्रि को मारूंगा।"

"अरे अधर्मी, मैं अभी तुझे मारकर मित्र-वधू का उद्धार करता हूं।" सुग्रीव ने वेग से शूल फेंका, साथ ही हनुमान ने गदा का वज्र-प्रहार किया। रावण का रथ भंग हो गया, परन्तु सारथि तुरन्त दूसरा

रथ ले आया। रथ पर चढ़कर रावण ने अनेक-विध मंत्रसिद्ध बाणों से सुग्रीव और हनुमान को वेध डाला। सुग्रीव और हनुमान मूर्छित होकर भूमि पर गिर गए। रावण गर्जन-तर्जन करता हुआ लक्ष्मण के सम्मुख चला। लक्ष्मण को दूर से ही देखकर रावण ने कहा—"अरे अधम सौमित्रि, इतनी देर में तू मुझे मिला। कह, कहां है तेरा रक्षक राम, इन्द्र और कार्तिकेय, भ्रातृहन्ता सुग्रीव, कुल-कलंक विभीषण ? बुला उन सबको अपनी रक्षा करने के लिए। अपनी जननी सुमित्रा को स्मरण कर ले। आज मेरे रसोइए तेरे ही मांस से मेरा भोजन बनाएंगे। आज मैं तेरा हृदय बहिन शूर्पणखा को खाने को दूंगा।"

लक्ष्मण ने धनुष टंकारते हुए कहा—"राक्षसराज, तू पुत्रशोक से अधीर हो रहा है। आ, तुझे अभी तेरे पुत्र के पास पहुंचाकर शोक-रहित करता हूं।"

इतना कह लक्ष्मण ने तीक्ष्ण शरों से रावण का शिरस्त्राण उड़ा दिया। रावण ने भी रणमत्त हो बाण छोड़े। दोनों दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगे। दोनों एक-दूसरे के शस्त्रों को काटते रहे। दोनों युद्ध-विशारद, दोनों महाप्राण, महास्त्रों के प्रयोक्ता, दोनों महारथ क्रुद्ध काल की भांति समरांगण पर छा गए।

अब लक्ष्मण ने सात बाण धनुष पर चढ़ाकर रावण की ध्वजा काट डाली। इसी समय रावण की दृष्टि विभीषण पर पड़ी। उसने तत्काल बिजली की भांति दीप्तिमान महाशक्ति उसपर फेंकी। परन्तु लक्ष्मण ने उसे बीच ही में तीन बाणों से काट डाला। इस प्रकार लक्ष्मण के हाथों विभीषण की रक्षा होते देख रावण क्रोध से सर्प की भांति फुफकारने लगा। उसने कहा—"अरे सौमित्रि, तेरे हस्तलाघव की प्रशंसा करता हूं। तुझमें शक्तिधर कार्तिकेय से भी अधिक सामर्थ्य है। पर आज तू जीवित नहीं बच सकता। ले रे पुत्रघाती मर!"

इतना कह, उसने रौद्र तेज से आपूरित जाज्वल्यमान अष्टघंट भैरव-रव-ज्वलन्त रौद्र शक्ति को क्रोध से कांपते हुए लक्ष्मण पर फेंका। वह शक्ति बिजली की भांति लक्ष्मण की मूर्द्धा में जा लगी। उसके लगते ही लक्ष्मण कटे हुए वृक्ष की भांति झूमते हुए रथ से भूमि पर जा गिरे। वानर-सैन्य हाहाकार करने लगी। यूथ के यूथ वानर योद्धाओं ने लक्ष्मण के शरीर को घेर लिया। राम ने दूर से लक्ष्मण को गिरते देखा तो धनुष फेंक, 'हा सौमित्रि' कहते हुए दौड़ पड़े। रावण बादलों की भांति गर्जना करता हुआ, विजय-दुन्दुभि से देवों और दिशाओं को

कम्पायमान करता हुआ लंका को लौट गया।

उस दिन काल-समर में राम के अतिरिक्त किसी भांति सुग्रीव, कपिध्वज हनुमन्त और रक्षपति विभीषण, देवकुमार कार्तिकेय और वज्रपाणि इन्द्र, ये ही पांच अक्षत बचे थे। विभीषण ने भागीरथ प्रयत्न से घूम-घूमकर सान्त्वना देकर वानरों को एकत्रित किया। वे सब राम के चारों ओर बैठकर विलाप करने लगे।

अंगद, नील, द्विविद, शरभ, जाम्बवान, सुषेण, मैन्द, नील, ज्योतिर्मुख आदि वीर-शिरोमणि शरविद्ध, क्षत-विक्षत भूमि पर अचेत पड़े थे। विभीषण ने पराक्रमी वीर-शिरोमणि सुषेण को सैकड़ों बाणों से विद्ध पड़े सर्प की भांति भारी-भारी सांस लेते देखा। उन्हें चेताकर कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आपका जीवन बच गया!"

"हनुमान तो जीवित हैं?"

"हनुमान अक्षत हैं।"

"बड़ी बात है। यदि हनुमान जीवित हैं, तो सारी ही वानर-सैन्य बच गई समझिए।"

"किन्तु सौमित्रि···"—विभीषण के नेत्रों में जल भर आया, कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

"क्या, नहीं रहे?"

"अभी जीवित हैं, परन्तु मुमूर्षु···"

"तो मुझे आप सौमित्रि के निकट ले चलिए।" सुषेण बड़े कष्ट से उठकर विभीषण के सहारे चलकर वहां आए, जहां रणांगण में सौमित्रि बेसुध पड़े थे। श्रीराम लक्ष्मण के निश्चल, रक्तप्लुत शरीर को बाहुओं में समेटे बैठे थे। उन्होंने अश्रुपूरित नेत्रों से विभीषण को देखकर विलाप करते हुए कहा—"अयं मे भ्राता समरश्लाघी शुभलक्षणो लक्ष्मणः। इमं प्राणैः प्रियतरं वीरं शोणिताद्रं पश्यतः पर्याकुलो मे मनः। यदि भ्राता मे पंचत्वमापन्नः, किं मे प्राणैः सुखेन वा! हा, लज्जतीव मे वीर्यं, भ्रश्यतीव धनुः, व्यवसीदन्ति सायकाः। देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः। तं देशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः। हा, किन्नु राज्यन लक्ष्मणेन विना? कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रा! हा! हा!"

सुषेण ने ध्यान से सौमित्रि को देखकर कहा—

"न-न लक्ष्मीवर्धनो लक्ष्मणः पंचत्वमापन्नः। नास्य वक्त्रं विवर्

तम्, न च श्यामत्वमागतम्। नरशार्दूल ! इमां वैक्लव्यकारिणी बुद्धिं त्यज !"

इतना कह उन्होंने हनुमान की ओर देखा और कहा—

"हे वीर, यह तेरे पराक्रम का काल उपस्थित है। तू पराक्रम कर, महोदय पर्वत पर जा। उसके गंधमादन नामक दक्षिण देवशृंग पर विशल्य-संजीवनी महौषध है। वह रात को प्रज्वलित रहती है। औषध की प्रदीप्ति के कारण वहां कभी रात्रि नहीं होती। वहीं भगवान अग्नि का पुनीत धाम है। उसे तू ला और सौमित्रि सहित वानर यूथपतियों को प्राणदान दे !"

हनुमान ने नेत्रों में जल भरकर राम के चरण छुए, परिक्रमा की।

पवनकुमार हनुमान तुरन्त ही वेग से संजीवनी बूटी लाने को चल दिए और सुग्रीव सहित विभीषण लक्ष्मण तथा अन्य क्षत वानरों की यत्न से रक्षा करने लगे। पीड़ित और व्यथित वानर विषीषण के धैर्य-वचन और संजीवनी बूटी का माहात्म्य सुन आशा और आशंका से अभिभूत हो हनुमन्त का आसरा तकने लगे।

विभीषण चिन्ता करके क्षितिज की ओर निहारने लगे। इसी समय हनुमान संजीवनी बूटी लेकर आ गए। राक्षसेन्द्र ने उन्हें कण्ठ से लगा लिया। सुषेण की यत्न-विधि से विशल्य-संजीवनी द्वारा लक्ष्मण-सहित सभी वानर विशल्य होकर नीरुज हो गए। एक बार फिर आशा और आनन्द की लहर वानर-सैन्य में व्याप गई। राम ने हनुमान को हृदय से लगाकर अश्रुपात किया। वानरेन्द्रों को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सब सोकर जगे हों।

अब सब वानर चैतन्य हो क्रोध और हर्ष में भरकर ज़ोर-ज़ोर से हर्षनाद करने और राक्षसों से बदला लेने की विकट चेष्टाएं करने लगे। सुग्रीव और विभीषण ने भगीरथ प्रयत्न से सब कटक को व्यवस्थित किया। सब राम को घेर भावी युद्ध की योजनाओं पर विचार करने बैठे। वानर-सैन्य में युद्ध के धौंसे बज उठे। उन्होंने फिर लंका के चारों ओर अपने सुदृढ़ मोर्चे बांध लिए।

"सारण, वैरी राम-भर तो शोकातुर रहे। उनके करुण क्रन्दन से लंका की प्राचीर कांप गई, परन्तु अब यह कैसा आनन्दोल्लास आकाश को विदीर्ण कर रहा है ? क्या मूढ़ सौमित्रि फिर जी उठा ?" रावण ने विषण्ण-वदन हो मंत्री सारण से हताश भाव से कहा।

सारण ने बद्धांजलि होकर कहा—"जगदीश्वर, इस माया-संसार में अदृष्ट की माया कौन समझ सकता है ?"

"ठीक है, अदृष्ट प्रबल है। अरे, उस मायावी राम ने अधिराम सागर को अपने कौशल से बांध डाला। जिसकी माया से जल में शिला तैरती है, जो समर में मर-मरकर बारंबार जी उठता है, उसके लिए असाध्य क्या है ? पर इस बार कैसे वह पुत्र-घाती जी उठा ?"

सारण ने खिन्न होकर सिर नीचा करके कहा—"महिदेव, महोदय शैलकूट के गन्धमादन की विशल्य-संजीवनी औषध के प्रभाव से भिषक् सुषेण ने लक्ष्मण सहित सब वानर-यूथपतियों को प्राण-दान दिया है। अब उसी उल्लास में राम कटक आनन्द-नाद कर रहा है।"

"परन्तु यह तो अत्यन्त चमत्कारिक वार्ता है। सूदूर पर्वतराज के अगम शिखर से इतने अल्पकाल में कौन वीर महौषध लाया ?"

"मारुति को छोड़ और कौन यह दुस्सह कार्य कर सकता था ? महाराज, जैसे हिमान्त में भुजंग तेज से पूर्ण हो जाता है, उसी प्रकार दिव्यौषध के प्रभाव से सौमित्रि-सहित सब वानर-कटक ओज से ओत-प्रोत हो रहा है।"

रावण ने विषाद से गहरी सांस छोड़ी। फिर कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—"तूने ठीक कहा सारण, अदृष्ट ही प्रबल है। मैंने सम्मुख समर में देव-मनुष्य सभीको परास्त कर कल जिस-जिस रिपु का वध किया, वह फिर जी उठा ! वह फिर भी जी उठेगा ! मृत्यु ने अपना धर्म भुला दिया। अब पराक्रम किस काम का ? मैं समझ गया, राक्षस-कुल का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया। अरे, शूलीसम भाई कुम्भकर्ण और अजेय इन्द्रजित् भी जब काल-कवलित हो गए, तब अब मेरा प्राणधारण वृथा है।" इतना कह रावण शोक-सागर में डूबकर बैठा रह गया। सारण के मुंह से भी बात नहीं निकली। रावण ने फिर डूबते स्वर में कहा—

"जा सारण, तू बैरी राम से जाकर कह कि जगदीश्वर रावण वैरी राम से यह भिक्षा मांगता है कि वह सात दिन तक वैरी-भाव त्याग-कर सैन्य-सहित विश्राम करे। राजा अपने पुत्र की अन्त्येष्टि-क्रिया यथाविधि करना चाहता है। तू जाकर उससे कहना—'हे वीर, तेरे बाहुबल से वीरयोनि लंका अब वीरशून्या हो गई है। तू वार-कुल में धन्य है, अदृष्ट तेरे अनुकूल है और रक्षकुल विपत्ति में है, सो तू वीरधर्म का पालन कर।' जा सारण, अब तू विलम्ब न कर।"

बालिसुत अंगद ने आकर राम की सेवा में विनय की—

"देव ! जगदीश्वर, जगज्जयी, महिदेव पौलस्त्य रावण का मंत्रि-प्रवर सारण समस्त मंत्रियों एवं प्रमुख राज-सभासदों के साथ शिविर-द्वार पर उपस्थित होकर चरण-दर्शन की प्रार्थना करता है। जैसी आज्ञा हो, यह दास जाकर उसे विज्ञापित करे।"

राम ने ससंभ्रम कहा—"युवराज, मंत्रिप्रवर को आदर-सहित यहां ले आ।"

सारण ने सम्मुख आकर बद्धांजलि निवेदन किया—

"राजपदयुगल की मैं तथा ये राज-सभासद् और सचिव वन्दना करते हैं।"

राम ने आसन देकर कहा—"राक्षस-मंत्रिवर, यह दरिद्र राम तुम्हारे स्वामी की क्या सेवा कर सकता है ?"

सारण ने कहा—"देव, राक्षसकुलपति मेरे स्वामी ने आपसे यह भिक्षा मांगी है कि आज से सात दिन तक आप वैर-भाव त्यागकर सैन्य-सहित विश्राम कीजिए। राजा अपने पुत्र की सत्क्रिया यथाविधि करना चाहता है। वीर सदैव ही शत्रु का सत्कार किया करते हैं। महाराज, आपके बाहुबल से वीरयोनि स्वर्ण-लंका अब वीर-शून्या हो गई है। अदृष्ट आपके अनुकूल है और राक्षसकुल विपत्ति-ग्रस्त है। इसलिए आप शत्रु का मनोरथ पूरा कीजिए।"

"मंत्रिवर, तुम्हारा स्वामी मेरा परमशत्रु है। फिर भी मैं उसके दुःख से दुःखी हूं। विपद् में शत्रु-मित्र मेरे लिए समान हैं। तुम लंका को लौट जाओ। मैं सैन्य-सहित सात दिन तक अस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा।" राम ने शालीनता से उत्तर दिया।

मंत्री ने कहा—"रघुमणि, आप धन्य हैं ! हे महामते, आपको ऐसा ही उचित है। कुक्षण में जगज्जयी का आपसे वैर हुआ, अदृष्ट है।"

इतना कह, राम की प्रदक्षिणा कर, राक्षस-मंत्री सारण ने सब मंत्रियों और सभासदों के साथ राम-लक्ष्मण की वन्दना की और चला गया। सात वानर-गुल्मपतियों ने कटक-द्वार पर जाकर राक्षस-मंत्री को ससम्मान विदा किया।

राम ने वानर गुल्मनायकों से कहा—"वीरगण, अब आप भी वीर-वेश त्याग सात दिन विश्राम कीजिए। परन्तु मित्रवर विभीषण और सुग्रीव को इस सुयोग में समस्त सेना का निरीक्षण करके उसे भली भांति व्यूहबद्ध कर लेना चाहिए। सात दिन बाद पुत्र-शोक-दग्ध रावण प्राणों पर खेलकर काल की भांति हमपर टूटेगा। युवराज

अंगद, तू एक सहस्र योद्धाओं को लेकर मित्र-भाव से राक्षसराज के निकट समुद्र-तट पर जा। सावधान रह वीर, मन में शत्रु-मित्र का विचार न करना। सौमित्रि को इस भय से नहीं भेजता हूं कि कदाचित् रावण को उन्हें देखते ही रोष आ जाए। इससे तू ही जा। तेरे प्रतापी पिता ने एक बार रावण को पराजित् किया था, अब तू इस शिष्टाचार से उसे सन्तुष्ट कर।"

अंगद ने स्वीकार किया। सुग्रीव ने कहा—"राघव, राक्षस रावण अब हततेज हो गया है, उसका अन्त निकट है, तथापि हम अब कटक को पूर्ण व्यवस्थित कर लेंगे।"

लंका का पश्चिमी द्वार वज्र-निनाद से खुला। एक लाख राक्षस स्वर्णदण्ड हाथ में लिए बाहर आए। प्रत्येक के हाथ में रेशमी पताका थी। वे राजपथ के दोनों ओर पंक्तिबद्ध चलने लगे। सबसे आगे हाथियों की पीठ पर दुन्दुभि थी। मेघ-गर्जना के समान उनका गम्भीर रव दिगन्त में व्याप्त हो रहा था। उनके पीछे पैदल सेना की कतारें बढ़ीं। उनके पीछे घोड़े और हाथियों पर धनुर्धर। शोकध्वनि में करुण वाद्य बज रहे थे। असंख्य राक्षस वीर स्वर्णवर्म पहने, स्वर्णध्वज लिए, भारी-भारी खड्ग कमर में लटकाए, सिर नीचा किए, शस्त्रों को पृथ्वी पर टेकते हुए आगे बढ़े जा रहे थे।

इनके पीछे दानवपुत्री सुन्दरी सुलोचना प्रमिला काले घोड़े पर वीर-वेश में सवार आई। पीछे किंकरी चमर डुला रही थी। उसके पीछे एक सहस्र चेटी, दासी, किंकरी, पार्श्विका, पैदल, अश्रु बहाती नंगे पैर काले वेश में चलीं। दासियां कौड़ियां और खीलें फेंकती जा रही थीं। गायकी करुण गीत गाती जाती थी।

सागर-तीर पर, जहां अनन्त नील नीर के इस ओर दूर तक स्वर्ण-बालुका का समतल मैदान सूर्य की धूप में चमक रहा था, वहां महती चिता रची गई। उसमें मनों चन्दन, अगरु और गन्ध-पलाश के ढेर लगे थे। राक्षस वीर नंगी तलवारें ले पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। पुरोहित वेदमंत्र-पाठ करने लगे। सुपूजित शव चिता पर रखा गया। सुलोचना ललाट में सिन्दूर-बिन्दु लगाकर गले में पुष्पमाला पहनकर चिता पर आ बैठी। राक्षस-पत्नियां हाहाकार कर उठीं।

सामने शत-शत चिताएं दूर तक सिकता-सागर पर रची हुई थीं। सबके बीच में महाकाय कुम्भकर्ण की चिता थी। महाकाय, अकम्पन,

अतिकाय, महोदर, वज्र, त्रिशिरा, कुम्भ, निकुम्भ, नरान्तक, उदग्र, वास्कल, अतिलोमा, विडालाक्ष, दुर्मद आदि महाप्राण राक्षस, कभी जिनके नाम से पृथ्वी के वीर थर्राते थे, अपनी-अपनी चिताओं में चुपचाप अनन्त निद्रा में सो रहे थे। अपने-अपने पतियों के पादपद्म को गोद में लिए राक्षस-कुलवधुएं सहगमन को सन्नद्ध बैठी थीं। चिताओं को घेरकर चेटियां, दासियां, वन्दिनियां उत्सर्ग होने को तैयार खड़ी थीं। सभीके शरीर पर सौभाग्य के चिह्न थे।

सहस्र चेटियों ने स्वर्णपात्रों में भर-भरकर चन्दन, अगरु, कस्तूरी, घृत, केसर, पुष्प चिता पर बखेरे। डफ, ढोल, मृदंग, करताल, झांझ और शंख बज उठे।

रावण श्वेत वस्त्र धारण कर मंत्रियों-सहित आगे आया। अंगद, इन्द्र और कार्तिकेय कुमार ने रावण के साथ आगे बढ़ समवेदना प्रकट की। दिव्य बाजे बजने लगे। वृद्धा सुहागिनों ने सुलोचना के मस्तक पर पुनीत जल का सिंचन किया।

सुलोचना ने आभूषण उतार सखियों और चेटियों को देते हुए कहा—

"अरी प्यारी सहचरियो, आज अचानक ही मेरी जीवन-लीला समाप्त होती है। कल तक तो मुझे इसका पता ही न था। तुम सब अब दानवलोक में लौट जाना। अरी वासन्ती, पिता से सब कुछ कह देना। और माता से···" एकाएक उसकी बोली बन्द हो गई, सब स्त्रियां हाहाकार कर उठीं। कुछ ठहरकर प्रमिला ने कहा—"अरी, माता से कहना, जो अदृष्ट में था, वह हो गया। उन्होंने मुझे जिन्हें सौंपा था, उन्हींके साथ मैं जा रही हूं।"

वेदपाठी वृद्ध राक्षसों का दल वेदपाठ करता हुआ आगे आया। मंगलवाद्य बजने लगे। राक्षस-स्त्रियां मंगल-गीत गाती हुई चिता के चारों ओर घूमने लगीं। राक्षस बाणों से पशुओं को मार-मारकर चिता में चारों ओर रखने लगे।

रावण ने आगे बढ़कर कहा—"अरे मेघनाद, मैंने आशा की थी कि तुझे राज्यभार दे महायात्रा करूंगा। परन्तु अदृष्ट ने कुछ और ही रचना कर डाली। स्वर्ण-सिंहासन की जगह तुझे आज पुत्रवधू-सहित इस अग्निरथ पर बैठा मैं देख रहा हूं। हाय, इसीलिए मैंने तेरा देव-सान्निध्य कराया था! इसीलिए मैंने रुद्राराधना की थी? हा पुत्र! हा वीरश्रेष्ठ!!"

जगज्जयी रावण जगदीश्वर सिर धुनता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

अमात्यों ने, वृद्धजनों ने उसे उठाया। रावण ने चिता में अग्नि दी। सहसा चिता जल उठी। इसी समय शत-शत चिताओं में अग्नि दे दी गई। प्रलयाग्नि की भांति उन शत-शत चिताओं से अग्नि की लपटें उठने लगीं। दासी, चेटी, सखियां प्राणोत्सर्ग करने के लिए चिताओं में कूद-कूदकर भस्म होने लगीं। बाजों की गड़गड़ाहट, वन्दीजनों के जय-जयकार, आर्तजनों के विलाप और योद्धाओं के चीत्कार से समुद्र तट उस समय प्रलयकाल के अग्नि-समुद्र की भांति भयानक हो उठा।

ध्वनिवेग से आकाश फटने लगा। दस हज़ार घड़ों की दुग्धधार से अतिरथी की चिता बुझाई गई। फिर सब चिताओं की भस्म-राशि सागर में विसर्जित कर लंकापति रावण लुटे हुए पथिक की भांति अधोमुख आंसू बहाता राक्षसों, राक्षस-पत्नियों सहित सूनी और हाहाकार से भरी लंका में लौट आया।

४६

राक्षसपुरी सात दिन तक विषाद में रोती रही। सहस्रों राक्षस-शिल्पियों ने वीरेन्द्र की चिता पर गगनस्पर्शी चैत्य स्वर्ण की ईंटों से रचा। सात दिन भी बीत गए। रावण ने सिन्धु में पत्नियों-सहित स्नान कर अशौच त्यागा। अब वह अश्रुनीर को क्रोध और अमर्ष की आग में जलाता हुआ रणसाज सजने लगा। लंका में फिर दुन्दुभि गड़-गड़ा उठी। शृंगी-नाद होने लगा। रावण अपने रथ पर बैठ मन्दोदरी आदि अन्तःपुर की सब स्त्रियों को पछाड़ खाती, रोती-कलपती छोड़, विषधर सर्प के समान फुफकार मारता हुआ बन्दियों और योद्धाओं से परावृत समरांगण में आ पहुंचा।

सात दिन-रात अनवरत राम-रावण का अप्रतिम, अवर्ण्य संग्राम होता रहा। अन्त में रावण ने राम का सम्मुख्य किया।

राम ने देखा तो धनुष-टंकार किया। मातुलि दिव्य रथ ले आया। विभीषण आदि महारथी राम को चारों ओर से घेरकर चले। राम ने कहा—"से चिरभीप्सितः पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तः : चातकस्य कांक्षित घर्मान्ते मेघदर्शनमिव।। अस्मिन् मुहूर्ते न चिरात् अरावणम्-राम वा जगद् द्रक्ष्यथ।"

इतना कहकर राम ने सारथि से कहा—"हे देवसारथि, अब चलो राक्षसराज के उस श्वेत छत्र के सम्मुख।"

रावण ने भी जब राम के रथ को देखा, तो क्रोध से लाल-लाल

आंखें करके धनुष उठाया।

राम ने पुकारकर अपना नाम-गोत्र उच्चारण करके कहा—"अया विरहिता दीनां वैदेहीं हत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे! स्त्रीषु शरविनाथासु परदाराभिमर्शनं कापुरुषकर्म कृत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे! भिन्न-मर्याद, निर्लज्ज, चारित्रेष्वनवस्थित शूरोऽहमिति मन्यसे! तस्याद्य गर्हितस्याहितस्य कर्मणः महत्फल प्राप्नुहीदानीम्!

"रे दुर्मते, शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि, सीतां चौरवद् व्यपकर्षतस्ते नाऽस्ति लज्जा। दिष्ट्यासि, अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैः मृत्युमुखे नयामि। अद्य ते अच्छरैश्छिन्नं शिरो क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु!"

श्री राम ने एकबारगी ही अविरल बाण-वर्षा से राक्षसेन्द्र को ढांप दिया। असंख्य वानर-यूथ, यूथपति गुल्मनायक, भट-सुभटों ने रावण के रथ को चारों ओर से घेरकर उसपर विविध शस्त्रास्त्रों की वर्षा कर रथ को क्षण-मात्र में जर्जर कर डाला। इस भयानक आक्रमण से भग्नहृदय रावण विचलित हो गया। जब तक वह धनुष पर बाण-संधान करे, तब तक श्री राम ने दस पैने बाण उसके हृदय में मारे। रावण झूमता हुआ मूर्छित हो रथ पर गिर पड़ा। सूत ने यह देखा, तो वह रथ का रुख मोड़ युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। विजय-गर्व-मत्त वानर-सैन्य जयनाद करती हुई भागते राक्षसों का निर्दय संहार करने लगी।

परन्तु रावण तुरन्त ही सावधान हो गया। उसने गुस्से से लाल होकर सूत से कहा—"अरे, तूने बिना ही मेरी आज्ञा के मेरा रथ शत्रु के सामने से कैसे हटा दिया? अरे अनार्य, तूने तो मेरे कुल को ही दाग लगा दिया। मेरा चिरकालोपार्जित यश, वीर्य, तेज, प्रत्यय सभी नष्ट कर दिया। चल, चल, शीघ्र मेरा रथ शत्रु के सम्मुख ले चल—आज पृथ्वी रामरहित या रावणरहित होने वाली है।"

सूत ने कहा—"देव, मैं न भयभीत हूं, न मूढ़ हूं, न मैं शत्रु के प्रभाव में हूं, न प्रमत्त हूं, न आपकी महिमा से असावधान हूं। मैंने तो आपकी हित-कामना से, आपके यज्ञ की रक्षा करने की भावना से, प्रसन्नमन यह हितकर कार्य किया था, आपके विश्राम को विचारकर तथा रथ और अश्वों की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझकर। मैंने स्वेच्छा से रथ नहीं हटाया।"

"तो चल-चल, जल्दी कर, अब मैं धीरज नहीं रख सकता!"

राम ने जब रावण का स्वर्ण-शैलोपम रथ फिर अपनी ओर आते देखा, तो उन्होंने दिव्य ऐन्द्रधनु हाथ में लिया। उसकी टंकार से दसों

दिशाएं गूंजने लगीं। इन्द्र ने दक्षिण पक्ष संभाला, कुमार कार्तिकेय ने वाम। पृष्ठ भाग पर लक्ष्मण, मुखाग्र पर गदापाणि विभीषण, सुग्रीव, हनुमन्त, नील, नल, गय, मयन्द, जाम्बवन्त आदि सौ प्रमुख गुल्मपति वानर सुभट। अब राम-रावण का सुप्रसिद्ध चिरस्मरणीय निर्णायक युद्ध होने लगा। दोनों रथ अचल पर्वत के समान एक-दूसरे के सामने डटे थे। दोनों ही अजेय वीर दिव्यास्त्रों का अद्भुत प्रयोग-संहार कर रहे थे। इस अद्भुत युद्ध को देखने के लिए राक्षस और वानर भट भी सन्नद्ध हो गए। कालसर्प की भांति ज्वलन्त नाराच, शितिपक्ष छूट रहे थे, परस्पर टकराकर टूट रहे थे। लक्ष-लक्ष सुभट जड़वत् अचल रह यह अभूतपूर्व युद्ध देख रहे थे। अब राम ने अवसर पाकर चार कालबाणों से रावण के रथ के घोड़ों को मार गिराया। वायुवेगी अश्वों के मरने से क्रोधसंतप्त रावण ने बाणों से राम को बींध डाला। राम ने निरन्तर बाण-वर्षा करके रावण का रथ जर्जर कर दिया। वानर सुभटों ने एकबारगी ही रथ पर टूटकर रथ चूर-चूर कर डाला। इसी समय पांच बाण मार राम ने रावण के सारथि को मार गिराया। इसपर वानर-सैन्य गरज उठी। राक्षसों के हृदय हिल गए। अब रावण हाथ में अपना लोक-प्रसिद्ध विकट परशु लेकर रथ से कूद पड़ा। राम ने भी गदा संभाली। अब दोनों का अद्भुत अतुल्य तुमुल द्वन्द्व होने लगा। दोनों वीर युद्धक्रुद्ध मत्त हाथियों की भांति परस्पर गुंथ गए। शत्रु मित्र कहने लगे—इस राम-रावण के तुमुल संग्राम की तुलना यह राम-रावण युद्ध ही है।

इसी क्षण सुअवसर जान इन्द्र के संकेत से राम ने फिर अपना दिव्य धनुष उठाया। रथ को ग्रहण किया और सात आशीविष बाण एकसाथ ही छोड़ दिए। वे बाण रावण के कण्ठ को फोड़ उसमें ही अटक गए। पर रावण मरा नहीं; गिरा नहीं।

तब राम ने देवसारथि मातुलि से कहा—"यैस्तु बाणैः मया मारीचो निहतः, खरश्च सदूषणो निहतः, त इमे मम सायकाः सर्वेऽपि मन्दतेजसः प्रात्ययिकाः।"

मातुलि ने अश्वों को संभालते हुए कहा—"राघव, अजानन्निव किमनुवर्तसे, यन्महद्दबाणं ब्रह्मदत्तममोघं भगवानृषिरगस्त्यः प्रादाद् तत्तस्मै प्रहर!"

राम ने वह अमोघ कालबाण हाथ में ले, उसे अभिमन्त्रित कर फुर्ती से कान तक धनुष को खींचकर छोड़ दिया। वह ज्वलन्त अमोघ ब्रह्मशर रावण के हृदयदेश को विदीर्ण कर पार निकल गया। वज्र के

समान दुर्धर्ष उस ब्रह्मशर को वज्रबाहु राम ने कृतान्त के समान वेग से फेंका था। वह अमोघ वज्र ब्रह्मशर रावण के मर्मस्थल को विदीर्ण कर उसके प्राण का संहार करता हुआ पृथ्वी में धंस गया। रावण का रुधिराक्त शरीर बिजली से मारे हुए शैल-शिखर की भांति भूमि में गिर गया।

महाप्राण, महावीर्य, अमिततेज, जगज्जयी, जगदीश्वर रावण को इस प्रकार भूपतित देख इन्द्र ने हर्षोन्मत्त हो हठात् शंखध्वनि की। एकबारगी ही शत-सहस्र शंख बज उठे। राक्षस अनाथ की भांति शस्त्र त्याग युद्धभूमि ही में बैठकर रुदन करने लगे। वानर-सैन्य बारम्बार हर्षनाद से पृथ्वी को कंपायमान करने लगी, सैकड़ों दुन्दुभियां गड़गड़ा उठीं। देव, मनुज, गन्धर्व यक्ष, नर, वानरों ने राम पर पुष्प-वृष्टि की। सबने राम का रथ घेर लिया। राम की आज्ञा से युद्ध तत्क्षण बन्द कर दिया गया। इन्द्र बारम्बार 'साधु-साधु' कहने लगा। मरुद्गणों ने विजय के बाजे बजाए। तभी लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि सुहृद्विशिष्टों ने राम की एकत्र ही विधिवत् अर्चना की।

विश्ववन्दित देवदैत्यजित् बड़े भाई को निहत, निर्जित रण में सोते देख शोक-संतप्त विभीषण विलाप करने लगा—"हा, हा, वीर-विक्रान्त, प्रवीण, नयकोविद, महार्हशयनोपेत किं निहतो भुवि शेते? यन्मया पूर्वमीरितं तत्काममोहपरीतस्य तव न रुचितम्। आदित्यो भूमौ पतितः, चन्द्रमा तमसि मग्नः, प्रशान्तोऽग्निः, निरुद्यमो व्यवसायः!"

राम ने विभीषण को आकर सान्त्वना दी। उन्होंने कहा—"नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते, ये निपतन्ति रणाजिरे ते वृद्धिमाशंसमानाः।"

विभीषण ने शोकोद्गार छोड़ते हुए कहा—"एष महातपा वेदान्त-पारगश्चाग्रशूरः, एतस्य प्रेतस्यं यत्कृत्यं तत्ते प्रसादात् कर्तुमिच्छामि।"

राम ने वाष्पपूरित नेत्रों से विभीषण को देखा, फिर कहा—"मरणान्तानि वैराणि, एष यथा तव ममाऽपि तथा। क्रियतामस्य संस्कारः!"

और इसी क्षण रावण की अन्तःपुरवासिनी, मृगलोचनी, मृदल-गात्रा, सुवामा, शत-सहस्र अनिद्य सुन्दरियां, जो पृथ्वी भर के देव, दैत्य, दानव, यक्ष, ऋक्ष, गन्धर्व, नर, नागराजों की सुकुमारी कुमारियां, राजपुत्रियां रावण की अंकशायिनी स्वयंवरा थीं, वे सब राज-महिषी मन्दोदरी और चित्रांगदा को आगे कर शोक-विह्वला, बारम्बार भूमि

पर पछाड़ खाती 'हा आर्यपुत्र, हा नाथ' का आर्तनाद करती हुई रणस्थली की रक्त-मज्जामिश्रित पंक को अपने सिरों पर उड़ाती, मुक्तकेशिनी, मलिनांगी वहां आ, जगज्जयी, परमेश्वर, सप्तद्वीपपति, राक्षसराज रावण को भूमि पर रक्तप्लुत निष्प्राण पड़ा देख छिन्न लता की भांति उसके अंग पर गिर गई।

बहुतों ने तो उसे उठाकर अंक में रख लिया। बहुत रोती हुई उसके चरणों पर सिर धुनने लगीं। बहुत उसके कण्ठ में लिपट गईं। किसीने उसकी क्षत-विक्षत भुजा को हृदय से लगाया, बहुत-सी उसे मृतक देखकर मूर्छित ही हो गईं। कितनी ही उसका मुख देख-देखकर रोते-रोते बेहोश हो गईं। मन्दोदरी ने विलाप करते हुए कहा—"त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितमविषह्यं त्वां कथं वनगोचरो मानुषो जघान ?'

चित्रांगदा ने कहा—"अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः।"

"हा, मे संप्राप्ता पश्चिमा दशा वैधव्यदायिनी। या मया मन्दया न कदाचिदपि संबुद्धा। अरे, पिता मे दानवराजः, भर्ता में जगज्जयी जगदीश्वर, पुतो में शक्रविजेता, इत्यहं गर्विता। यदा मे तनय इन्द्रजिद्युधि लक्ष्मणेन शस्त्रः, तदा तु अभिहता तीव्रं, अद्य तु निपातिताऽस्मि। नय मामपि, न वार्तिष्ये त्वया विना। अरे कस्मात्त्वं मां विहाय कृपतां गतः। मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा स देवरो मे यदब्रवीत्सत्यवाक्—अयं राक्षस-मुख्यानां विनाशः समुपस्थितः। तद्वचनं न श्रुतं त्वया, न विभीषणेनाभिहितं च कृतं त्वया। मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं, मम पितुस्तथा न कृत वीर्यमत्तेन, त्वया तस्येदं फलम्। धिगस्तु यदिदं मम हृदयं त्वयि पंचत्वमापन्ने न सहस्रधा भिद्यते।"

मन्दोदरी इस प्रकार विलाप करती हुई मूर्छित हो छिन्नलता-सी रावण के वक्ष पर गिर गई। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि सन्ध्या के लाल जलद में बिजली कौंध गई।

राम ने आदेश दिया—"संस्कारः क्रियताम्, स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम्!"

और राम ने धनुष रख दिया।

उपसंहार

चौरासी दिन तक लंका का घोर संग्राम होता रहा। अन्त में पुत्र-परिजन-सहित राक्षसपति रावण मारा गया। राम जयी हुए।

युद्ध फाल्गुन मास में आरम्भ हुआ और रावण का वध वैसाख कृष्ण चतुर्दशी या अमावस को हुआ। रावण के मरने पर राम ने विभीषण को लंका तथा राक्षसों का स्वामी बना दिया। परन्तु विभीषण और उसके सहयोगी लंकावासियों ने राक्षस-धर्म त्याग, आर्य-मार्ग ग्रहण किया। जो इससे सहमत नहीं हुए, उन्होंने लंका त्याग दी।

कुल मिलाकर तेरह मास सीता लंका में रहीं? अब सीता को संग लेकर राम पुष्पक विमान में बैठ दलबल-सहित किष्किन्धा में लौटे। वहां कुछ दिन सुग्रीव का आतिथ्य ग्रहण कर दण्डक वन में पहुंचे, जहां अगस्त्य-प्रमुख सभी ऋषियों-तापसियों ने राम की अभ्यर्थना की। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान आदि प्रमुख जन अब भी राम के साथ थे।

उधर भरत ने चौदह वर्ष की वनवास-अवधि पूर्ण हुई जान सुमन्त सचिव को परिकर ले राम को अभ्यर्थना-सहित अयोध्या ले आने को दण्डकारण्य भेजा था। अज्ञात चोर ने रघु-वधू सीता को चुरा लिया है और राम-लक्ष्मण उन्हींको वन-वन खोजते किष्किन्धा की ओर गए हैं यह समाचार पा सुमन्त ने किष्किन्धा को दूत भेजा। उसने लौटकर कहा कि लंकापति रावण ने सीता का बलात् हरण किया है और राम की सहायतार्थ सब वानर-कटक लेकर सुग्रीव ने लंका पर अभियान किया है। यह सूचना पाते ही कोसल के धीर-वीर वृद्ध मंत्री आंसू बहाते तीव्र गति से अयोध्या लौटे। अयोध्या में आकर उन्होंने सीताहरण का दारुण समाचार भरत को सुनाया, जिसे सुनकर अयोध्या के राज-महल हाहाकार से भर गए। अयोध्या शोक-सागर में डूब गई। भरत को यह देखकर बड़ी ग्लानि हुई कि आर्य राम ने इस विपत्काल में मुझे सूचना नहीं दी। वे रघुवंशियों की चतुरंग चमू लेकर, द्रुतगति से कूच पर कच करते दक्षिणापथ पर चल दिए। परन्तु वे दण्डकारण्य तक तब पहुंच पाए जब कि राम लंका को विजय कर वहां पहुंच चुके थे। भरत को चतुरंग चमू-सहित आया सुन रामभद्र ने अगस्त्य-प्रमुख सब ऋषियों, वानरों और राक्षसेन्द्र विभीषण-सहित आगे बढ़ भरत का अभिनन्दन किया। सब भाई प्रेमाश्रु गिराते मिले। चिर वियोग के दारुण दुःख का अन्त हुआ। वैदेही-सहित राम-लक्ष्मण ने माताओं और गुरुजनों की पद-वन्दना की। माताओं ने दोनों पुत्रों को प्रेमाश्रु गिराते हृदय से लगाया। सीता को प्यार से आशीर्वचन कहे।

अब राम, वसिष्ठ, वामदेव, इन्द्र, अगस्त्य, विभीषण, सुग्रीव, सुतीक्ष्ण आदि नरपतिवरिष्ठों और नृवंश के नेताओं की सभा दण्ड-कारण्य में जुड़ी। उत्तरापथ, आर्यावर्त और दक्षिणावर्त के सब

प्रतिनिधि नेता, देव लोक और मृत्युलोक के प्रतिनिधि, दक्षिण के द्वीप-समूहों के अधिपति, नागकुलपति दण्डकारण्य में आकर इस महती सभा में बैठे। पृथ्वी के राज्यों का यथावत् विभाजन हुआ। रावण का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। विभीषण को लंका का राज-राजेश्वर तथा सप्तद्वीपों का संरक्षक स्वीकार किया गया। देवलोक और आर्यावर्त के राज्यों की नई सीमाएं निर्धारित हुईं और तब से दक्षिणारण्य तक समुचा ही भारतवर्ष—आर्यावर्त घोषित कर दिया गया। वसिष्ठ और विश्वामित्र ने परामर्श कर आर्यों की इस सम्मिलित जाति का नये सिरे से संगठन कर गुण-कर्म देख उन्हें चार वर्णों में विभाजित कर वर्ण-मर्यादा की ऋचाएं प्रस्तुत की और वे सब वेदांग स्वीकार कर ली गईं। अब वेद निश्चित रूप से आर्यों की सांस्कृतिक व्याख्या का धर्मग्रंथ स्वीकार किया गया। चार वर्ण बन जाने से सब छोटे-बड़े, मूर्ख और विद्वान, स्वामी और सेवक परस्पर पृथक् समूह का प्रतिनिधित्व करते हुए भी समष्टिरूप से आर्य कहलाने लगे। विजितों को, अनार्यों को, पतितों को भी शूद्रसंज्ञा दे आर्यत्व की जाति-मर्यादा में बांध लिया गया। आर्यों, देवों तथा आर्येतरों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गए। आर्यों का सौष्ठव सबने स्वीकार किया तथा वसिष्ठ आर्यों के सबसे बड़े धर्मनेता स्वीकार कर लिए गए। उन्हींकी यज्ञविधि आर्यों ने स्वीकार की। केवल देवगण ने न वर्ण-मर्यादा स्वीकार की, न परिवार-प्रथा, न पितृमूलक कुल-परम्परा, न वसिष्ठ की यज्ञ-विधि। उनके धर्म-नेता नारदर्षि वामदेव ही रहे और उन्हींकी वामविधि देवों ने स्वीकार की। परन्तु दोनों में सद्भाव कायम हो गया।

सब व्यवस्था कर रामभद्र मित्र-परिजनों के साथ भरत को आगे कर नन्दिग्राम में आए और ठीक चौदहवें वर्ष की समाप्ति पर चारों भाइयों ने जटा कटाकर तपस्वी वेश त्याग राजोचित वेश तथा राज-परिच्छद धारण किए। फिर मित्रों, पुरोहितों और ऋषियों सहित अयोध्या में आकर राम ने धूमधाम से राज्याभिषेक कराया। सम्पूर्ण आर्यावर्त, देवलोक और द्वीप-द्वीप के राजप्रतिनिधियों ने रामाभिषेक में भाग लिया। राम समूचे आर्यावर्त के एकछत्र चक्रवर्ती सम्राट् घोषित कर दिए गए। सीता जनकनन्दिनी आर्यों की राजमहिषी बनीं।

सब समारोह सम्पन्न होने पर राम ने दान-मान से सत्कृत कर देव, दानव, मानव, नर, नाग, असुर, रक्ष, यक्ष, वानर, ऋक्ष, दैत्य

प्रतिनिधियों, राजर्षियों, यतियों, ब्रह्मचारियों, वेदपाठियों, भटों, सुभटों, मित्र-बान्धवों को विदा किया, सेवकों को संतुष्ट किया और अयोध्या में रामराज्य संचालित किया।

मथुरा के शासक लवणासुर ने राम का शासन स्वीकार नहीं किया। वह यादव-नरेश भीमसात्वत का प्रतिनिधि था। वह राक्षस-धर्मी तथा नरभक्षी था। इसलिए राम ने शत्रुघ्न को उसपर चढ़ाई के लिए भेजा। शत्रुघ्न ने घोर युद्ध कर लवणासुर को मार डाला। रामभद्र ने शत्रुघ्न ही को मथुरा के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। यादव-नरेश भीम शत्रुघ्न के भय से सुदूर दक्षिण में हट गया। शत्रुघ्न बारह वर्ष मथुरा की गद्दी पर रहे।

कालान्तर में राम के दो पुत्र हुए—कुश और लव; लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रकेतु; भरत के तक्ष और पुष्कर; शत्रुघ्न के सुबाहु और शत्रुघाती।

इसी समय केकय देश के आनव राजा—भरत के मामा युधाजित् को मारकर गन्धर्वों ने उसका राज्य छीन लिया। यह सुन राम ने भरत को चतुरंग चमू दे गन्धर्वों पर चढ़ाई के लिए भेजा। भरत ने गन्धर्वराज को पराजित कर गन्धर्व देश और केकय देश पर अधिकार कर लिया। राम ने भरत को वहां का राजा बनाया। समय पाकर भरतपुत्र पुष्कर ने पुष्करावती नगरी बसा अपनी राजधानी बनाई। ये दोनों प्राचीन महानगर अब तक पेशावर और तक्षशिला के नाम से विख्यात हैं।

राम ने और भी राज्यों को जय करके उन्हें पुत्र-परिजनों में बांट सूर्यवंश की अनेक नई गद्दियां स्थापित कीं। राम ने ज्येष्ठ पुत्र कुश को अपना युवराज घोषित किया तथा विन्ध्य के दक्षिण में कुशस्थली में कुशावती नगर बसाकर उसे वहां का राज्यपाल बना दिया। लव को उत्तर कोसल की राजधानी श्रावस्ती में स्थापित किया, जो गोंडा या बहराइच जिले में है। लव ने पंजाब में लवपुर नगर बसाया, जो लाहौर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को कारा-पथ के अन्तर्गत अंगद नगर तथा चन्द्रावती के राज्य दिए, जो मल्ल देश में हिमाचल उपत्यका में थे। सुबाहु को मथुरा तथा शत्रुघाती को विदिशा, जो अब भेलसा कहाता है, का राज्य मिला। इस प्रकार राम ने अपने भाइयों और अपने तथा भाइयों के आठों पुत्रों को पृथक्-पृथक् राज्य बांट दिए, जो सब अयोध्या की मुख्य गद्दी के अधीन थे।

श्री राम ने सुग्रीव, विभीषण और शत्रुघ्न को मिलाकर केवल

अपने बाहुबल से ग्यारह राजाओं का अभिषेक किया। अंग, वंग, मत्स्य, शृंगवेरपुर, काशी, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोसल, किष्किन्धा और लंका राम की मित्र शक्तियां थीं। इस समय तक आर्यों के इतिहास में राम से बढ़कर व्यापक, प्रभावशाली सार्वभौम सम्राट् नहीं हुआ था। रामराज्य में आर्यों का प्रभाव सारे नृवंश पर छा गया और आर्यों की जाति सारी पृथ्वी पर श्रेष्ठ जाति स्वीकार कर ली गई। गोदावरी के दक्षिण तक आर्यों के प्रबल राज्य स्थापित हो गए। पम्पा, मलय, महेन्द्र तथा लंका सुदूर दक्षिण के सब द्वीप-समूहों में रामनाम की महिमा तथा आर्यों का प्रबल प्रभाव स्थापित हो गया।

राम के बड़े पुत्र कुश को दक्षिण कोसल तथा अयोध्या राज्य मिला। अवध के दो भाग करके राम ने श्रावस्ती लव को दी और अयोध्या कुश को। बड़े होने के कारण उन्हें दक्षिण कोसल भी मिला जो विन्ध्य में था। कुश राम की मृत्यु के बाद कुशावती में रहने लगे थे। इससे अयोध्या उजाड़ होने लगी, तब वहां के निवासियों की प्रार्थना पर वे फिर अयोध्या में चले आए। कुश का विवाह किसी तक्षक नाग की पुत्री कुमुदावती से हुआ था। दुर्जय नामक एक असुर से युद्ध करते हुए कुश की मृत्यु हुई। इनका पुत्र अतिथि बड़ा प्रतापी था, उसने पितृहन्ता को मारा। इनके वंशधर पारिपात्र के छोटे भाई सहस्राश्व ने दूसरा राज्य स्थापित किया। पारिपात्र के तीन पुत्र शल, दल, बल, एक-दूसरे के पीछे राजा हुए। बल के वंश में राज्य चला। हिरण्यनाभ इसी वंश में हुए, जिन्होंने जैमिनी से योग सीख याज्ञवल्क्य को सिखाया। इनके पौत्र 'पर' के पीछे इस वंश का राज्य नष्ट हो गया। दूसरी शाखा में सहस्राश्व की छः पीढ़ियां चलीं, जिसके अंतिम राजा श्रुतायुध महाभारत-संग्राम में लड़े थे।

लव श्रावस्ती के नरेश बनाए गए थे। इनका वंश दीर्घकाल तक चला। लव के पौत्र राजा ध्रुवसिन्धु के दो विवाह हुए। प्रथम कलिंग-पति की पुत्री मनोरमा से, दूसरा उज्जैनपति युधाजित् की पुत्री लीलावती से। राजा ध्रुवसिन्धु आखेट करते हुए सिंह द्वारा मारा गया और मंत्रियों ने मनोरमा के पुत्र बालक सुदर्शन को राजा बनाया। इसपर कलिंग और उज्जैन-नरेश अपने-अपने दौहित्रों के पक्ष में लड़ने को तैयार हो गए। शृंगवेरपुर में भी युद्ध हुआ, जिसमें कलिंग-नरेश मारा गया और मनोरमा बालक सुदर्शन को लेकर प्रयाग आ भारद्वाज के आश्रम में शरणापन्न हुई। युधाजित् उज्जैनपति ने अपने दौहित्र

शत्रुजित् को राजा बना दिया। भारद्वाज के आश्रम में रहकर सुदर्शन बड़ा विद्वान हो गया। कुछ दिन बाद काशी के राजा सुबाहु की पुत्री शशिकला का स्वयंवर हुआ। शशिकला सुदर्शन का गुण सुन चुकी थी। उसपर मुग्ध थी। उसने चुपके से उसे बुला भेजा। स्वयंवर में युधाजित्, शत्रुजित् कारुस्वपति, भद्रशर, सिंहराज, माहिष्मतीपति, पांचालराज, कामरूप, कर्णाटक, विदर्भ, केरल, चोल आदि के राजा एकत्रित थे। युधाजित् ने आपत्ति की कि सुदर्शन कहीं का मुकुटधारी राजा नहीं है। अतः वह स्वयंवर में सम्मिलित नहीं हो सकता, पर केरल-नरेश ने उसका पक्ष लेकर कहा कि वह ध्रुवसिन्धु का बड़ा पुत्र है, अतः माननीय राजपुरुष है। पर युधाजित् ने कड़ा विरोध किया। यह देख अनेक राजा उसके पांडित्य और सदाचार को देख सुदर्शन के पक्ष में हो गए। स्वयंवर में शशिकला ने जयमाला भी सुदर्शन ही के कण्ठ में डाली। इसपर युधाजित् और शत्रुजित् युद्ध पर सन्नद्ध हो गए। राजा सुबाहु और सुदर्शन के पक्षवाले राजाओं से युधाजित् और शत्रुजित् की सम्मिलित सैन्य का भारी युद्ध हुआ, जिसमें युधाजित् और शत्रुजित् मारे गए। सुदर्शन शशिकला को ब्याह कर श्रावस्ती के राजा बने। यह वंश महाभारत तक चला। महाभारत-संग्राम में इस वंश का वृहद्बल मारा गया था, परन्तु यह राज्य आगे तक चलता रहा। बुद्धकालीन इतिहास-प्रसिद्ध अयोध्या-नरेश प्रसेनजित् इसी वंश में हुए।

लक्ष्मण और शत्रुघ्न के पुत्रों के राज्य बहुत जल्दी टूट गए। द्वापर युग में सूर्यवंश दबा रहा। चन्द्रवंश की विशेषता रही। सारे संसार में लव का वंश ही सर्वाधिक काल तक अखण्ड चला।

विभीषण ने राक्षस-धर्म त्यागा और आर्य-धर्म में दीक्षित हुए। कृतज्ञतास्वरूप जब राम के पुत्रों का जन्म हुआ तब उसने कुश के नाम पर शिवदानद्वीप का नाम कुशद्वीप रख दिया, जो अब अफ्रीका का महाद्वीप कहाता है। विभीषण ने रावण के सारे अवरोध को अपने अन्तःपुर में दाखिल कर लिया। मन्दोदरी ने भी पुत्र-वधू सुलोचना का अनुकरण न कर कुलद्रोही विभीषण की महिषी बनना स्वीकार कर लिया। परन्तु विभीषण के वंश का प्रताप-सूर्य शीघ्र ही अस्त हो गया। उसके उत्तराधिकारी कमज़ोर रहे। राक्षसों का सारा ही आर्थिक और राजनीतिक ढांचा बिखर चुका था। राक्षसों और दैत्यों के प्रमुख केन्द्र और राज्य नष्ट हो चुके थे। विभीषण कुलघाती था, इससे वह लंका में प्रतिष्ठित न रह सका। राम-युद्ध में प्रायः सभी राक्षस योद्धा मर

चुके थे। जो बचे, भाग गए। लंका की कला, कौशल, संस्कृति, समृद्धि सब कुछ विलीन हो गई। विलाप करती हुई विधवाएं विभीषण को विष-दृष्टि से देखती थीं। लंका में कोई उसका कल्याणकामी न था। थोड़े ही दिन बाद विभीषण की मृत्यु हो गई। उसके बाद लंका का राज्य केवल लंका के छोटे-से द्वीप तक सीमित रह गया।

राम-रावण के इस महायुद्ध में लगभग सम्पूर्ण दैत्य-दानव, नाग-वंशी राजा और राजप्रतिनिधि रावण की सहायतार्थ आए थे। रावण सप्तद्वीपपति था, जो उस काल लंका के चारों ओर फैले थे। आज की भौगोलिक स्थिति यद्यपि बदल चुकी है, परन्तु वे द्वीप आज आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, मेडागास्कर, अफ्रीका आदि नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसे प्रबल शत्रु को मारना आसान न था। तिमिरध्वज शंबर और वर्चिन की समाप्ति के बाद रावण का यह निधन ऐसा था, जिसने सम्पूर्ण अनार्य बल तोड़ दिया था। इसीसे राम का नाम और यश इन द्वीपों में फैल गया और भूमण्डल में राम विख्यात हो गए। लोग महिदेव और जगदीश्वर की भांति रावण के स्थान पर राम की ही पूजा करने लगे। चम्पा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, बर्मा में भी राम-प्रताप व्याप गया। यूरोप की जातियां किसी न किसी राम-प्रभावित प्राचीन जाति से ही सम्बन्धित हैं। अतः यूरोप के प्रमुख देश—जैसे इंग्लैण्ड, स्पेन, स्वीडन, नार्वे, स्कैण्डीनेविया, ग्रीस और इटली भी राम-प्रभाव से मुक्त न रह पाए। इस प्रकार आज के सब देशों में इस आर्यनेता विजेता मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है।

०००

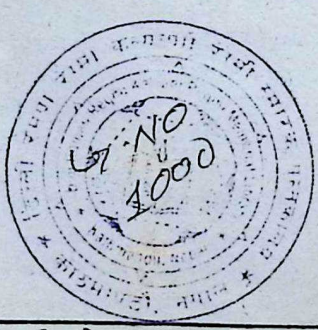

आई० बी० सी० प्रेस, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित

वयं रक्षामः

आचार्य चतुरसेन

रावण मरा नहीं, आज भी वह छद्मवेश में हमारे बीच उपस्थित है, आधुनिक दण्डकारण्य से सीता का अपहरण करने की घात में···

उपन्यास-सम्राट आचार्य चतुरसेन द्वारा ऐतिहासिक व आधुनिक चरित्रों के समन्वय से प्रस्तुत अनूठी कृति— विशेष पॉकेट बुक संस्करण।

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स